सम्मत्यार्थ

**

प्रकाशक :
भारती भवन
एक्जिबीशन रोड, पटना-१

मुद्रक :
भुवनेश्वरी प्रसाद सिन्हा
तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना-४

मूल्य ५.५०

सेलिंग एजेंट्स :
भारती भवन (डिस्ट्रीब्यूटर्स)
गोविन्द मित्र रोड, पटना-४

पुरोवाक्

पाश्चात्य समालोचना मे जो कुछ उत्तम और उपादेय है उसे हिन्दी मे सुलभ बनाना, इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य है। कहने की आवश्यकता नही कि यह कार्य जितना महत्त्वपूर्ण हैं, उतना ही कठिन। इसकी सफलता हिन्दी के विज्ञ लेखकों, प्रबुद्ध पाठको तथा सक्रिय समर्थकों के समवेत सहयोग से ही संभव हैं।

हिन्दी की आधुनिक आलोचना-पद्धति भारतीय सिद्धान्तों की अपेक्षा पाश्चात्य सिद्धान्तो से अधिक प्रभावित है। भारतीय तथा पाश्चात्य पद्धतियो के समन्वय से एक व्यापक आलोचना-पद्धति का निर्माण भी शक्य है किन्तु इसके लिए दोनों का निर्भ्रान्त ज्ञान अपेक्षित है जो अंगरेजी के माध्यम मे अब बहुतो के लिए सुकर नही रह गया है। हिन्दी ही उस ज्ञान एवं समन्वय का समर्थ सेतु बन सकती है।

इसके लिए हमे दो मार्ग व्यावहारिक प्रतीत होते हैं: एक तो यह कि जो ग्रन्थ अनुवाद के योग्य हो उनका अनुवाद किया जाए; दूसरा कि जहाँ सम्पूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद बहुत उपयोगी प्रतीत न हो वहाँ उसके मूल एवं मुख्य विचारो को स्वतन्त्र रूप से उपस्थित किया जाए। ऐसा करते समय यह अच्छा होगा कि उदाहरण अपने साहित्य से ही दिये जाएँ। इससे सिद्धान्त के ज्ञान मे तो सौकर्य होगा ही, उसका विनियोग भी स्पष्ट हो जाएगा।

तत्काल इस योजना मे प्रकाशनार्थ हमने निम्नलिखित छः पुस्तकें चुनी हैं:

१. रिचर्ड्स के आलोचना-सिद्धान्त (आपके हाथ मे है)।
२. उपन्यास का शिल्प।
३ पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र।
४ शैली।
५ मनोविश्लेपण और साहित्यालोचन
६. सौन्दर्यशास्त्र और भाषाशास्त्र।

इनमे अन्तिम दो ग्रन्थो के, जो क्रमशः कलीमुद्दीन अहमद एवं बेनेदेत्तो क्रोचे की कृतियाँ हैं, अनुवाद प्रस्तुत किये जाएँगे और शेष स्वतंत्र ग्रन्थ होंगे। हमने ग्रन्थों को चुनते समय इसका ध्यान रखा है कि आरम्भ मे ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित किये जाएँ जो व्यापक पाठकवर्ग को आवश्यकता, अभिरुचि तथा माँग की पूर्ति कर सके।

बीसवी शताब्दी के आलोचको मे रिचर्ड्स का स्थान सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण है। उनकी आलोचना-पद्धति नयी ही नही, एक प्रकार से क्रान्तिकारी प्रमाणित हुई है। उसकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

१. रिचर्ड्स का कहना है कि आज के वैज्ञानिक युग मे वही आलोचना-पद्धति

मान्यता प्राप्त कर सकती है जो वैज्ञानिक हो अर्थात् जिसका निर्माण वैज्ञानिक उपादानों से हुआ हो। इसके लिए उन्होंने मानवविज्ञान, समाजविज्ञान जैसे अन्य विज्ञानों के साथ मनोविज्ञान को, विशेषत व्यवहारवादी मनोविज्ञान को, अपनी आलोचना-पद्धति का आधार बनाया है। 'प्रिंसिपुल्स ऑफ लिटररी क्रिटिसिज्म' के पाँच अध्याय (ग्यारह से पंद्रह तक) इसके प्रमाण है। इन अध्यायों में रिचर्ड्स ने मनोविज्ञान की वह रूपरेखा प्रस्तुत की है जिसके आलोक में उन्होंने अपने आलोचना-सिद्धान्तों का निर्माण एवं विवेचन किया है।

२ रिचर्ड्स के अनुसार आलोचना का उद्देश्य है कलात्मक अनुभूतियों का मूल्यांकन एवं तारतम्यनिर्धारण अर्थात् यह बताना कि किसी कलाकृति का मूल्य क्या है और एक कलाकृति दूसरी कलाकृति से किस अंश में भिन्न (श्रेष्ठ अथवा हीन) है। उदाहरणार्थ, रामचन्द्रिका की तुलना में रामचरितमानस की काव्यानुभूति क्यों श्रेष्ठ है और उसका मूल्य क्या है?

३ आलोचना के ये उद्देश्य—मूल्यांकन एवं तारतम्यनिर्धारण—तब तक सिद्ध नहीं हो सकते जब तक आलोचना का स्वरूप स्पष्ट न हो जाए। अतः रिचर्ड्स आलोचना-प्रक्रिया के दो रूप या पक्ष मानते हैं: (क) आलोचनात्मक और (ख) प्राविधिक। आलोचनात्मक पक्ष में सौन्दर्यानुभूति के मूल्यांकन का विचार होता है और प्राविधिक पक्ष में उन साधनों का निरूपण जिनकी सहायता से सौन्दर्यानुभूति उत्पन्न होती है। आलोचनात्मक पक्ष का सम्बन्ध मनोविज्ञान से है जिसे आलोचना का अन्तरंग कह सकते है। प्राविधिक पक्ष का सम्बन्ध छन्द, तुक जैसे बहिरंग तत्त्वों से है। अतः वह अपेक्षाकृत गौण है। रिचर्ड्स ने व्यंग्यपूर्वक कहा है कि आलोचना के इतिहास में अब तक बहिरंग (प्राविधिक पक्ष) को ही अन्तरंग (आलोचनात्मक पक्ष) मानने की भूल होती आयी है।

४ सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए सम्प्रेषण अनिवार्य है। अतः आलोचना में सम्प्रेषण की समस्या का विचार बहुत महत्त्वपूर्ण है। कविता में संप्रेषण का माध्यम भाषा है। रिचर्ड्स की मान्यता है कि कविता की भाषा विज्ञान की भाषा से भिन्न होती है। कविता की भाषा रागात्मक होती है और विज्ञान की वस्तुद्देशात्मक। कहने का अभिप्राय यह कि कवि अपनी भाषा के द्वारा राग या भाव का संचार करता है पर विज्ञानी तथ्यकथन मात्र करता है। आनन्दवर्धन ने थोड़े परिवर्तन के साथ इसी को यों कहा है कि कवि का उद्देश्य है रससंचार और इतिहासलेखक का इतिवृत्तनिरूपण।

५. निष्कर्षतः कविता का कोई निश्चित अर्थ नहीं होता। उसका अर्थ प्रकरण के द्वारा ही निर्धारित किया जा सकता है। हमारे यहाँ व्यंजना में इसका कहीं अधिक व्यापक और विशद विवेचन किया गया है। रिचर्ड्स ने जहाँ केवल प्रकरण का उल्लेख कर छोड़ दिया है वहाँ व्यंजनावादी कविता के अर्थ-निर्धारण में वक्ता, बोद्धव्य, काकु, वाच्य, अन्यसन्निधि, देश, काल, काकु, चेष्टा आदि अनेक

दूसरे साधनों की भी उपादेयता और आवश्यकता मानते हैं। इस साधन-समवाय में प्रकरण तो केवल एक है। स्पष्ट है कि रिचर्ड्स के अनुसार आलोचना सामान्य भाषिक विश्लेषण, या यों कहें कि अर्थविज्ञान की सीमा में आ जाती है जिसका विषय है अर्थ का निरूपण तथा सूक्ष्म अर्थच्छायाओं का अभिव्यंजन।

६. *रिचर्ड्स ने संप्रेषण से सम्बद्ध दो दोषों का निर्देश किया है :*

(क) मूल्यहीन अनुभूति का (निर्दोष) संप्रेषण।

(ख) मूल्यवान् अनुभूति का सदोष सम्प्रेषण।

इनमें पहले का सम्बन्ध अनुभूति की मूल्यहीनता से है तो दूसरे का संप्रेषण की सदोषता से; एक में वस्तु सदोष है, तो दूसरे में शिल्प। तात्पर्य यह कि मूल्यहीन अनुभूति उतनी ही हेय है जितनी संप्रेषण की सदोषता क्योंकि कविता के आस्वादन में दोनों बाधक हैं। खराब आटे की रोटी कितनी भी सावधानी से बनाएँ तो अच्छी नहीं होगी; इसी तरह आटा अच्छा भी हो पर रोटी बनाने में कोई गड़बड़ी हो जाए, जैसे जल जाए, तो वह भी बेकार। खानेवाले के लिए दोनों ही स्वादहीन होंगी। सम्प्रेषण-सम्बन्धी दोष वस्तुतः दूसरे को ही मानना चाहिए क्योंकि पहले का सम्बन्ध संप्रेषण से न होकर विषय (संप्रेष्य) से है।

संक्षेप में, रिचर्ड्स की ये ही मान्यताएँ हैं। रिचर्ड्स के ग्रन्थ अँगरेजी के विद्वानों के लिए भी सुगम नहीं हैं। उनकी अभिव्यंजना वैज्ञानिक होते हुए भी शुष्क और जटिल है। अतः 'प्रिंसिपुल्स' के अनुवाद मात्र से पाठक को विशेष लाभ नहीं होता। इसीलिए हमने निर्णय किया कि रिचर्ड्स के आलोचना-सिद्धान्तों का स्वतंत्र रूप से विवेचन किया जाए।

मुझे प्रसन्नता है कि जिस आस्था से मैंने यह कार्य डा० शम्भुदत्त झा को सौंपा था उसे उन्होंने बड़ी निष्ठा, योग्यता और श्रम से पूर्ण किया। मुझे विश्वास है कि इस ग्रन्थ से विद्वान् सन्तुष्ट होंगे और अध्येता रिचर्ड्स के आलोचना-सिद्धान्तों को हृदयगम कर सकेंगे।

इस योजना को कार्यान्वित करने का भार भारती-भवन के निपुण और सुरुचि-*सम्पन्न संचालक श्री मोहितमोहन बोस ने उठाया है। उन्हें हार्दिक धन्यवाद।*

देवेन्द्रनाथ शर्मा
आचार्य तथा अध्यक्ष
हिन्दी-विभाग, पटना विश्वविद्यालय

पटना
१५ जुलाई, १९६७

निवेदन

आइवर आर्मस्ट्रॉग रिचर्ड्स का आधुनिक समीक्षा में क्या स्थान है, यह उनके विषय मे प्रचलित इस उक्ति से स्पष्ट है—"जो भी हवा बहती है वह डॉ० आइ० ए० रिचर्ड्स को जानती है।" (*Every wind that blows knows* Dr. I. A. Richards) ।

ऐसे समीक्षक के सिद्धान्तों का विश्लेषण-विवेचन करने की दिशा मे हिन्दी मे कितना थोड़ा प्रयत्न हुआ है, यह कहने की आवश्यकता नही। स्वतत्र पुस्तक की बात तो अलग है, उनके विचारो का परिचय देनेवाला कोई विस्तृत निबन्ध तक हिन्दी में अप्राप्य है। यों, उनपर अँगरेजी में भी जितना कुछ लिखा गया है वह भी सतोषजनक नही माना जा सकता। ऐसी स्थिति मे इस पुस्तक की उपयोगिता स्वयंसिद्ध है।

मुझ जैसे अल्पज्ञ से यह गुरुतर कार्य कभी सम्पन्न न होता यदि गुरुवर आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा की अनवरत प्रेरणा एव सहायता उपलब्ध न होती। पुस्तक की रूपरेखा निर्धारित करने से लेकर प्रकाशन तक की व्यवस्था उन्होंने ही की है। इस कार्य को मुझसे पूरा कराने का सारा श्रेय उन्हें ही है। आचार्यप्रवर की प्रेरणा और प्रसाद मे कितना बल है, यह बोध अच्छी तरह हो गया।

इस पुस्तक मे अँगरेजी पारिभाषिक शब्दों के हिन्दी पर्याय भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय (केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय) द्वारा निर्मित प्रयुक्त हुए हैं। जो शब्द वहाँ नही मिले उनके लिए हमने स्वय शब्द गढ़े हैं। अनेकत्र डॉ० रघुवीर के कोश से भी सहायता ली गयी है।

इस पुस्तक के लिखने में मेरे प्रिय शिष्य एवं सहयोगी डॉ० महेन्द्र मधुकर ने जो सहायता की है, तदर्थ उन्हे मेरा हार्दिक धन्यवाद है। पुस्तक के पारिभाषिक शब्दों को चुनकर एकत्र संकलन करने का कार्य एम० ए० हिन्दी के छात्र पाण्डेय रविभूषण ने किया है। उन्हे भी मेरा धन्यवाद।

—शंभुदत्त झा

मुजफ्फरपुर
२७-१-६६

विषय-सूची

(क) पीठिका

पृष्ठ

(ग) समीक्षा

प्रेरणा, प्रयोजन और आधार

आई० ए० रिचर्ड्स के आलोचना-सिद्धान्तों का सांगोपांग एवं व्यवस्थित प्रतिपादन उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्रिंसिपुल्स ऑफ लिटररी क्रिटिसिज्म' में मिलता है जो 'इण्टरनैशनल लाइब्रेरी ऑफ साइकॉलोजी, फिलॉसोफी ऐण्ड साइंटिफिक मेथड' के अन्तर्गत सर्वप्रथम १९२४ ई० में प्रकाशित हुई थी। यह शीर्षक रिचर्ड्स के दृष्टिकोण पर थोड़ा प्रकाश डालता है। इससे यह सूचित होता है कि लेखक अपनी पुस्तक को विशुद्ध काव्यालोचन की पुस्तक भर नहीं मानता; उसे वह मनोविज्ञान, दर्शन एवं वैज्ञानिक रीति पर लिखी गयी पुस्तकों की पंक्ति में गिनता है। स्पष्ट है कि लेखक काव्यालोचन का मनोविज्ञान एवं दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध मानता है और उसके सिद्धान्तों के प्रतिपादन के क्रम में वैज्ञानिक रीति को स्वीकार करने का आग्रही है।

वस्तुत. 'प्रिंसिपुल्स' के अवलोकन-मात्र से यह धारणा पुष्ट होती है कि लेखक के आलोचना-सिद्धान्त मनोविज्ञान पर आधृत हैं। उसने न केवल मूल्य का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त स्थापित किया है और कविता की आस्वाद-प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है बल्कि सामान्य मनोविज्ञान का खाका भी प्रस्तुत किया है। पुस्तक के ग्यारह से पन्द्रह तक के अध्याय मनोवैज्ञानिक विषयों के प्रतिपादन से सम्बद्ध है। इनके समावेश की कैफियत में लेखक का कहना है कि इनके अभाव में अपनी बात को जोरदार और स्पष्ट ढंग से कह पाना उसके लिए सम्भव नहीं प्रतीत हुआ।[1] सम्पूर्ण पुस्तक में मनोविज्ञान के बहुतेरे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। इनके अधिक प्रयोग का कारण लेखक की वह इच्छा है जिसके अनुसार वह आलोचना की साधारण, सुपरिचित बातों की भी व्यवस्थित मनोवैज्ञानिक विवृति करना चाहता था।[2] लेखक का विश्वास है कि आलोचना में मनोविज्ञान के प्रायः सभी विषयों का कहीं-न-कहीं उपयोग होता ही है।[3]

1. *These I would have omitted if it had seemed in any way possible to develop the argument of the rest strongly and clearly in their absence.*

—PRINCIPLES OF LITERARY CRITICISM, *Preface, P. 2.*

2. The explanation of much of the turgid uncouthness of its terminology is the desire to link even the commonplaces of criticism to a systematic exposition of psychology. —*Ibid, P. 3.*

3. For nearly all the topics of psychology are raised at one point or another by criticism —*Ibid, P. 2.*

रिचर्ड्स की दृष्टि में आलोचना कलात्मक अनुभवों में विवेक (भेदकरण) का एवं उन अनुभवों के मूल्यांकन का प्रयत्न है।[4] विभिन्न कलाकृतियों से प्राप्त अनुभवों का अन्तर स्पष्ट करना एवं उनकी आपेक्षिक श्रेष्ठता-हीनता का निर्णय करना आलोचना-व्यापार का मुख्य अंग है। किन्तु रिचर्ड्स का विश्वास है कि यह तबतक सम्भव नहीं है जबतक हम कला से प्राप्त होनेवाले अनुभवों की प्रकृति को ठीक से न जान लें।[5] कलात्मक अनुभवों की प्रकृति के विश्लेषण के लिए मानसिक व्यापारों की जानकारी आवश्यक है। इस प्रकार रिचर्ड्स काव्यालोचन और मनोविज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध देखते हैं।

रिचर्ड्स उन लोगों से सहमत नहीं हैं जो 'शिवम्' (गुड) की सामान्य जिज्ञासा का कलालोचन से कोई सम्बन्ध नहीं मानते। उनका मत है कि "शिव क्या है ?" और "कला क्या है ?" ये दोनों प्रश्न एक-दूसरे पर प्रकाश डालते हैं।[6] 'शिव' या 'हित' की प्रकृति का अनुसन्धान दर्शनशास्त्र के महत्त्वपूर्ण अंग आचारशास्त्र का विषय है, कलालोचन का नहीं, यह पश्चिम के कलावादी आलोचकों का सामान्य विश्वास था। पर रिचर्ड्स के अनुसार, आलोचक के लिए जीवन-सम्बन्धी सामान्य मूल्य-विचारों का उपयोग आवश्यक है।[7] इसीलिए वे कलागत मूल्य की व्याख्या के पूर्व मूल्य की सामान्य जिज्ञासा में प्रवृत्त होते हैं। 'प्रिंसिपुल्स' के छठे और सातवें अध्यायों में इसी विषय का प्रतिपादन है। इस प्रकार रिचर्ड्स की पुस्तक दर्शन या आचारशास्त्र के क्षेत्र को अंशतः ग्रहण कर लेती है। काव्यालोचन के प्रति इस व्यापक दृष्टिकोण को अपनाकर ही रिचर्ड्स ने 'प्रिंसिपुल्स' की भूमिका में अपनी यह आकांक्षा व्यक्त की है कि उनकी यह पुस्तक मनुष्य के भविष्य से सम्बन्ध रखनेवाले विवादों में अवदान बनकर प्रस्तुत हो।[8] अपनी पुस्तक की उपमा उन्होंने उस करघे से दी है जिसपर सभ्यता के उलझे-बिखरे तन्तुओं को फिर से बुनने का प्रयास किया गया है।[9]

वस्तुतः रिचर्ड्स काव्यालोचन का ज्ञान के उन अंगों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार करते हैं जो नयी-नयी खोजों के कारण विकसित होते चलते हैं। वैज्ञानिक आविष्कारों के परिणामस्वरूप ज्ञान के जिन नये क्षेत्रों का उद्घाटन होता है और जिन

4. Criticism, as I understand it, is the endeavour to discriminate between experiences and to evaluate them —*Ibid, P. 2*

5. We cannot do this without some understanding of the nature of experience. —*Ibid, P. 2.*

6. The two problems "What is good ?" and "What are the arts ?" reflect light upon one another. —*Ibid, P. 37.*

7. The critic cannot possibly avoid using some ideas about value —*Ibid, P 35.*

8. I would wish this book to be regarded as a contribution towards these choices of the future —*Ibid, P. 4.*

9. This book might better be compared to a loom on which it is proposed to re-weave some ravelled parts of our civilisation. —*Ibid, P. 1.*

नवीन विचारो का जन्म होता है उनसे काव्यालोचन अप्रभावित नही रह सकता। इसी विश्वास के कारण रिचर्ड्स ने 'प्रिंसिपुल्स' की भूमिका मे यह सम्भावना व्यक्त की है कि ३००० ई० के मनुष्य के पास जो ज्ञानभाण्डार रहेगा उसकी तुलना मे हमारा आज का सौन्दर्यशास्त्र और मनोविज्ञान दयनीय प्रतीत होगा।[10] यह स्वीकृति रिचर्ड्स के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रमाण है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखनेवाला व्यक्ति यह नही कह सकता कि वह जो कुछ कह रहा है वही उस विषय पर अन्तिम बात है। इसीलिए रिचर्ड्स को यह अवगत है कि उनके सिद्धान्त परवर्ती ज्ञान-विज्ञान के विकास के कारण अग्राह्य प्रमाणित हो सकते है। पर उन्हें तो इस बात का सन्तोष है कि उन्होंने अबतक के मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानो का उपयोग करते हुए अपने आलोचनासिद्धान्तो का भवन खड़ा किया है।

अपने सिद्धान्तो के प्रतिपादन मे रिचर्ड्स ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का उपयोग किया है, इसके और कई प्रमाण दिये जा सकते है। पुस्तक को वे सोचने का यंत्र मानते हैं।[11] उन्होंने सौन्दर्यात्मिक अवस्थिति (ईस्थेटिक स्टेट) की विशिष्टता की मान्यता को मन कल्पनामात्र माना है चूंकि मनोविज्ञान से इसकी विशिष्टता का समर्थन नही होता। अपनी पुस्तक मे प्रयुक्त प्रत्येक पारिभाषिक शब्द की परिभाषा उन्होंने पुस्तक में ही दे दी है जिससे उसके अर्थ के सम्बन्ध मे किसी को भ्रान्ति न हो। इतना ही नही, उन्होंने अपने सिद्धान्तों के व्यावहारिक प्रयोग को स्पष्ट करने के लिए 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' नामक पुस्तक की रचना की। रिचर्ड्स की भाषा-शैली भी काव्यमयता, रहस्यात्मकता, भावुकता और अलकृति से रहित है तथा वह विश्लेषणात्मक गद्य का उत्कृष्ट नमूना है। 'प्रिंसिपुल्स' की भूमिका मे उन्होंने भावना और विचार के सम्मिश्रण को प्रस्तुत करनेवाली लेखनशैली को खतरनाक माना है।[12] वे तो आलोचना की भाषा का आदर्श वैज्ञानिक विषयो के प्रतिपादन मे प्रयुक्त होनेवाली भाषा में देखते हैं।

रिचर्ड्स की चिन्तनपद्धति एवं प्रतिपादनशैली की वैज्ञानिकता के पीछे एक गम्भीर प्रेरणा है। औद्योगिक क्रान्ति एवं वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप जिस वैज्ञानिक बुद्धिवाद का विकास पिछली कुछ शताब्दियो मे हुआ है उसने कविता के महत्त्व और सार्थकता के विषय मे विचारकों के मन मे गहरा सशय उत्पन्न किया है। रिचर्ड्स के समक्ष एक प्रमुख समस्या यह थी कि इस वैज्ञानिक युग मे कविता की सार्थकता और महत्त्व की ऐसी तर्कसम्मत व्याख्या की जाए जो युग के बुद्धि-

10 It should be borne in mind that the knowledge which the men of A. D. 3000 will possess, if all goes well, may make all our aesthetics, all our psychology, all our modern theory of value, look pitiful. —*Ibid, P. 4*

11 A book is a machine to think with. —*Ibid, P. 1.*

12. Mixed modes of writing which enlist the reader's feeling as well as his thinking are becoming dangerous to the modern consciousness with its increasing awareness of the distinction. —*Ibid, P. 3.*

वादियों को स्वीकार्य हो सके। इसी प्रयास में उन्होंने अपने आलोचना-सिद्धान्तों को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

कविता के महत्त्व की स्थापना का प्रश्न पाश्चात्य समीक्षा में प्रबल रूप से समीक्षकों के अवधान का विषय बना है। सर फिलिप सिडनी, पर्सी बीशी शेली, मैथ्यू आर्नल्ड, आई० ए० रिचर्ड्स, कॉडवेल—ये कुछ प्रमुख नाम हैं जो कविता के 'डिफेन्स' के प्रयत्नों के इतिहास में सम्बद्ध हैं। कविता की रक्षा की आवश्यकता इसलिए पड़ती रही है कि विभिन्न युगों में विभिन्न विद्वान् अनेक आधारों पर कविता पर अनेक प्रकार के आक्षेप कर उसके कैमर्थ्य का प्रश्न उठाते रहे हैं। प्लातोन्, गॉसोन्, मेकाले, टामस लव पीकॉक आदि ने कविता के विरुद्ध ऐसे आक्षेप किये हैं और उसपर ऐसे-ऐसे फतवे दिये हैं कि कवियों और आलोचकों को जवाब देने को उद्यत होना पड़ा है। इस विवाद का किञ्चित् परिचय रिचर्ड्स की समस्या की पृष्ठभूमि एवं उनके प्रयत्न को आवश्यकता को समझने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

कविता की सार्थकता के प्रति विज्ञान की प्रतिष्ठावृद्धि के पूर्व भी सन्देह व्यक्त किया गया था। ई०पू० चौथी सदी में यूनानी दार्शनिक प्लातोन् ने प्रत्यय (आइडिया) को ही चरम सत्य मानते हुए जगत् को उसका आभास (रिफ्लेक्शन) माना और जगत् की अनुकृतिस्वरूपा कविता को आभास का आभास समझकर सत्य से बिलकुल दूर सिद्ध किया। इसी आधार पर कवियों को असत्य का प्रचारक बताते हुए उसने अपने आदर्श प्रजातंत्र से कवियों के निष्कासन की महत्त्वपूर्ण घोषणा की। वस्तुतः ई०पू० छठी शताब्दी के यूनानी दार्शनिकों के समय से ही दर्शन और काव्य की प्रतिद्वन्द्विता चली आ रही थी। प्लातोन् की धारणा में उसी प्रतिद्वन्द्विता की प्रतिध्वनि सुनने को मिलती है। इसके अतिरिक्त, अपने गुरु सोक्रेतेज से प्लातोन् को जो नैतिक दृष्टि मिली थी उसके कारण भी उसने कविता का विरोध किया। अपने राज्य एथेन्स के समकालीन अधःपतन का आंशिक दायित्व उसकी दृष्टि में तत्कालीन कविता के विकृत रूप पर था।

कविता को असत्य एवं अनैतिक बताने का प्लातोन् का आक्षेप इंगलैंड में १६वीं सदी में पुनः दुहराया गया जब वहाँ के प्यूरिटन लेखकों ने थियेटर पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। १५७१ ई० में लन्दन में 'प्रोफेशनल थियेटर' की स्थापना के तुरत बाद 'विशुद्धिवादी' (प्यूरिटन) लेखकों ने उसके विरुद्ध प्रचारयुद्ध छेड़ दिया था चूँकि उनका विश्वास था कि नौजवानों पर थियेटर का बुरा असर पड़ रहा था। इस प्रचारयुद्ध के क्रम में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है पादरी स्टीफेन् गॉसोन् की वह पुस्तिका जो १५७६ ई० में प्रकाशित हुई और सर फिलिप सिडनी को समर्पित की गयी। इस व्यक्ति ने, जो खुद भी लेखक रहा था, कवियों, नाटककारों तथा अन्य कलाकारों को अनैतिकता एवं पाप को प्रोत्साहन देनेवाला माना और कविता एवं अन्य कलाओं से विमुखता की प्रेरणा दी। सर फिलिप सिडनी की

'डिफेन्स ऑफ पोयजी' या 'ऐन् एपालोजी फॉर पोइट्री' यद्यपि १५८५ ई० में लिखी गयी पर प्राय गॉसोन् के आक्षेपो का जवाब मानी जाती है। सिडनी ने कविता पर असत्य के आरोप का जवाब यह कहकर दिया कि कविता मे झूठ का कथन नही होता; कारण कि उसमे किसी बात को विधिरूप से कहा ही नही जाता है।[13] अनैतिकता के आक्षेप के विषय मे सिडनी का कथन है कि कविता मनुष्य की बुद्धि का दुरुपयोग नही करती, मनुष्य की दुर्बुद्धि ही कविता का दुरुपयोग करती है।[14] सिडनी का विश्वास था कि कवि का कार्य आनन्दप्रद शिक्षण है।[15]

कविता पर असत्यार्थाभिधान, असत् उपदेश एवं असभ्यार्थकथन के आक्षेप हमारे यहाँ भी लगाये गये थे, यह राजशेखर की 'काव्यमीमासा' के साक्ष्य पर कहा जा सकता है। राजशेखर ने इन तीन आक्षेपो का उत्तर भी दिया है। उनका कथन है कि 'काव्य मे असत्य अर्थ का कथन होता है, अतः उसका उपदेश नही करना चाहिए'—ऐसा कहनेवाले[16] अर्थवाद का महत्त्व भूल जाते हैं। राजशेखर ने अनेक उदाहरणो के द्वारा यह बताया है कि कविता मे ही नही, वेद, शास्त्र और लोक में भी अर्थवाद का कथन मिलता है।[17] अत अर्थवाद को अपनाने के कारण कविता पर असत्याभिधान का आरोप लगाना राजशेखर के अनुसार उचित नहीं है।[18] 'काव्य असत् मार्ग का उपदेश करता है, अत. वह अग्राह्य है', इस आक्षेप[19] का उत्तर राजशेखर यह देते हैं कि काव्य मे विधिरूप से नही, निषेधरूप मे असत् मार्ग का उल्लेख होता है।[20] उन्होने कवि को असत् उपदेश के आक्षेप मे बरी ही नही किया है, उसका महत्त्व यह कहकर उद्घोषित किया है कि कविवचन पर आधृत लोकव्यवहार निःश्रेयसकारी होते हैं।[21] 'असभ्यार्थकथन' या अश्लीलता के आक्षेप[22] के विषय मे राजशेखर का कथन है कि प्रसंग आने पर

13. Now for the poet, he nothing affirms and therefore never lieth.
Sir Phillip Sidney: AN APOLOGY FOR POETRY, *collected in* POETS ON POETRY. P. 50.

14 Not say that poetry abuseth man's wit, but that man's wit abuseth poetry.
—*Ibid*, *P. 51.*

15. .."it is not rhyming and versing that maketh a poet.. ... .But it is that feigning notable images of virtues, vices, or what else, with that delightful teaching, *which must be the right describing note to know a poet by." —Ibid, P. 29.*

16. "असत्यार्थाभिधायित्वान्नोपदेष्टव्यं काव्यम्" इत्येके। —काव्यमीमांसा, पृष्ठ ६१।

17. वही, पृष्ठ ६१।

18. 'न' इति यायावरीयः, 'नासत्यं नाम किञ्चन काव्ये यस्तु स्तुत्येष्वर्थवादः। स न परं कविकर्मणि श्रुतौ च शास्त्रे लोके च। —वही, पृष्ठ ६२।

19 "असदुपदेशकत्वात्तर्हि नोपदेष्टव्यं काव्यम्" इत्यपरे। —वही, पृ० ६६।

20 "अस्त्ययमुपदेशः किन्तु निषेध्यत्वेन, न विधेयत्वेन।" इति यायावरीयः। —वही, पृ० ६६।

21. किञ्च कविवचनायत्ता लोकयात्रा। "सा च निःश्रेयसमूलम्" इति महर्षयः। —वही, पृ० ६६।

22. "असभ्यार्थाभिधायित्वान्नोपदेष्टव्यं काव्यम्" इति च केचित्। —वही, पृ० ६७।

ऐसा वर्णन करना पड़ता है और वेद तथा शास्त्र में भी अश्लील वर्णन मिलते हैं।[23] इसके प्रमाण में कई उदाहरण उन्होंने दिये हैं।[24]

प्रस्तुत प्रसंग में राजशेखर की चर्चा का प्रयोजन इस बात को स्पष्ट करना है कि कविता पर जैसे आक्षेप पश्चिम में लगाये गये हैं वैसे हमारे यहाँ भी तथा उनका उत्तर देने का प्रयास यहाँ भी अपने ढंग से हुआ है। पौरस्त्य और पाश्चात्य काव्यचिन्तन के कतिपय मिलनबिन्दुओं में एक यह भी है।

दार्शनिक प्लातोन् या पादरी गॉसोन् के आक्षेपों में वह बल न था जो कविता के अस्तित्व के सामने कोई बड़ा खतरा पैदा कर दे। पर पिछली दो-तीन शताब्दियों में विज्ञान ने जो विस्मयजनक प्रगति की है उससे कविता के अस्तित्व के सम्मुख वास्तविक खतरा उपस्थित हो गया है, यह बोध स्वयं कवियों और आलोचकों को हुआ है। औद्योगिक क्रान्ति और वैज्ञानिक आविष्कारों ने न केवल मनुष्य की जीवन-पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किये हैं अपितु उसकी चिन्तनप्रक्रिया एवं जीवनदृष्टि को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। पिछली कुछ शताब्दियों में ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में आश्चर्यजनक प्रगति हुई है और ज्ञान की अनेक नवीन शाखाओं का विकास हुआ है। जीवविज्ञान, उत्पत्तिविज्ञान, जाति-विज्ञान, मानवविज्ञान, मनोविश्लेषणशास्त्र जैसी ज्ञान की शाखाओं का विकास विगत दो-तीन शताब्दियों की घटना है और इसमें किये गये अनुसन्धानों ने मनुष्य के विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन की सम्भावनाएँ पैदा की हैं। डार्विन, फ्रायड, मार्क्स और आइन्स्टाइन के विचारों ने मनुष्य की चिन्ताधारा को किस सीमा तक प्रभावित किया है, इसका अन्दाज लगाना भी कठिन है। दर्शन के क्षेत्र में बुद्धिवाद (रैशन-लिज्म), अनुभववाद (इम्पीरिसिज्म), भाववाद (कॉन्ते का पॉजिटिविज्म), तार्किक अनुभववाद (लॉजिकल इम्पीरिसिज्म) तथा तार्किक भाववाद (लॉजिकल पॉजिटि-विज्म) जैसे अनेक वाद विज्ञान के प्रभाव और उसकी उपासना के परिणामस्वरूप प्रचलित हुए हैं। वैज्ञानिकतावाद (साइंटिज्म) तथा वैज्ञानिक विश्वदर्शन (साइंटिफिक वेल्टान्शौग) का जादू विश्व के शिक्षित समुदाय पर हावी है। वैज्ञानिकतावाद वैज्ञानिक रीति द्वारा प्राप्त ज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के ज्ञान को प्रामाणिक नहीं मानता और वैज्ञानिक विश्वदर्शन का आग्रह है कि ब्रह्माण्ड की वैज्ञानिक व्याख्या के अतिरिक्त और कोई व्याख्या स्वीकार न की जाए तथा इसी व्याख्या के आधार पर उपयुक्त जीवनदर्शन का निर्माण किया जाए।

धर्म, दर्शन और कविता के प्रति विज्ञान की ओर से भीषण संकट प्रस्तुत है। एक ओर वैज्ञानिक समाजवाद के आविष्कर्त्ता मार्क्स धर्म को अफीम कहते हैं तो दूसरी ओर प्राकृतिक

23 "प्रक्रमागतो निबन्धनीय एवायमर्थः." इति यायावरीयः। तदिदं श्रुतौ शास्त्रे चोपलभ्यते। —वही, पृ० ६८।

24. वही, पृ० ६८-६९।

विज्ञानो के अलावा मनोविज्ञान को एकमात्र विज्ञान माननेवाले[25] और मनोविश्लेपण के जन्मदाता फ्रायड धर्म की प्राचीनतम अभिव्यक्ति को पशुपूजा (टोटेमिज्म) के रूप मे देखते हैं और आदिम नैतिक आदेशो का (जिन्हें वे 'ताबू' कहते हैं) विकास मानते हैं।[26] यह विज्ञान की उपासना का ही परिणाम है कि विटजेन्स्टीन, ए० जे० अय्यर तथा राइल जैसे तार्किक भाववादी तत्त्वमीमामा को दर्शन का विषय ही नही मानते और भाषाविश्लेषण को दर्शन का एकमात्र कार्य समझते हैं। ये दार्शनिक तत्त्वमीमासा को कविता की कोटि मे रखते हैं। धर्म और दर्शन पर विज्ञान की ओर से कैसा सकट उपस्थित हुआ है, इसके निदर्शन के लिए ये कुछ बाते पर्याप्त हैं।

यद्यपि वैज्ञानिक अपने अनुसन्धानो मे ही सलग्न रहे हैं और कविता के विरोध मे प्राय: विरत ही रहे हैं पर उनके चमत्कारक आविष्कारो से विज्ञान को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसके कारण कविता को सार्थकता के विषय मे विचारकों और लेखकों मे गहरा संशय देखा जाता है। सत्रहवी सदी के अन्त मे ही यह सन्देह व्यक्त होने लगा था कि विज्ञान के प्रभाववश कविता का भविष्य निराशापूर्ण है। सत्रहवीं सदी के अन्तिम कुछ वर्षों से ही वैज्ञानिक बुद्धिवाद जोर पकड़ने लगा। जर्मन तथा आग्ल स्वच्छन्दतावाद (रोमैंटिमिज्म) मे इस बढते हुए वैज्ञानिक बुद्धिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया की भावनाएँ निहित थी। विज्ञान के प्रति विरोध का भाव प्राय. सभी प्रमुख आग्ल स्वच्छन्दतावादी कवियो मे देखा जा सकता है। इन कवियो का यह सामान्य विश्वास था कि विज्ञान की तार्किकता कविकल्पना की विरोधिनी है। वर्ड्सवर्थ की यह टिप्पणी उद्धृत की जाती है कि विज्ञान ने कल्पना के साथ युद्ध छेड दिया है और उसे मिटा देने पर तुला हुआ है।[27] कीट्स ने अपनी काव्यपुस्तक 'लामिया' मे बड़े खेद के साथ यह लिखा है कि जो इन्द्रधनुष हमारी सौन्दर्यवृत्ति को सदियो मे उद्बुद्ध करता रहा है और हमारी बहुरगी कल्पनाओं का आश्रय रहा है उसके रगों के वैज्ञानिक विश्लेषण से हमारा वह सौन्दर्यलोक ही भूमिसात् हो गया है।[28] उसी काव्य मे वे पूछते हैं कि

25. Strictly speaking, indeed, there are only two sciences— psychology, pure and applied, and natural science

—*Sigmund Freud* : NEW INTRODUCTORY LECTURES ON PSYCHO-ANALYSIS, P 229.

26. It seems to be a fact that the earliest form in which religion appeared was the remarkable one of totemism, the worship of animals, in the train of which *followed the first ethical commands, the taboos.—Ibid, P. 212.*

27 *R P. Graves* : LIFE OF WILLIAM HAMILTON, P. 313.

28 There was an awful rainbow once in heaven :
We know her woof, her texture; she is given
In the dull catalogue of common things.

John Keats : LAMIA, COLLECTED POEM OF KEATS, P. 180.

ऐसा वर्णन करना पड़ता है और वेद तथा शास्त्र में भी अश्लील वर्णन मिलते है।[23] इसके प्रमाण मे कई उदाहरण उन्होंने दिये है।[24]

प्रस्तुत प्रसग मे राजशेखर की चर्चा का प्रयोजन इस बात को स्पष्ट करना है कि कविता पर जैसे आक्षेप पश्चिम मे लगाये गये हैं वैसे हमारे यहाँ भी तथा उनका उत्तर देने का प्रयास यहाँ भी अपने ढग से हुआ है। पौरस्त्य और पाश्चात्य काव्यचिन्तन के कतिपय मिलनबिन्दुओ मे एक यह भी है।

दार्शनिक प्लातोन् या पादरी गॉसोन् के आक्षेपो मे वह बल न था जो कविता के अस्तित्व के सामने कोई बड़ा खतरा पैदा कर दे। पर पिछली दो-तीन शताब्दियों मे विज्ञान ने जो विस्मयजनक प्रगति की है उससे कविता के अस्तित्व के सम्मुख वास्तविक खतरा उपस्थित हो गया है, यह बोध स्वय कवियो और आलोचको को हुआ है। औद्योगिक क्रान्ति और वैज्ञानिक आविष्कारो ने न केवल मनुष्य की जीवन-पद्धति मे क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किये है अपितु उसकी चिन्तनप्रक्रिया एव जीवनदृष्टि को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। पिछली कुछ शताब्दियो मे ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओ मे आश्चर्यजनक प्रगति हुई है और ज्ञान की अनेक नवीन शाखाओं का विकास हुआ है। जीवविज्ञान, उत्पत्तिविज्ञान, जाति-विज्ञान, मानवविज्ञान, मनोविश्लेषणशास्त्र जैसी ज्ञान की शाखाओं का विकास विगत दो-तीन शताब्दियों की घटना है और इनमे किये गये अनुसन्धानो ने मनुष्य के विचारो मे क्रान्तिकारी परिवर्तन की सम्भावनाएँ पैदा की है। डार्विन, फ्रायड, मार्क्स और आइन्स्टाइन के विचारो ने मनुष्य की चिन्ताधारा को किस सीमा तक प्रभावित किया है, इसका अन्दाज लगाना भी कठिन है। दर्शन के क्षेत्र मे बुद्धिवाद (रैशन-लिज्म), अनुभववाद (इम्पीरिसिज्म), भाववाद (कोंते का पॉजिटिविज्म), तार्किक अनुभववाद (लॉजिकल इम्पीरिसिज्म) तथा तार्किक भाववाद (लॉजिकल पॉजिटि-विज्म) जैसे अनेक वाद विज्ञान के प्रभाव और उसकी उपासना के परिणामस्वरूप प्रचलित हुए हैं। वैज्ञानिकतावाद (साइंटिज्म) तथा वैज्ञानिक विश्वदर्शन (साइंटिफिक वेल्टान्शांग) का जादू विश्व के शिक्षित समुदाय पर हावी है। वैज्ञानिकतावाद वैज्ञानिक रीति द्वारा प्राप्त ज्ञान के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार के ज्ञान को प्रामाणिक नहीं मानता और वैज्ञानिक विश्वदर्शन का आग्रह है कि ब्रह्माण्ड की वैज्ञानिक व्याख्या के अतिरिक्त और कोई व्याख्या स्वीकार न की जाए तथा इसी व्याख्या के आधार पर उपयुक्त जीवनदर्शन का निर्माण किया जाए।

धर्म, दर्शन और कविता के प्रति विज्ञान की ओर से भीषण सकट प्रस्तुत है। एक ओर वैज्ञानिक समाजवाद के आविष्कर्त्ता मार्क्स धर्म को अफीम कहते हैं तो दूसरी ओर प्राकृतिक

23 "एकमारत्नो निबन्धनीय एवायमर्थः." इति यायावरीय । तदिदं श्रुतौ शास्त्रे चोपलभ्यते। —वही, पृ० ६८।

24. वही, पृ० ६८-६९।

विज्ञानों के अलावा मनोविज्ञान को एकमात्र विज्ञान माननेवाले[25] और मनोविश्लेपण के जन्मदाता फ्रायड धर्म को प्राचीनतम अभिव्यक्ति को पशुपूजा (टोटेमिज्म) के रूप मे देखते हैं और आदिम नैतिक आदेशो का (जिन्हे वे 'ताबू' कहते हैं) विकास मानते हैं।[26] यह विज्ञान की उपासना का ही परिणाम है कि विट्जेन्स्टीन, ए० जे० अय्यर तथा राइल जैसे तार्किक भाववादी तत्त्वमीमांसा को दर्शन का विषय ही नही मानते और भाषाविश्लेषण को दर्शन का एकमात्र कार्य समझते हैं। ये दार्शनिक तत्त्वमीमासा को कविता की कोटि मे रखते हैं। धर्म और दर्शन पर विज्ञान की ओर से कैसा संकट उपस्थित हुआ है, इसके निदर्शन के लिए ये कुछ बाते पर्याप्त हैं।

यद्यपि वैज्ञानिक अपने अनुसन्धानो मे ही सलग्न रहे हैं और कविता के विरोध मे प्राय विरत ही रहे हैं पर उनके चमत्कारक आविष्कारो से विज्ञान को जो प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसके कारण कविता की सार्थकता के विषय मे विचारकों और लेखकों में गहरा सशय देखा जाता है। सत्रहवी सदी के अन्त में ही यह सन्देह व्यक्त होने लगा था कि विज्ञान के प्रभाववश कविता का भविष्य निराशापूर्ण है। सत्रहवी सदी के अन्तिम कुछ वर्षों मे ही वैज्ञानिक बुद्धिवाद जोर पकडने लगा। जर्मन तथा आग्ल स्वच्छन्दतावाद (रोमैंटिसिज्म) में इस बढते हुए वैज्ञानिक बुद्धिवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया की भावनाएँ निहित थी। *विज्ञान के प्रति विरोध का भाव प्राय. सभी प्रमुख आग्ल स्वच्छन्दतावादी कवियो मे देखा जा सकता है।* इन कवियों का यह सामान्य विश्वास था कि विज्ञान की तार्किकता कविकल्पना की विरोधिनी है। वर्ड्सवर्थ की यह टिप्पणी उद्धृत की जाती है कि विज्ञान ने कल्पना के साथ युद्ध छेड दिया है और उसे मिटा देने पर तुला हुआ है।[27] कीट्स ने अपनी काव्यपुस्तक 'लामिया' मे बड़े खेद के साथ यह लिखा है कि जो इन्द्रधनुष हमारी सौन्दर्यवृत्ति को सदियो से उद्बुद्ध करता रहा है और हमारी बहुरंगी कल्पनाओ का आश्रय रहा है उसके रगो के वैज्ञानिक विश्लेषण से हमारा वह सौन्दर्यलोक ही भूमिसात् हो गया है।[28] उसी काव्य में वे पूछते हैं कि

25. *Strictly speaking, indeed, there are only two sciences— psychology, pure and applied, and natural science*
—*Sigmund Freud* : NEW INTRODUCTORY LECTURES ON PSYCHO-ANALYSIS, P 229.

26 *It seems to be a fact that the earliest form in which religion appeared was* the remarkable one of totemism, the worship of animals, in the train of which followed the first ethical commands, the taboos —*Ibid, P 212.*

27. *R. P. Graves* : LIFE OF WILLIAM HAMILTON, P. 313.

28 There was an awful rainbow once in heaven :
We know her woof, her texture, she is given
In the dull catalogue of common things
John Keats : LAMIA, COLLECTED POEM OF KEATS, P. 180

क्या शुष्क बौद्धिक दर्शन के संस्पर्शमात्र से सारा आनन्द उड़ नहीं जाता?[29] सेसिल डे लीविस की प्रसिद्ध उक्ति है कि तर्क मधु के छत्ते का विश्लेषण करता रहे, हम तो मधु में ही सन्तोष है।[30] एक ओर स्वच्छन्दतावादी कवि विज्ञान की शुष्कता और अपूर्णता पर व्यंग्य करते हैं, दूसरी ओर विज्ञान के हिमायती कविता की भावुकता और कल्पनाशीलता का मखौल उड़ाते हैं। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दियों में विज्ञान और कविता के द्वन्द्व के बड़े रोचक दृश्य विचार के रंगमंच पर देखने को मिलते हैं।

स्वच्छन्दतावादी कवियों के युग में कविता और विज्ञान का जो संघर्ष चल रहा था उसका सर्वाधिक प्रतिनिधि वर्णन टामस लव पीकॉक के 'द फोर एजेज ऑफ पोइट्री' नामक निबन्ध में मिलता है। यह व्यक्ति प्रसिद्ध आंग्ल कवि शैली का मित्र था और स्वयं व्यंग्यात्मक उपन्यासों का लेखक था। इसने उक्त निबन्ध में कवि को सभ्य समाज का ऐसा अर्द्धबर्बर व्यक्ति माना है जो अपने पुराने विचारों, भावों और तौर-तरीकों को लिये व्यतीत युग में मनमा निवास करता है।[31] पीकॉक के अनुसार, कविता लिखना वाहियात धन्धा है और उसमें किसी भी सच्चे बुद्धिजीवी को कोई दिलचस्पी नहीं होनी चाहिए।[32]

पीकॉक के निबन्ध के पाँच वर्ष बाद प्रकाशित मेकाले के मिल्टन-सम्बन्धी निबन्ध में कविता की उपमा जादुई चिराग से दी गयी और उसकी सार्थकता अन्धकारयुग में ही बतायी गयी।[33] मेकाले का कहना है कि कविता का सत्य पागलपन का सत्य है, ऐसा सत्य जिसके तर्क तो सही हैं पर पूर्वावयव (प्रेमिसेज) ही झूठे हैं।[34] उसके अनुसार कविता आदिम मानव की मनोवृत्ति के लिए कितनी

29 Do not all charms fly
At the mere touch of cold philosophy? —*Ibid, P 180*

30 Let logic analyse the hive
Wisdom's content to have the honey —*C D Lewis*

31 A poet in our times is a semi-barbarian in a civilised community. He lives in the days that are past His ideas, thoughts, feelings, associations, are all with barbarous manners, obsolete customs, and exploded superstitions The march of his intellect is a like a crab, backward

—*T. L Peacock* THE FOUR AGES OF POETRY

32 Poetry was the mental rattle that awakened the attention of intellectuals in the infancy of civil society; but for the maturity of mind to make a serious business of these playthings of its childhood is as absurd as for a grown up man to rub his gums with coral, and cry to be charmed asleep by the jingle of silver bells —*Ibid*

33 Poetry produces an illusion on the eye of the mind as a magic lantern produces an illusion on the eye of the body And, as a magic lantern acts best in a dark room, poetry affects its purpose most completely in a dark age

—ESSAYS, 1907, I, P. 155.

34 *Truth*, indeed, is essential to poetry; but it is the truth of madness. The reasonings are just, but the premises are false —*Ibid, P. 154.*

भी अनुकूल क्यों न हो, प्रबुद्ध मानव के सभ्य युग में उसका कोई महत्त्व नहीं है।[35] उपयोगितावादी विचारक बेन्थम कविता और संगीत का उतना ही मूल्य स्वीकार करता है जितना पिन खोंसने की क्रीड़ा का।[36] इस प्रकार विज्ञान के प्रभावस्वरूप कविता को जादू (मैजिक), भ्रम (इल्यूजन) तथा मानसिक अस्वास्थ्य (इनसैनिटी) जैसे विशेषणों से सम्मानित किया गया।

कविता की सार्थकता में सन्देह करनेवाले जिन बुद्धिवाद के दर्शन उपर्युक्त कथनों में होते हैं उसका तीव्र प्रतिवाद उन्नीसवीं सदी के कुछ प्रसिद्ध आलोचनात्मक निबन्धों में किया गया। पीकॉक के आक्षेपों का उत्तर शैली ने 'डिफेन्स ऑफ पोइट्री' लिखकर दिया जिसमें उसने कवि को मानवता का अज्ञात नियामक (अनएक्नॉलिज्ड लेजिस्लेटर) बताया[37] और बड़े साहस के साथ कहा कि नैतिकता की आधारशिला आचारशास्त्रियों द्वारा नहीं, कवियों द्वारा डाली जाती है। मैथ्यू आर्नल्ड के 'लिटरेचर ऐण्ड साइंस' शीर्षक कैम्ब्रिज-भाषण में भी, जो १८८२ ई० में प्रकाशित हुआ, विज्ञान द्वारा कविता को दी गयी चुनौती का जवाब दिया गया है। इसमें आर्नल्ड ने अदम्य आत्मविश्वास के साथ यह घोषित किया कि विज्ञान की सफलता के साथ-साथ साहित्य का महत्त्व बढ़ता जायगा, घटेगा नहीं।[38] आर्नल्ड के अनुसार कविता जीवन की व्याख्या करती है, हमें सान्त्वना प्रदान करती है तथा कविता के बिना विज्ञान अपूर्ण है।[39]

डी० क्विन्सी ने 'ज्ञान के साहित्य' (लिटरेचर ऑफ नॉलिज) से 'शक्ति के साहित्य' (लिटरेचर ऑफ पावर) का अन्तर स्पष्ट करते हुए द्वितीय का (जिसके अन्दर काव्यकृतियाँ आती हैं) महत्त्व प्रथम से किसी भी तरह न्यून नहीं माना। उसके अनुसार प्रथम का कार्य शिक्षा देना है जबकि दूसरा हमें प्रेरित और गतिशील करता है।[40] कार्लाइल ने कवि को ऐसा सार्वयुगीन वीर पुरुष माना जिसकी

35. *Ibid*, P. 154.

36 The game of push-pin is of equal value with the arts and sciences of music and poetry. —*Alba Warren* : ENGLISH POETIC THEORY, P 66-7

37 Poets are the unacknowledged legislators of the world
—A DEFENCE OF POETRY : *P.B Shelley*, *Collected in Poets on Poetry*, *P. 209*.

38 Now if we find by experience that humane letters have an undesirable *power of engaging the emotions, the importance of humane letters in man's training* becomes not less, but greater, in proportion to the success of science in extirpating what it calls "mediaeval thinking"
—LITERATURE AND SCIENCE IN FOUR ESSAYS ON LIFE AND LETTERS.
Ed E. K. Brown, *P. 109-10.*

39. *More and more mankind will discover that they have to run to poetry to* interpret life for us, to console us, to sustain us Without poetry our science will appear incomplete. —*M Arnold* : INTRODUCTION TOWARDS ENGLISH POETS, 1880.

40. The function of the first is to teach; the function of the second is to move; the first is a rudder, the second an oar or a sail
—*D. QUINCY'S ESSAY ON A. POPE IN 1848 IN THE NORTH BRITISH REVIEW.*

कि विज्ञान और कविता के कार्यक्षेत्र एवं प्रक्रिया के पार्थक्य का संकेत 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' में ही कर दिया गया है। इस विषय का विस्तृत प्रतिपादन रिचर्ड्‌स की 'साइंस ऐण्ड पोइट्री' नामक पुस्तक में मिलता है जो 'प्रिंसिपुल्स' के प्रकाशन के एक वर्ष बाद यानी १९२५ ई० में प्रथम बार प्रकाशित हुई।

'साइंस ऐण्ड पोइट्री' में रिचर्ड्‌स ने पीकॉक के 'द फोर एजेज ऑफ पोइट्री' से लम्बा उद्धरण दिया है जिसके कुछ अंशों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इसमें यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि कविता के 'डिफेन्स' के प्रयत्नों से रिचर्ड्‌स सन्तुष्ट न थे। उनके असन्तोष के कारण का ऊपर उल्लेख हो चुका है। उन्हें ऐसा लगा कि शेली के प्रत्युत्तर के बावजूद पीकॉक के आक्षेपों का निराकरण नहीं हो सका है। चूंकि पीकॉक ने जिन मौलिक प्रश्नों को उठाया है उनका तर्कयुक्त उत्तर नहीं दिया जा सका है इसलिए इस दिशा में 'साइंस ऐण्ड पोइट्री' रिचर्ड्‌स का महत्त्वपूर्ण प्रयत्न है। इस पुस्तक में पीकॉक के मत का उद्धरण पूर्वपक्ष के रूप में समझना चाहिये।

रिचर्ड्‌स कविता की प्रकृति के विश्लेषण के लिए एवं वैज्ञानिक प्रतिपादन से उसका अन्तर दिखाने के लिए मनोविज्ञान की सहायता लेते हैं। कला मानवीय क्रिया है जो मनुष्यों को प्रभावित करती है अतः उसका मनोविज्ञान की सहायता से विश्लेषण किया जा सकता है, यह उनका दृढ़ विश्वास है। कविता पाठक को किस तरह प्रभावित करती है, इसके विश्लेषण के लिए वे आधुनिक मनोविज्ञान द्वारा प्रदत्त समस्त साधनों का उपयोग करते है। कवि और भावक की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करते हुए वे काव्यात्मक अनुभूति के मूल्य का स्वरूप स्पष्ट करते हैं। डायकेस का यह कथन सही है कि जिस तरह कवियों पर प्लातोन् द्वारा किये गये आक्षेपों का उत्तर शेली ने 'प्लातोनिज्म' का उपयोग करके दिया ठीक उसी तरह रिचर्ड्‌स ने विज्ञान द्वारा कविता को दी गयी चुनौती का जवाब विज्ञान का उपयोग करते हुए दिया है।[46]

विज्ञान और कविता का अन्तर रिचर्ड्‌स ने भाषा के द्विविध प्रयोगों के अन्तर के आधार पर संकेतित किया है। उन्होंने भाषा का एक प्रयोग वह माना है जिसमें उसका उपयोग अभ्युद्देश (रेफरेंस) के लिए यानी तथ्यकथन के लिए होता है। यह भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग है। भाषा का दूसरा प्रयोग वह है जिसमें कथन का उद्देश्य वस्तुओं तथा तथ्यों का अभ्युद्देश न होकर भावों को उभारना रहता है। कविता में ऐसा ही भाषा का प्रयोग रहता है। रिचर्ड्‌स के अनुसार, कोई कविता तथ्यकथन नहीं करती, न उसे करना चाहिये। उसे तो अनुभव के प्रति उपयुक्त

46 Just as Shelley used Platonism to remove Plato's objection to poets, so Richards wished to use science to remove the scientist's objections.

—*Daiches*: SCIENCE AND POETRY.

अभिवृत्ति का निर्माण करना चाहिए।[47] भाषा का यह प्रयोग भावात्मक (इमोटिव) प्रयोग है। इस तरह रिचर्ड्स सत्यानुसन्धान को एकमात्र विज्ञान का अधिकार मानते हैं और कविता की सार्थकता उसकी रागात्मकता में मानते हैं। रिचर्ड्स के अनुसार, किसी भी सफल कविता में निबद्ध अनुभूति कवि के ऐसे मनोवैज्ञानिक समायोजन (एडजस्टमेंट) का निदर्शन होती है जो व्यक्तित्व के लिए मूल्यवान् होता है। यदि पाठक कविता का सफल अध्ययन कर पाए तो उसमें भी यह मनोवैज्ञानिक समायोजन संचरित हो सकता है। इस प्रकार कवि एवं भावक दोनों के लिए कविता का महत्त्व रागपरकता की दृष्टि से है, न कि ज्ञानविस्तार या सत्य के साक्षात्कार की दृष्टि से। रिचर्ड्स की आलोचना को इसीलिए रागपरक आलोचना (एफ़ेक्टिव क्रिटिसिज्म) कहा गया है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का एक तकाजा यह भी है कि किसी भी शास्त्रीय विषय पर कुछ लिखनेवाला अपने पूर्ववर्तियों के प्रति समस्त श्रद्धा के बावजूद अपने कलम उठाने की कैफियत दे। हमारे यहाँ कुछ ऐसी ही प्रेरणाओं से लेखकों का आदर्श यह वाक्य बना था—'नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते।' इस आदर्श का निर्वाह कठिन होते हुए भी काम्य तो माना ही जाएगा। रिचर्ड्स जैसे वैज्ञानिक दृष्टिकोणवाले समीक्षक से इस आदर्श के पालन की आशा की जा सकती है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा दो सहस्राब्दियों से भी अधिक लम्बी अवधि की है और उसे विकसित करने में महान् विचारकों का योगदान रहा है। ऐसे क्षेत्र में सोलहो आने मौलिक बनना सम्भव नहीं। रिचर्ड्स ने 'प्रिंसिपुल्स' की भूमिका में स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि काव्यशास्त्र जैसे पुराने विषय में सर्वथा सब-कुछ नया दे पाना सम्भव नहीं है।[48] तथापि रिचर्ड्स को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि अपने पूर्ववर्ती आलोचनासाहित्य और सौन्दर्यशास्त्र का लेखा-जोखा करते हुए उन अभावों का संकेत किया जाए जिनके परिज्ञान से उन्हें अपने सिद्धान्तों की स्थापना की प्रेरणा मिली हो।

रिचर्ड्स की धारणा है कि यद्यपि काव्यालोचन का विपुल साहित्य उपलब्ध है और महान् आलोचक प्रायः अपने युग के महान् विचारक भी रहे हैं तथापि आलोचना के मौलिक और प्राथमिक प्रश्नों के समीचीन और सन्तोषजनक उत्तर

47. A poem. has no concern with limited and directed reference It tells us, or should tell us nothing It has a different, though an equally important and far more vital function—to use an evocative term in connection with an evocative matter. What it does or should do, is to induce a fitting attitude to experience.
—*I. A. Richards and C. K. Ogden* ; THE MEANING OF MEANING.

48 *One does not expect novel cards when playing so traditional a game; it is the hand which matters*
—*I. A. Richards* : PRINCIPLES OF LITERARY CRITICISM, P. 1.

काव्यालोचन में अलभ्य है। रिचर्ड्स के अनुसार, आलोचना के मौलिक प्रश्न इस प्रकार हैं—

(१) काव्यानुभूति का मूल्य क्या है ?

(२) एक अनुभूति की अपेक्षा दूसरी अनुभूति क्यों अधिक अच्छी है ?

(३) एक ही कलाकृति के सम्बन्ध में विचारों की भिन्नता का कारण क्या है ?

इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए रिचर्ड्स कुछ प्राथमिक प्रश्नों का उत्तर भी काव्यालोचन में अपेक्षित मानते हैं जो उनके अनुसार इस प्रकार हैं—

(१) कविता, संगीत अथवा चित्र की परिभाषा क्या है ?

(२) विविध अनुभूतियों की तुलना किस प्रकार सम्भव है ?

(३) मूल्य का स्वरूप क्या है ?

रिचर्ड्स का मत है कि आलोचनासिद्धान्त के नाम पर अनुमान, उपदेश, कविता, वक्तृता, मतवाद, पूर्वग्रह, रहस्यात्मकता, अस्पष्टता तथा गर्भित संकेत की ही भरमार दिखाई पड़ती है।[49] उन्होंने महान् आलोचकों की कुछ अतिप्रसिद्ध उक्तियों को उद्धृत करके अपने इस मत को प्रमाणित किया है। वे स्वीकार करते हैं कि ऐसी उक्तियों में कुछ, विचार के लिए प्रस्थानबिन्दु हो सकती हैं पर वे न तो अलग-अलग ही और न सामूहिक रूप से ही आलोचना के मौलिक प्रश्नों के समाधान के लिए पर्याप्त हैं। उनके अनुसार, उन उक्तियों में संकेतमात्र हैं, व्याख्या का अभाव है। रिचर्ड्स के अनुसार, आलोचना के केन्द्रीय प्रश्नों—कलाओं का मूल्य क्या है, उत्तम कोटि के मनों के सर्वाधिक एकाग्र क्षणों को उनमें लगाने का कारण क्या है और मानवीय प्रयत्नों में कला का स्थान क्या है—का समाधान नहीं किया गया है।

रिचर्ड्स का मत है कि सौन्दर्यशास्त्र द्वारा भी काव्यालोचन के उपर्युक्त मौलिक प्रश्नों पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला गया है। उनका कथन है कि सौन्दर्यशास्त्र के अधिकांश लेखकों ने आवश्यक तथ्यों (यानी विशिष्ट कलाकृतियों से प्राप्त अनुभूतियों) की उपेक्षा करके केवल अन्तःप्रज्ञा या तर्क के आधार पर कुछ निष्कर्ष दिये हैं जो विश्वसनीय नहीं हैं। दूसरी तरफ, फेकनर और उनके अनुयायियों ने ठोस और विशिष्ट तथ्यों के संकलन और विश्लेषण द्वारा सौन्दर्यशास्त्र में आनुभविक अनुसन्धान (इम्पिरिकल रिसर्च) की प्रक्रिया को अपनाया और मनोविज्ञान के लिए अनेक उपयोगी विवरण प्रदान किये। ऐसे अनुसन्धाताओं के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित

49. A few conjectures, a supply of admonitions, many acute isolated observations, some brilliant guesses, much oratory and applied poetry, inexhaustible confusion, a sufficiency of dogma, no small stock of prejudices, whimsies and crotchets, a profusion of mysticism, a little genuine speculation, sundry stray inspirations, pregnant hints and random apercus; of such as these, it may be said without exaggeration, is extant critical theory composed. —*Ibid*, P. 6.

करते हुए भी रिचर्ड्स ने इनके अनुसन्धान की सीमाओं को स्पष्ट किया है और यह बताया है कि *प्रायोगिक सौन्दर्यशास्त्र से भी काव्यालोचन के मूल प्रश्नों का* समाधान नही हो सका है। उनका कथन है कि सौन्दर्यानुभूति के अत्यन्त सरल आधारो—लकीर की लम्बाई, प्राथमिक ढाँचे, कोई एक रंग, निरर्थक शब्द आदि—को ही उक्त प्रायोगिक सौन्दर्यशास्त्रियों ने अपने अनुसन्धान का विषय बनाया है। ऐसे सरल प्रयोगो से जो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त हुआ है वह यह कि सरल उद्दीपनों से भी उत्पन्न अनुक्रियाओं (रेस्पॉन्सेज) मे बहुत भिन्नता रहती है। इसका स्वाभाविक निष्कर्ष यह है कि चित्र जैसी सकुल वस्तु से उत्पन्न अनुक्रियाओं मे और भी भिन्नता होगी। यह निष्कर्ष काव्यालोचन के लिए बडा ही प्रतिकूल है चूँकि यह उसके महत्त्वपूर्ण प्रश्न—अनुभूतियों की तुलना किस प्रकार की जाए—के समाधान के प्रतिकूल पडता है। रिचर्ड्स का कथन है कि जो वस्तु जितनी ही सरल होगी उसकी अनुक्रिया उतनी ही बहुविध होगी। उदाहरणार्थ, 'रात्रि' शब्द की अनुक्रिया अलग-अलग व्यक्तियों मे या एक ही व्यक्ति के विभिन्न क्षणो मे विभिन्न रूप मे होगी। किन्तु यदि उसे हम किसी वाक्य मे रख दें तो यह विविधता *सीमित हो जाएगी। किसी अनुच्छेद में रख देने पर तो* इसकी *अनुक्रिया बहुत* कुछ एकरूप हो जाएगी। ऐसी स्थिति मे प्रायोगिक सौन्दर्यशास्त्र द्वारा सरल वस्तुओं को *अपने अनुसन्धान का आधार बनाया जाना काव्यालोचन के लिए कितना लाभप्रद* है, यह स्पष्ट है।

किन्तु सौन्दर्यशास्त्र से रिचर्ड्स की सबसे गम्भीर शिकायत यह है कि इसके द्वारा काव्यानुभूति के मूल्यविचार की उपेक्षा को प्रोत्साहन मिला है। अधिक सही यह है कि सौन्दर्यशास्त्रियों के विचारों ने एक अलग प्रकार के मूल्यविचार को—जिसे कलाओं का सौन्दर्य-मूल्य या कला-मूल्य (आर्ट वैल्यू) कह सकते हैं और जिसका अन्य मानवीय मूल्यों से कोई सम्बन्ध नही माना गया है—प्रचारित किया। क्लाइव बेल, ए० सी० ब्रैडले जैसे समीक्षकों ने ऐसे मन्तव्य व्यक्त किये हैं जिनमे कला का जीवन से सम्बन्धविच्छेद स्वीकृत हुआ है। क्लाइव बेल का कथन है कि किसी कलाकृति के आस्वादन के लिए जीवन से कुछ भी साथ लेने की जरूरत नही है; उसके लिए न तो जीवन के विचारो और व्यापारो की कोई जानकारी अपेक्षित है और न उसके भावों का कोई परिचय ही आवश्यक है।[50] इसी प्रकार डॉ० ब्रैडले कविता की प्रकृति के सम्बन्ध मे यहाँ तक कह डालते हैं कि वह (कविता की प्रकृति) न तो वास्तविक जगत् का अग है और न उसका अनुकरण है अपितु उसका एक स्वतत्र, पूर्ण और स्वायत्त अलग जगत् है।[51] कलासम्बन्धी ये

50. To appreciate a work of art we need bring with us nothing from life, no knowledge of its ideas and affairs, no familiarity with its emotions.

—*Clive Bell*: ART, P. 25.

51. Its nature is to be not a part, nor yet a copy, of the real world (as we

धारणाएँ सौन्दर्यशास्त्र की जिस मान्यता पर आधृत हैं उसका रिचर्ड्स ने खंडन किया है।

आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र की वह महत्त्वपूर्ण मान्यता यह है कि सौन्दर्यानुभूति में एक अलग, विशिष्ट प्रकार की मानसिक प्रक्रिया विद्यमान रहती है। इस मान्यता के प्रचलन में इमानुएल कान्ट द्वारा किये गये सौन्दर्य के बौद्धिक विवेचन की प्रबल प्रेरणा है। कान्ट ने सत्य, शिव, सुन्दर के संत का सम्बन्धस्थापन विचार (थॉट), इच्छा (विल) तथा भावना (फीलिंग) के संत से किया। उनके अनुसार, आत्मा की तीन शक्तियाँ हैं—ज्ञान, इच्छा तथा आनन्द या निरानन्द की भावना। इन शक्तियों की विधायिका क्रियाएँ कान्ट के मत से क्रमशः ये हैं—बोध (अण्डरस्टैंडिंग), तर्क (रीजन) तथा निर्णय (जजमेंट)। ज्ञान और इच्छा के बीच कान्ट ने भावना की स्थिति मानी है तथा बोध और तर्क के बीच निर्णय की। प्रथम दो का विवेचन उन्होंने क्रमशः 'क्रिटिक ऑफ प्योर रीजन' तथा 'क्रिटिक ऑफ प्रैक्टिकल रीजन' में तथा 'निर्णय' का विवेचन 'क्रिटिक ऑफ जजमेंट' में किया। इस तीसरे 'क्रिटिक' में कान्ट जिस 'निर्णय' का विवेचन करते हैं वह सैद्धान्तिक निर्णय (थियोरिटिकल जजमेंट) व्यावहारिक अथवा नैतिक निर्णय (प्रैक्टिकल जजमेंट) से भिन्न मननात्मक निर्णय (रिफ्लेक्टिव जजमेंट) है जिसका कार्य कान्ट के अनुसार दिये हुए विशेषों (पर्टिकुलर्स) से सामान्यों (युनिवर्सल्स) की खोज है। सौन्दर्यशास्त्र को कान्ट इसी निर्णय का कार्यक्षेत्र मानते हैं। इसीका दूसरा नाम उन्होंने 'रुचिनिर्णय' (जजमेंट ऑफ टेस्ट) दिया है।

उक्त 'रुचिनिर्णय' की कान्ट ने जिस रूप में व्याख्या की है उसके अनुसार इसका वस्तु के उपयोग से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह वस्तु के द्रव्यपक्ष से नहीं, रूपपक्ष से सम्बन्ध रखता है। यह रुचिनिर्णय विषयिगत (सब्जेक्टिव) है। जब हम किसी वस्तु को सुन्दर या कुरूप कहते हैं तो हम वस्तु के तद्गत रूप से सम्बन्ध नहीं रखते। हम तो अपने आनन्द या कष्ट की भावना की अभिव्यक्ति करते हैं। 'टेबुल गोल है' कथन तार्किक निर्णय का उदाहरण है जिसमें वस्तु की विशेषताओं का कथन होता है। 'टेबुल सुन्दर है' कथन 'रुचिनिर्णय' का उदाहरण है जिसमें वस्तु के तद्गत गुण का कथन नहीं है अपितु 'हमें टेबुल को देखकर आनन्द हो रहा है' इस अभिप्राय का कथन है। 'सौन्दर्य' से सम्बन्ध रखनेवाला यह निर्णय निरुद्देश्य (डिसइंटरेस्टेड) होता है, यानी इसका वस्तु की सत्ता या उसकी उपयोगिता से कोई सरोकार नहीं होता। सौन्दर्यात्मक निर्णय की दूसरी विशेषता कान्ट के अनुसार यह है कि वह सार्वजनीन (युनिवर्सल) होता है, यानी सौन्दर्यानुभूति के समय व्यक्ति अपने पूर्वग्रहों से मुक्त रहता है, वस्तु के प्रति अपनी पसन्द या नापसन्द से अप्रभावित रहता है। निष्कर्ष यह कि कान्ट ने 'रुचिनिर्णय' की

commonly understand that phrase), but a world in itself independent, complete, autonomous.—*A C Bradley*: OXFORD LECTURES ON POETRY, P. 5.

जिस रूप में व्याख्या की उससे इसका सम्बन्ध निरुद्देश्य, सार्वजनीन एवं अबौद्धिक आनन्द से स्थापित हुआ।

कांत ने सत्यं, शिवं, सुन्दर के त्रैत को ज्ञान, इच्छा तथा भावना के त्रैत से जो सम्बद्ध किया उसमें एक कठिनाई थी। 'सत्य' और 'ज्ञान' तथा 'शिव' और 'इच्छा' के तादात्म्य में कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी किन्तु 'सौन्दर्य' को 'भावना' के खाने में रखने में कठिनाई थी। इसके परिणामस्वरूप सौन्दर्यशास्त्रियों द्वारा किसी ऐसी मानसिक प्रक्रिया की खोज शुरू हुई जिसमें 'सौन्दर्य' को बिठाया जा सके। सौन्दर्यात्मक रीति (ईस्थेटिक मोड) की कल्पना इसी खोज का फल थी। सत्य जिज्ञासा का विषय है। वह मन के सैद्धान्तिक अंग का लक्ष्य है। इसी प्रकार 'शिव' इच्छा का, यानी मन के व्यावहारिक अंग का, विषय है। प्रश्न है कि 'सौन्दर्य' को मन के किस अंग से सम्बद्ध किया जाए। उसका सम्बन्ध ऐसी मानसिक क्रिया से ही हो सकता है जो न तो जिज्ञासात्मक हो और न व्यावहारिक ही। परिणामतः सौन्दर्यात्मक क्रिया (एस्थेटिक ऐक्टिविटी) की कल्पना की गयी जिसकी परिभाषा अधिकांश पुस्तकों में कुछ इस प्रकार की निषेधात्मक प्रणाली से दी गयी है : यह वस्तुओं के साथ ऐसा व्यापार है जो न तो उनकी प्रकृति के सम्बन्ध में बौद्धिक जिज्ञासा है और न उन्हें हमारी इच्छा की सन्तुष्टि का साधन बनाता है।[52] कलाकृतियों से प्राप्त होनेवाली अनुभूतियों की भी कुछ ऐसे ही शब्दों में व्याख्या की गयी।

रिचर्ड्स इतना स्वीकार करते हैं कि सौन्दर्यानुभूति में बुद्धि और इच्छा कुछ विशेषताओं को लिये उपस्थित रहती हैं। इन विशेषताओं के रूप में निःसंगता, निर्वैयक्तिकता और निर्मलता के नाम लिये जा सकते हैं। किन्तु इन विशेषताओं के आधार पर ही सौन्दर्यानुभूति को अन्य अनुभूतियों से मूलतः भिन्न मानने के पक्ष में रिचर्ड्स नहीं हैं।

'प्रिंसिपुल्स' के दूसरे अध्याय 'द फैण्टम ईस्थेटिक स्टेट' में रिचर्ड्स ने इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया है कि वस्तुतः सौन्दर्यात्मक अवस्थिति (ईस्थेटिक स्टेट) नामक किसी नितान्त विशिष्ट मनःस्थिति की सत्ता है या नहीं और सौन्दर्यानुभूति को 'अनन्वय'[53] का उदाहरण माना जा सकता है या नहीं। उन्होंने वर्नन ली के इस तर्क को अस्वीकार किया है कि सौन्दर्यानुभूति की विशिष्टता या अनन्वय केवल इस आधार पर सिद्ध है कि कलाकृतियों में कुछ खास प्रकार की रूपयोजना के अनेक बार दर्शन होते हैं। रिचर्ड्स का कहना है कि किसी वस्तु को दूसरी वस्तु से समान या असमान बताना दोनों वस्तुओं की तुलनात्मक परीक्षा से ही सम्भव

52. THE BEAUTIFUL : *Vernon Lee.*

53. 'अनन्वय' एक अलंकार का नाम है जिसमें किसी वस्तु को किसी दूसरे के समान न बताकर अपने समान आप बताया जाता है। हमने Sui generis के अर्थ में यहाँ 'अनन्वय' का व्यवहार किया है जो हमारी समझ से भारतीय अलंकारशास्त्र से परिचित व्यक्ति के लिए सुबोध होगा।

हैं। केवल इस आधार पर किसी वस्तु का 'अनन्वय' सिद्ध नहीं हो सकता कि कोई वस्तु समान रूप में बार-बार देखने को मिलती हैं।

सौन्दर्यानुभूति के विशिष्टत्व की मान्यता के दो स्वरूप रिचर्ड्स सम्भव मानते हैं। प्रथमतः यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्यानुभूति में एक न्यारा प्रकार का मनस्तत्त्व विद्यमान रहता है जो अन्य अनुभूतियों में नहीं रहता। क्लाइव बेल सौन्दर्यात्मक भाव (ईस्थेटिक इमोशन) नामक विशिष्ट भाव को भेदक तत्त्व मानते है। किन्तु मनोविज्ञान इस तत्त्व की सत्ता का समर्थन नहीं करता। वर्नन ली भावनादात्म्य (एम्पेथी) को यह गौरव देती हैं। किन्तु रिचर्ड्स का कहना है कि भावनादात्म्य अन्य अनुभूतियों में भी मौजूद रहता है। सौन्दर्यानुभूति की विशिष्टता के पक्ष का दूसरा रूप यह हो सकता है कि तत्त्वतः यह अनुभूति अन्यों से अभिन्न होकर भी स्वरूपतः उनसे भिन्न होती है। स्वरूप की यह विशिष्टता निरुद्देश्यता, निःसंगता, दूरी, निर्वैयक्तिकता, विषयी की सार्वजनीनता (सब्जेक्टिव युनिवर्सैलिटी) आदि के रूप में वर्णित होती है। रिचर्ड्स के मतानुसार ये विशेषताएँ कलानुभूति के प्रभावस्वरूप हैं, संप्रेषण (कम्यूनिकेशन) की आवश्यक शर्त्त या उसका प्रभाव हैं, सौन्दर्यानुभूति की रूपगत विशेषता नहीं।

रिचर्ड्स का कथन है कि 'सौन्दर्यात्मक' (ईस्थेटिक) शब्द से दो भिन्न अभिप्राय व्यक्त किये जाते हैं जिनका अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक है। साधारणतः 'ईस्थेटिक मोड' का अर्थ वस्तुओं को विलक्षण दृष्टि से देखने का प्रकार समझा जाता है जिसके परिणामस्वरूप प्राप्त अनुभूतियाँ मूल्ययुक्त हैं या मूल्यहीन, इसपर द्रष्टा ध्यान नहीं देता। वह सुन्दरता और कुरूपता में कोई अन्तर नहीं देखता। रिचर्ड्स किसी ऐसे दृष्टिप्रकार का अस्तित्व नहीं मानते। वे सौन्दर्य और कुरूपता की अनुभूति में कोई समानता नहीं देखते। 'सौन्दर्यात्मक' (एस्थेटिक) शब्द का एक संकीर्ण अर्थ वह है जो 'सुन्दर' के अनुभव तक अपने को सीमित रखता है और मूल्य को स्वीकार करता है। रिचर्ड्स के अनुसार, इस अर्थ में सौन्दर्यात्मक अनुभूति भिन्न कही जाने योग्य होकर भी बहुत सारी अन्य अनुभूतियों के समान है और यह प्रधानतः अपने अवयवसम्बन्धों की दृष्टि से ही दूसरी अनुभूतियों से भिन्न है; यह अन्य साधारण अनुभूतियों का ही विकसित और व्यवस्थित रूप है, न कि कोई नवीन और भिन्न कोटि की वस्तु।[54] रिचर्ड्स यहाँ तक कहते है कि जब हम किसी चित्र को देखते हैं, किसी कविता को पढ़ते हैं या किसी संगीत को सुनते हैं तब हम उससे कुछ भिन्न कार्य नहीं करते जैसा हम गैलरी जाने के

54. ....that they are closely similar to many other experiences, that they differ chiefly in the connections between their constituents, and that they are only a further development, a finer organisation of ordinary experiences, and not in the least a new and different kind of thing. —PRINCIPLES, P 16.

रास्ते में कर रहे थे या सुबह कपड़ा पहनते समय कर रहे थे;[55] यानी रिचर्ड्‌स कला से प्राप्त अनुभूतियों को वस्त्र पहनने से प्राप्त होनेवाली अनुभूति से सर्वथा भिन्न नहीं मानते। उनका कथन है कि कलात्मक अनुभूति जिस ढंग से हमें *प्राप्त होती है वह अवश्य भिन्न है और नियमत: कलागत अनुभूति अधिक* सकुल और एकीकृत होती है किन्तु हमारी कलानुभूति की क्रिया मूलत: भिन्न प्रकार की नहीं होती।[56] यदि हम उसे मूलतः भिन्न मानें तो उसके वर्णन और व्याख्या में कठिनता आ जाती है। रिचर्ड्‌स का निष्कर्ष है कि जब कलात्मक अनुभूतियाँ जीवन की अन्य अनुभूतियों से मूलतः भिन्न नहीं हैं तब सौन्दर्यशास्त्रियों द्वारा *प्रचारित शुद्ध कलात्मक मूल्य या विचित्र प्रकार के सौन्दर्यमूल्य की मान्यता* भी गलत और भ्रान्त है।

आलोचनासाहित्य के एक अन्य बड़े अभाव की भी रिचर्ड्‌स ने अपने 'प्रिंसिपुल्स' के तीसरे अध्याय 'द लैंग्वेज ऑफ क्रिटिसिज्म' में चर्चा की है जिसे दूर करने के लिए उन्होंने अपने प्रयास की आवश्यकता अनुभव की होगी। उस अध्याय में वे *काव्यालोचन में प्रयुक्त भाषा की असमर्थता और अस्पष्टता की शिकायत* करते हैं। उनका कहना है कि कलाविवेचन में प्रयुक्त भाषा प्रायः भ्रमोत्पादक रही है और उसमें ऐसे अनावश्यक शब्दों का प्रयोग होता रहा है जिनके हटाने से ही अर्थ स्पष्ट हो सकता है। आलोचक प्राय यह कहने के अभ्यस्त रहे हैं कि 'अमुक चित्र सुन्दर है', जबकि उन्हें कहना चाहिए था कि अमुक चित्र से हमें जो अनुभूति *प्राप्त होती है वह प्रकारविशेष से मूल्यवान् है। इस प्रकार के कथन से यह* भ्रान्त धारणा उत्पन्न होती है कि 'सौन्दर्य' उस वस्तु का गुण है जिसे हम सुन्दर कहते हैं। किन्तु रिचर्ड्‌स के अनुसार वास्तविकता यह है कि वस्तुविशेष से हमपर ऐसा प्रभाव पड़ता है जो किसी दृष्टि से मूल्यवान् होता है। कलालोचन में 'फॉर्म', 'बैलेंस', 'डिजाइन', 'युनिटी' जैसे शब्दों के बहुल प्रयोग इसके उदाहरण हैं कि मन पर पड़नेवाले प्रभावों का वस्तु में *प्रक्षेपण किया जाता है* और उन्हें वस्तुगत गुण समझ लिया जाता है। अतः रिचर्ड्‌स की धारणा है कि अबतक कलालोचन की भाषा वक्तव्य को स्पष्टतया व्यक्त करने की अपेक्षा आच्छन्न करने में ही समर्थ रही है।[57] अतः इस प्रवृत्ति का अन्त आवश्यक है।

आलोचनात्मक कथनों को रिचर्ड्‌स ने दो भागों में बाँटा है। जिस कथन से

55 When we look at a picture, or read a poem, or listen to music, we are not *doing something quite unlike what we were doing on our way to the gallery or when* we dressed in the morning. —*Ibid, P. 16.*

56. The fashion in which the experience is caused in us is different, as a rule the experience is more complex and, if we are successful, more unified But our activity is not of a fundamentally different kind —*Ibid, P. 17.*

57. But indeed language has succeeded until recently in hiding from us almost all the things we talk about. —*Ibid, P. 21.*

कलानुभूति के मूल्य पर प्रकाश पड़ता हो, यानी भावक के मन पर पड़े प्रभावों का जिसमें विश्लेषण एवं मूल्यांकन हो, उसे रिचर्ड्स आलोचना का समीक्षात्मक पक्ष (क्रिटिकल पार्ट) प्रकट करनेवाला कथन मानते हैं। जिस कथन में कलाकृति के वस्तुगत वैशिष्ट्य का उद्घाटन किया गया हो उसे वे आलोचना का प्राविधिक पक्ष (टेकनिकल पार्ट) प्रकट करनेवाला कथन मानते है। आलोचना के ये दो पक्ष मिलकर उसका पूर्ण स्वरूप उपस्थित करते हैं। अनुभूति उत्पन्न करने के सभी साधनों की व्याख्या करनेवाली उक्तियाँ आलोचना के प्राविधिक पक्ष के अन्तर्गत आती है जबकि अनुभूतियों के मूल्य और मूल्य के कारणों की व्याख्या करनेवाली उक्तियाँ आलोचना का समीक्षात्मक पक्ष प्रस्तुत करती हैं। रिचर्ड्स का मत है कि इन दोनों पक्षों के अन्तर की अनभिज्ञता के कारण साधन और साध्य में, प्रविधि (टेकनीक) और मूल्य में अन्तर स्पष्ट नहीं हो पाता; एक को दूसरे का स्थानापन्न कर देने की भूल हो जाती है।[58] इसी भ्रान्ति के कारण प्रविधिसम्बन्धी कोई विशेषता कलाकार की उत्कृष्टता का आधार मान ली जाती है और इसके विपरीत छन्दसम्बन्धी छोटी-छोटी भूलें श्रेष्ठ रचनाओं को भी हीन समझ लेने का कारण बन जाती हैं। बहुतेरे पाठक कविता के आन्तरिक मूल्य को नहीं समझ सकने की स्थिति में उसकी बाह्य विशेषताओं पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखते हैं। परिणामत ऐसे लोगों के द्वारा कविता का सम्यक् मूल्यांकन नहीं हो पाता। अतः रिचर्ड्स आलोचना के उपर्युक्त दो पक्षों में अन्तर देखना आवश्यक बताते हैं। पूर्ववर्ती आलोचनासाहित्य में प्रयुक्त भाषा इन दोनों पक्षों के अन्तर को स्पष्ट कर पाने में असमर्थ रही है, ऐसा रिचर्ड्स का मत है।

अपने पूर्ववर्ती आलोचनासाहित्य के जिन अभावों और भ्रान्त मान्यताओं की रिचर्ड्स ने चर्चा की है और जिनका ब्योरा ऊपर प्रस्तुत किया गया है उन्हें समासतः इस प्रकार रखा जा सकता है—

(१) काव्यालोचन के विशाल साहित्य में आलोचना के मौलिक और प्राथमिक प्रश्नों (यथा, काव्यानुभूति का मूल्य, विविध अनुभूतियों की तुलना का आधार, कविता की परिभाषा आदि) के समीचीन और सन्तोषजनक उत्तर अलभ्य हैं। इन प्रश्नों पर महान् समीक्षकों की अपर्याप्त रूप से प्रकाश डालनेवाली जो छिटपुट उक्तियाँ हैं उनमें व्याख्या का अभाव है, जो है वह संकेतमात्र है। तार्किक प्रतिपादन की जगह काव्यमयता, रहस्यात्मकता, अस्पष्टता, उपदेशात्मकता और अनुमिति का प्राबल्य पूर्ववर्ती समीक्षासाहित्य की दुर्बलता है।

(२) प्रायोगिक सौन्दर्यशास्त्र द्वारा प्रस्तुत किये गये निष्कर्षों से भी काव्यालोचन के उपर्युक्त मूल प्रश्नों का समाधान नहीं होता।

58. This trick of judging the whole by the detail, instead of the other way about, or mistaking the means for the end, the technique for the value, is in fact much the most successful of the snares which waylay the critic —*Ibid*, P. 24.

(३) आधुनिक सौन्दर्यशास्त्र ने जीवन की अन्य अनुभूतियों से सौन्दर्यानुभूति के मूलतः भिन्न और विशिष्ट होने की जिस मान्यता का प्रचार किया हैं, वह मन:कल्पनामात्र हैं। इसीलिए इस मान्यता पर आधृत सौन्दर्यमूल्य या कलामूल्य का विचार भ्रान्तिमूलक है और काव्यानुभूति के सही मूल्य का उद्‌घाटन कर पाने में असमर्थ हैं।

(४) काव्यालोचन मे प्रयुक्त भाषा वक्तव्य को स्पष्ट करने की अपेक्षा आच्छन्न करने मे अधिक समर्थ रही हैं तथा उसमें आलोचना के प्राविधिक और समीक्षात्मक पक्षों मे अन्तर दिखा सकने की योग्यता नही रही हैं। परिणामतः काव्यकृतियों के मूल्यांकन मे साध्य और साधन का अन्तर स्पष्ट नही रहा हैं और काव्य के आन्तरिक मूल्य के उद्‌घाटन की जगह उसकी बाह्य विशेषताओं को ही मूल्यांकन का आधार बनाने की भूल होती रही हैं।

रिचर्ड्‌स की पहली शिकायत से यह धारणा नही बनानी चाहिए कि पाश्चात्य आलोचना के विशाल साहित्य मे काव्यालोचन के मूल प्रश्नो पर कुछ विचार ही नहीं किया गया। स्वयं रिचर्ड्‌स ने स्वीकार किया हैं कि उनके पूर्ववर्त्ती आलोचना-साहित्य की बहुत सारी बाते विचार के लिए उपयोगी प्रस्थानबिन्दु हैं तथा उनके इर्द-गिर्द कविता के आस्वादन (एप्रिसिएशन) के लिए बहुत-सी उपयोगी सामग्री पडी हैं। किन्तु रिचर्ड्‌स की शिकायत यह हैं कि कलाओं के मूल्य के सम्बन्ध मे कोई व्यवस्थित सिद्धान्त, जिसकी विस्तृत व्याख्या की गयी हो और जिससे मानव-जीवन मे कला के स्थान और महत्त्व का समुचित ज्ञान होता हो, पूर्ववर्त्ती कलालोचन में उपलब्ध नही हैं।

कला के मूल्य के सम्बन्ध मे तो आलोचना के आदिम युग से ही विचार होता आया हैं। यूनानी महाकवि होमर और दार्शनिक प्लातोन् के बीच की अवधि के यूनानी लेखकों (यथा, हीसियोद, सोल्होन, पिन्दार आदि) की छिटपुट आलोचनात्मक टिप्पणियों मे भी इस बात की स्वीकृति हैं कि कविता आनन्द प्रदान करती हैं या उपदेश देती हैं। वस्तुतः कला के उद्देश्य के सम्बन्ध मे जिज्ञासा करते समय आलोचकों का ध्यान आनन्द और उपदेश पर ही केन्द्रित रहा हैं और इन दो ध्रुवों के बीच ही उनकी बुद्धि दौडती रही हैं। आनन्द और उपदेश का द्वन्द्व आलोचकों के विवाद का विषय रहा हैं। होरेस, ब्वालो, रापें तथा ड्राइडन की एतद्विषयक उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं।[59] किसी ने आनन्द को प्रधानता दी तो किसी ने

59. (i) Poets wish either to instruct or to delight or to combine the two. —*Horace*

(ii) Join the solid and useful with the agreeable —*Boileau*

(iii) It is only for the purpose of being useful that Poetry ought to be agreeable, pleasure is only a means which she uses for the end of profit —*Rapin*

(iv) Delight is the chief, if not the only, end of poetry: instruction can be admitted but in the second place; for poesy only instructs as it delights. —*Dryden*

उपदेश दो। किसी ने दोनों का समन्वय करते हुए 'मधुवेष्टित गोली' के रूप में समाधान प्रस्तुत किया। इस मत का अर्थ यह है कि जिस तरह तीखी या कड़वी दवाएँ मधुवेष्टित होने पर आस्वाद्य बन जाती हैं उसी तरह कला उपदेश को आनन्द से आवेष्टित करके ग्राह्य बना देती है। आशय यह कि कला का उद्देश्य उपदेश देना है पर आनन्द के मधुवेष्टन में। 'सौन्दर्य' की बौद्धिक मीमांसा करने वाले सौन्दर्यशास्त्र ने भी कला की सुखवादी (हेडोनिस्टिक) धारणा को ही प्रोत्साहन दिया है। 'सौन्दर्य' की जितनी परिभाषाएँ दी गयी हैं उनमें सामान्यतः इस बात को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में स्वीकार किया गया है कि 'सुन्दर' वह है जो बिना किसी इच्छा को आन्दोलित किये आनन्द प्रदान करता है।[60]

कला की 'सुखवादी' या 'आनन्दवादी' मान्यता से रिचर्ड्स को सन्तोष न था। इस मान्यता के समर्थक जॉर्ज सान्तियाना के मत का खंडन करते हुए 'फाउंडेशन्स' में रिचर्ड्स और उनके सहलेखकों का मत था कि कला की आनन्दवादी धारणा की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि वह हमें आलोचना की अत्यन्त सीमित शब्दावली प्रदान करती है।[61] कलाकृति के सौन्दर्य और उससे प्राप्त आनन्द की व्याख्या और विश्लेषण के लिए आलोचक के पास समर्थ शब्दकोश नहीं रहता।

इसी प्रकार कला के नीतिवादी विचारों के जो विविध रूप उन्नीसवीं सदी में प्रस्तुत किये गये थे उनसे भी रिचर्ड्स को सन्तोष न था। १९वीं सदी में 'नीतिवाद' के तीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं—(१) शेली और कार्लाइल का चारणीय नीतिवाद, (२) मैथ्यू आर्नेल्ड का नवमोक्षवादी आदर्शवाद तथा (३) तल्सतोय का धर्मचेतनाप्रधान नीतिवाद। कविता और कला के महत्त्व की स्थापना के इन नीतिमूलक प्रयासों के अतिरिक्त एक अन्य प्रयास भी १९वीं सदी में देखा जाता है। यह है गोतिये का 'कला, कला के लिए' का नारा जिसे उपर्युक्त नीतिवादी विचारों का प्रतिपक्ष (ऐंटी-थीसिस) कहा जा सकता है। इस मत के अनुसार कला की पूर्ण स्वायत्तता घोषित हुई, जीवन और नीति से इसका सम्बन्धविच्छेद स्वीकृत हुआ तथा कला के आन्तरिक मूल्य को ही उसके सही मूल्य के रूप में मान्यता दी गयी। इस मत को कान्त के सौन्दर्यविवेचन से किस प्रकार प्रेरणा मिली, इसका ऊपर उल्लेख हो चुका है। इंग्लैंड में इस मत के प्रमुख समर्थक थे ए० सी० ब्रैडले जिनकी 'ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑन पोइट्री' नामक पुस्तक में 'कविता, कविता के लिए' का सिद्धान्त प्रतिपादित हुआ है।

60. In reality both conceptions of beauty amount to one and the same thing, namely, the reception by us of a certain kind of pleasure; that is to say, we call 'beauty' that which pleases us without invoking in us desire.

—*Tolstoy* : WHAT IS ART ? P. 113.

61 "... it offers us too restricted a vocabulary."

—FOUNDATIONS OF AESTHETICS, P. 53.

रिचर्ड्स से पूर्व कविता के मूल्यसम्बन्धी जो उपर्युक्त विचार व्यक्त किये गये थे उनमें से कोई भी मनोविज्ञान और अर्थविज्ञान का पंडित तथा वैज्ञानिक दृष्टि-सपन्न आलोचक रिचर्ड्स को सन्तुष्ट करने मे असमर्थ रहा। रिचर्ड्स ने स्पष्ट अनुभव किया कि आधुनिक युग के प्रबुद्ध बुद्धिजीवी को अवैज्ञानिक और भावुकतापरक नीतिवाद से सन्तोष नही हो सकता। शेली और कार्लाइल द्वारा कवि की स्थिति का जो उदात्तीकरण हुआ था उससे किसी बुद्धिवादी का आश्वस्त होना सम्भव नही था। आर्नल्ड की आदर्शात्मक भविष्यवाणियो पर युग के सन्देहवादी की अनास्था स्वाभाविक थी। तल्सतोय की धार्मिक चेतना को मूल्यांकन की कसौटी बनाने का परिणाम स्पष्ट था : शेक्सपियर और गेटे प्रथम श्रेणी के अधिकारी नही रह गये, फ्रांसीसी साहित्यकारों मे केवल विक्तर ह्यूगो को प्रथम श्रेणी प्राप्त हुई तथा 'ऐडम बीड', 'अंकिल टॉम्स केबिन' जैसी रचनाएँ प्रथम श्रेणी की घोषित की गयी। तल्सतोय का यह मूल्यांकन सहृदयसमाज की चिरस्वीकृत धारणाओ के विपरीत था। रिचर्ड्स का विश्वास था कि आचारशास्त्र की स्थूल नैतिक मान्यताओ को कलालोचन का आधार बनाने का परिणाम होता है स्वीकृत नैतिकता के प्रतिकूल पडनेवाली कलाकृतियो का असहिष्णु एवं असन्तुलित मूल्यांकन। नैतिकता के स्थूल मानको के प्रति अन्धासक्ति प्रायः उन नवनिर्मित कलाकृतियों के सहानुभूतिपूर्ण आलोचन मे बाधक होती है जिनकी श्रेष्ठता परिष्कृत रुचिवाले भावको द्वारा अनुमोदित की जाती है। कला और नैतिकता के सम्बन्ध-विच्छेद को प्रचारित करनेवाले कलावादी सिद्धान्त की लोकप्रियता का एक कारण रिचर्ड्स के अनुसार यह भी है कि नैतिकता के स्थूल मानदण्ड नवीन कलाकृतियों के मूल्योद्घाटन के समय जवाब दे देते है। कलावाद से आलोचना में कृति को प्रमुखता मिलती है पर मानवीय प्रयत्नों मे कला के स्थान और मूल्य की समुचित व्याख्या उससे नही हो पाती। इसलिए वह भी स्वीकार्य नही हो सकता। इस तरह रिचर्ड्स के समक्ष प्रमुख समस्या यह थी कि कला के मूल्य की वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसी तार्किक व्याख्या की जाए जो बुद्धिवादियो को आश्वस्त कर सके। इसके लिए उन्हे मनोविज्ञान से आकर्षण प्राप्त हुआ। उनका मूल्यसिद्धान्त मनोवैज्ञानिक हुआ।

यहाँ यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि मनोविज्ञान-जैसे वर्णनात्मक (डिस्क्रिप्टिव) विज्ञान से आदर्शात्मक (नॉर्मेटिव) सिद्धान्त कैसे निकाले जा सकते है? विज्ञान अपने आपमे न तो नैतिक है और न अनैतिक, उसकी स्थिति तो नीतिबाह्य (अ-मोरल) है। उसका प्रयोजन तो सत्य का अनुसन्धान-भर है। उसके द्वारा अनुसंहित सत्य का उपयोग किस रूप मे किया जाए, यह उसका विषय नही है। रिचर्ड्स ने मूल्य की व्याख्या मनोविज्ञान के आधार पर इस तरह की कि उसकी वैज्ञानिकता सुरक्षित रहे। इसके लिए उन्होने अपने मूल्यसिद्धान्त को 'प्रक्रियामूलक' (फक्शनल) बताया। प्रक्रिया (फक्शन) के रूप मे मूल्य की व्याख्या

करके रिचर्ड्स ने इस समस्या का सहज ही समाधान कर दिया है कि वर्णनात्मक विज्ञान से आदर्शात्मक सिद्धान्त कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं। रिचर्ड्स का मूल्यसिद्धान्त वस्तुतः मानवमन की मूल्यनक्रिया की व्याख्या-भर है। "कोई भी वस्तु, जो हमारी किसी एषणा (एपेटेन्सी) को, बिना किसी दूसरी समान या अधिक महत्त्वपूर्ण एषणा को बाधित किये, सन्तुष्ट करती है, मूल्यवान् है।" रिचर्ड्स का यही मूल्यसूत्र है। यह स्वतः स्पष्ट है कि कोई भी व्यक्ति अपनी अधिकतम एषणाओं की अधिकतम सन्तुष्टि के लिए प्रयत्नशील रहेगा। अतः सर्वाधिक मूल्यवान् मनःस्थिति वह होगी जो अधिकतम एषणाओं की अधिकतम सन्तुष्टि दिलाए। एषणाओं का परस्परविरोध उनकी व्यवस्था और सामंजस्य को अनिवार्य बना देता है। अतः आवेगों (इम्पल्सेज) की सूक्ष्मता या सन्तुलित व्यवस्था आदर्श मनःस्थिति हो जाती है जिसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रयत्नशील रहता है। इस तरह रिचर्ड्स का मूल्यसिद्धान्त प्रक्रियामूलक सिद्ध होता है और इसी कारण उसे वैज्ञानिक कहा जा सकता है।

मूल्य की मनोवैज्ञानिक धारणा की स्थापना के पश्चात् यह प्रश्न रिचर्ड्स के अवधान का विषय बना कि कविता के रूप में निबद्ध कवि की मूल्यवान् मनःस्थिति पाठक में कैसे संचारित होती है। इसके समाधान के लिए सम्प्रेषण-प्रक्रिया (कम्युनिकेशन) की विवेचना आवश्यक प्रतीत हुई। कविता के अध्ययन में निहित मानसिक घटनाओं का विस्तृत विश्लेषण, जो 'प्रिंसिपुल्स' के सोलहवें अध्याय का प्रतिपाद्य है, इसी दृष्टि से सार्थक है। किन्तु इस विश्लेषण को प्रस्तुत करने से पूर्व रिचर्ड्स को मनुष्यों के मानसिक व्यापारों के सम्बन्ध में अपनी धारणाओं को स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत हुआ। 'प्रिंसिपुल्स' के ग्यारहवें से पन्द्रहवें तक के अध्याय इसी कारण मनोवैज्ञानिक विवेचन से सम्बद्ध हैं।

मनोविज्ञान में रिचर्ड्स की दृढ़ आस्था है। उनका विश्वास है कि सापेक्षतावाद और जैविकी के युगों के बाद आनेवाला युग मनोविज्ञानयुग होगा जिसमें मनुष्य अपने मन की प्रकृति को पहचान पायगा और फलतः उसका व्यवहार एवं दृष्टिकोण बहुत-कुछ बदल जाएगा।[62] रिचर्ड्स के अनुसार, यद्यपि ऐसा युग दूर है पर मनोविज्ञान के नये अनुसन्धानों से कुछ विषयों पर नवीन प्रकाश पड़ा है। मन की सामान्य धारणा की असंगतियाँ मिट गयी हैं, हमारे विभिन्न व्यवहारों में सम्बन्धसूत्र देखने की असमर्थता खत्म हो गयी है और मन के विषय में कुछ रूपरेखा स्थिर होने लगी है। रिचर्ड्स ने मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों के आलोक में मानसिक घटनाओं की रूपरेखा निर्धारित की है और उसी के आधार पर अपने आलोचनासिद्धान्तों का भवन खड़ा किया है। उनके आलोचनासिद्धान्तों के सम्यक् बोध के लिए उन सिद्धान्तों के आधारभूत मनोवैज्ञानिक विचारों का परिचय

62. PRINCIPLES, P. 81.

एवं विश्लेषण आवश्यक है। किन्तु इसके पूर्व मनोविज्ञान के विकास, सम्प्रदाय एवं सम्प्रदायों की प्रमुख मान्यताओं का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है।

मनोविज्ञान ज्ञान की अपेक्षाकृत नवीन शाखा है। उन्नीसवीं सदी के पूर्व यह दर्शन-शास्त्र का अंग था। धीरे-धीरे इसका स्वरूप अनुभवमूलक (इम्पिरिकल) होता गया और क्रमशः यह प्राकृतिक विज्ञानों की ओर झुकता गया। उन्नीसवीं सदी में विज्ञान की जिन चार शाखाओं की अद्भुत प्रगति से इसकी स्वतंत्र प्रतिष्ठा में सहायता मिली, उनके नाम हैं—रसायनशास्त्र, शरीरक्रियाविज्ञान (फीजियॉलोजी), जैविकी (बायॉलोजी) तथा मनश्चिकित्सा (साइकिएट्री)। मनोविज्ञान की आरम्भिक परिभाषा चेतना (कन्शसनेस) के विज्ञान के रूप में की गयी। रसायन-शास्त्र ने तत्त्वों के विश्लेषण में जो उपलब्धियाँ प्रस्तुत की उनसे मनोविज्ञानियों को यह प्रेरणा मिली कि वे भी रासायनिक की तरह चेतना के संघटनात्मक तत्त्वों का विश्लेषण करें। इस तरह विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान का जन्म हुआ। मनो-विज्ञान का यह सम्प्रदाय, जिसकी प्रमुख अभिरुचि चेतन अनुभवों के तत्त्वों के विश्लेषण में है, संरचनात्मक मनोविज्ञान (स्ट्रक्चरल साइकॉलोजी) कहलाता है। इसी तरह शरीरक्रियाविज्ञान द्वारा इन्द्रियों, स्नायुओं तथा मस्तिष्क के सम्बन्ध में की गयी खोज से प्राप्त तथ्यों को भी आरम्भिक मनोविज्ञान ने अपनाया। असल में शरीरक्रियाविज्ञानसम्बन्धी प्रयोगशाला के उदर से ही मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला का जन्म हुआ। १८७९ ई० में वुंट द्वारा लाइपजिग में प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोग-शाला की स्थापना मनोविज्ञान के विकास में अतिशय महत्त्वपूर्ण घटना है चूँकि इसीके बाद जर्मनी और अमेरिका में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक नवीन मनोविज्ञान का स्वरूप प्रधानतया प्रयोगात्मक (एक्सपेरिमेंटल) ही रहा।

उन्नीसवीं सदी में ही डार्विन की 'ऑरिजिन ऑफ द स्पीसीज' ने जीवविज्ञान के क्षेत्र में क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किये। डार्विन और गाल्टन के सिद्धान्तों को आधार बनाकर मनोविज्ञानियों ने अनेक प्रकार के परीक्षणों (टेस्ट्स) का आविष्कार किया। आनुवंशिकता (हेरेडिटी) तथा पर्यावरण (एनवाइरनमेंट) का जाति (रेस) तथा व्यक्ति के मानसिक विकास पर क्या असर पड़ता है, यह मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान का विषय बना। बालमनोविज्ञान, पशुमनोविज्ञान आदि को जीवविज्ञान के महत्त्वपूर्ण अनुसन्धानों के प्रभाववश ही मनोविज्ञान में स्थान मिला।

मनश्चिकित्सा के क्षेत्र में हुए अनुसन्धानों ने भी मनोविज्ञान के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उन्नीसवीं सदी की मनश्चिकित्सा दो सम्प्रदायों में विभक्त थी। एक कायवादी सम्प्रदाय (सोमेटिक स्कूल) था जो मानसरोगों का मूल कारण मस्तिष्क (ब्रेन) की गड़बड़ी मानकर शारीरिक उपचार पर बल देता था। दूसरा मनोवादी सम्प्रदाय (साइकिक स्कूल) था जो मानसिक रोगों का मूल

मस्तिष्क की गड़बड़ी में न देखकर मानसिक कारणों में ढूँढ़ना था और इसीलिए मानसिक उपचारों (जैसे हिप्नॉटिज्म, फ्री एसोसियेशन आदि) पर बल देता था। मनश्चिकित्सा से मनोविज्ञान के विकास में कितनी सहायता मिली, यह इस एक तथ्य से स्पष्ट है कि मनोविश्लेषण का जन्म इसी के उदर से हुआ, जिसने मनोविज्ञान के एक विशिष्ट सम्प्रदाय के रूप में सबसे ज्यादा प्रतिष्ठा पायी है।

उन्नीसवीं सदी का अन्तिम दशक और बीसवीं सदी का आरम्भिक भाग मनोविज्ञान के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल है। इस काल की मनोवैज्ञानिक सक्रियता एवं हलचल किसी का भी ध्यान आकृष्ट कर सकती है। इस बीच अनेक प्रयोगशालाओं की स्थापना हुई, मनोवैज्ञानिक पत्रिकाएँ शुरू हुईं, अमरीकी मनोवैज्ञानिक सोसाइटी की स्थापना हुई, अन्तरराष्ट्रीय मनोवैज्ञानिक कांग्रेस का आयोजन किया गया तथा अमरीकी विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान का स्वतन्त्र विभाग खुला; मनोविज्ञान की अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुईं तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन की नवीन रीतियों का आविष्कार हुआ। मनोविज्ञान की अनेक समस्याओं के चिन्तन और तत्सम्बन्धी प्रयोगों के परिणामस्वरूप अनेक नवीन सम्प्रदायों का जन्म इसी काल में हुआ। १८६० ई० से १६१२ ई० के बीच जिन मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायों की स्थापना हुई प्राय वे ही अबतक विकसित होते रहे हैं। इधर इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया गया कि मनोविज्ञान के विविध सम्प्रदायों के आपसी विरोध को मिटाकर मनोविज्ञान का एक सर्वमान्य रूप प्रस्तुत किया जाय। मध्यमार्गी मनोविज्ञान (मिड्ल ऑफ़ द रोड साइकॉलोजी) इसी प्रेरणा की उपज है। मनोविज्ञान के नये-पुराने प्रमुख सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय नीचे प्रस्तुत है :

(१) प्रक्रियावादी मनोविज्ञान (फंक्शनल साइकॉलोजी)—यह प्राचीन सम्प्रदाय है और इसका क्षेत्र व्यापक है। १८६८ ई० में अमरीका में इसका नामकरण किया गया। मानसिक व्यापार क्यों और कैसे घटित होते हैं और वे वस्तुतः हैं क्या—यही इस सम्प्रदाय की खोज का विषय है। मानसिक व्यापारों की प्रक्रियामूलक व्याख्या इसका उद्देश्य है। वुडवर्थ का मत है कि एक दृष्टि से मनोविज्ञान का 'प्रत्येक' सम्प्रदाय प्रक्रियावादी है।[63]

(२) संरचनात्मक मनोविज्ञान (स्ट्रक्चरल साइकॉलोजी)—इसका उत्पत्ति-स्थान जर्मनी है और उत्पत्तिकाल १८७६ ई० के आसपास है। अमरीका में १८६८ ई० में यह आख्यात हुआ और वहीं विख्यात भी हुआ। इस सम्प्रदाय के

63. So broadly defined, ...functional psychology scarcely deserves the name of a school because it would include so many psychologists who have not professed themselves. ....We can at least say that they have all made contributions to the solution of functional problems.

—R. S. Woodworth: CONTEMPORARY SCHOOLS OF PSYCHOLOGY, P. 255.

(बिहेवियर) कहता है। मन की स्वतन्त्र सत्ता का निषेध करते हुए मनुष्य के समस्त व्यवहारों की 'उद्दीपन-अनुक्रिया' (स्टिमुलस-रेस्पॉन्स)-सूत्र के रूप में व्याख्या करना इस सम्प्रदाय की विशेषता है। यह मनोविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान के स्तर पर प्रतिष्ठित करने के लिए प्रायोगिक विधि को ही एकमात्र अध्ययनविधि के रूप में स्वीकार करता है।

(८) समग्र-प (गेस्टाल्ट) मनोविज्ञान— १६१२ ई० में जर्मनी में इसका उद्भव हुआ। प्रत्यक्ष (पर्सेप्शन) के अध्ययन में इस सम्प्रदाय की प्रमुख अभिरुचि है और उसी के नियमों के सम्बन्ध में इसने अनेक अनुसन्धान किये हैं। हमारा प्रत्यक्ष वस्तु के सम्पूर्ण रूप का होता है, यह इसकी प्रमुख मान्यताओं में से एक है और इसके लिए इसने 'गेस्टाल्ट' या 'पूर्णाकृति'-जैसी चीज की कल्पना की है।

रिचर्ड्स का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण उपर्युक्त सम्प्रदायों में से किसी एक का कठोरतापूर्वक अनुसरण नहीं करता। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि उनके मनोवैज्ञानिक विचार अनेक अंशों में असाम्प्रदायिक (हेटरोडॉक्स) हैं।[64] तथापि वे मुख्य रूप से व्यवहारवादी (बिहेवियरिस्ट) मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण (साइको-एनेलिसिस) तथा समग्र-प (गेस्टाल्ट) मनोविज्ञान के विचारों के समर्थक हैं। यह उनके उस वाक्य से स्पष्ट है जिसमें उन्होंने कहा है कि मानसिक क्रियाओं का जो विवरण भविष्य में प्रस्तुत होगा वह अधिकांशतः व्यवहारवादी एवं मनोविश्लेषणवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसन्धानों के आधार पर होगा यद्यपि गेस्टाल्ट सम्प्रदाय के प्रायोगिक एवं सैद्धान्तिक अनुसन्धानों के द्वारा उक्त मनोविज्ञानों की मान्यताओं और निष्कर्षों के सुधार की आवश्यकता होगी।[65]

रिचर्ड्स ने मानवमनोविज्ञान का जो खाका प्रस्तुत किया है उसमें किसी नवीन मनोवैज्ञानिक मतवाद की स्थापना का आग्रह नहीं है। उन्होंने मानसिक प्रक्रिया की जो सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत की है उसमें ज्ञानसम्बन्धी अपने नये विचार पर विशेष बल दिया है जो ज्ञानविषयक स्वीकृत मतों के प्रतिकूल है। वे ज्ञान की 'विचारकारण' (कॉजेशन ऑफ थॉट) के रूप में व्याख्या करते हैं। आगे उनके ज्ञानसम्बन्धी इस सिद्धान्त पर प्रकाश डाला जाएगा। अपने मनोवैज्ञानिक प्रतिपादन के विषय में रिचर्ड्स का कथन है कि यद्यपि उन्होंने काव्यानुभूति का जो विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया है और बिम्बावली (इमैजरी), संवेग (इमोशन), आनन्द (प्लेजर), आरभमाण क्रिया (इनसिपिएंट ऐक्शन) का जैसा लेखा उपस्थित किया है वैसा किसी दूसरे ने उनके पूर्व प्रस्तुत नहीं किया है तथापि उनके एतद्विषयक

64 The view put forward here is in many respects heterodox.

65 *Ibid*, P 83 —PRINCIPLES, P. 82.

विचार अपेक्षाकृत अधिक साम्प्रदायिक (ऑर्थोडॉक्स) माने जा सकते है।[66] अब हम रिचर्ड्स के मनोविज्ञानविषयक विचारो का परिचय किञ्चित् विस्तार से देते है।

(ख) मन का स्वरूप—मानवमन को ज्ञान, इच्छा एवं भावना नामक तीन शक्तियो से युक्त आध्यात्मिक सत्ता माननेवाले विचार को रिचर्ड्स भ्रान्तिमूलक मानते हैं। वे मन को स्नायुतन्त्र (नर्वस सिस्टम) या उसको क्रियाओ का एक अगमात्र स्वीकार करते हैं।[67] उनका कथन है कि हम शरीर, विशेषत. स्नायुतत्र या उसके अंगो को सम्बद्ध करनेवाले केन्द्रीय अग, के अतिरिक्त और कुछ नही है तथा मन भी आवेगो (इम्पल्सेज) के जाल के अतिरिक्त और कुछ नही है।[68] मन और शरीर के द्वन्द्व की समस्या रिचर्ड्स की दृष्टि मे अवास्तविक है।

मनोविज्ञान ने यद्यपि आत्मा की सत्ता का निषेध कर उसके स्थान पर मन को प्रतिष्ठित किया पर आरम्भिक मनोविज्ञान द्वारा मन के सम्बन्ध मे जो धारणा प्रस्तुत की गयी वह आध्यात्मिकता से बिलकुल रहित नही थी। इससे शरीर और मन के द्वन्द्व की समस्या उठ खडी हुई जिसके समाधान के रूप मे शरीर और मन की अन्योन्यक्रिया (इंटरैक्शन) तथा समानान्तरवाद (पैरेलेलिज्म) के परस्परविरुद्ध सिद्धान्त सामने आये। 'अन्योन्यक्रियावाद' (इटरैक्शनिज्म) मन और शरीर के सम्बन्ध की व्याख्या करनेवाला वह सिद्धान्त है जो दोनो के बीच पारस्परिक कारण-सम्बन्ध स्वीकार करता है अर्थात् शारीरिक क्रियाओ का कारण मन मे और मानसिक घटनाओ का कारण शरीर मे निहित मानता है। मनःशारीरिक समस्या का यह समाधान दार्शनिक 'द्वैतवाद' कहा जा सकता है जिसे मनोविज्ञानियो ने अपने अनुसन्धानों के लिए सरल उपकल्पना (हाइपोथेसिस) के रूप मे ग्रहण किया। मनःशारीरिक समस्या के समाधान का दूसरा रूप 'समानान्तरवाद' है जिसकी उद्भावना दार्शनिक स्पिनोजा ने की और जिसकी मनःशारीरिक व्याख्या फेकनर ने प्रस्तुत की। इस सिद्धान्त के अनुसार, चेतन प्रक्रियाओ या अनुभवो मे होनेवाली प्रत्येक भिन्नता या परिवर्तन (वैरियेशन) स्नायविक प्रक्रियाओ मे सहवर्ती (कॉन्कामिटैण्ट) परिवर्त्तन ला देता है। यह सिद्धान्त 'अन्योन्यक्रियावाद' की तरह मन और शरीर के बीच कारणसम्बन्ध स्वीकार नहीं करता।

मन और शरीर के द्वन्द्व की समस्या 'मनश्चिकित्सा' के अनुसन्धानो के समक्ष उग्र रूप मे रही है। पीछे कहा जा चुका है कि उन्नीसवी सदी को 'मनश्चिकित्सा' कायवादी (सोमैटिक) तथा मनोवादी (साइकिक) नामक दो सम्प्रदायों मे विभक्त थी। प्रथम मानसिक रोगों का मूल मस्तिष्क की गड़बड़ी

66. *Ibid, P. 82.*

67. That the mind is the nervous system, or rather a part of its activity, has long been evident.—*Ibid, P. 83.*

68. ...we are our bodies, more especially our nervous systems, more especially still the higher or more central co-ordinating parts of it, and that the mind is a system of impulses. —*Ibid, P. 83*

में देखते हुए शारीरिक आधार पर चिकित्सा की पद्धति चला रहा था और द्वितीय मानस रोगों का मूल मानसिक कारणों में ढूंढ़ता हुआ मानसिक उपचारों पर बल देता था। उन्नीसवीं सदी के अन्त में प्रसिद्ध अमरीकी मनश्चिकित्सक तथा जॉन्स हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के प्रोफेसर अडोल्फ मेयर ने 'मनश्चिकित्सा' में स्वीकृत मन और शरीर के पार्थक्य की मान्यता का जोरदार विरोध किया। उनके अनुसार, मन और शरीर का विच्छिन्न समानान्तर विकास नहीं होता अपितु सम्पूर्ण इकाई के रूप में जीव का जो विकास होता है उसमें शरीर और मन एक साथ विकसित होते हैं।[69] १९०८ ई० में उन्होंने लिखा कि यह दुर्भाग्य की बात है कि विज्ञान अब भी 'मानसिक' और 'भौतिक'-जैसे असम्भव वैषम्य को स्वीकार करता है। उनके अनुसार, मन कोई विशिष्ट तत्त्व न होकर पर्याप्त संघटित, क्रियारत जीव है।[70] मेयर का यह मनोजीवविज्ञान (साइकोबायॉलोजी) मानसरोगचिकित्सा का आधार बना है और अनेक मनःकायिक (साइकोसोमेटिक) दवाओं के निर्माण के पीछे इसी मनोजैव दृष्टिकोण की प्रेरणा है। मेयर के 'जीववादी' (ऑरगैनिस्मिक) मनोविज्ञान ने इस तरह मन और शरीर के द्वन्द्व की समस्या को मिटा दिया।

दूसरी ओर व्यवहारवादी मनोविज्ञानियों के विचारों ने भी शरीर और मन के द्वन्द्व को अवास्तविक ठहराया। ये मनोविज्ञान मन की जगह मस्तिष्क (ब्रेन) को महत्त्व देनेवाले विचार से भी सन्तुष्ट नहीं थे। कारण, मस्तिष्क की कार्यप्रणाली का पूर्णचित्र सामने नहीं रहने के कारण वह भी बहुत-कुछ अज्ञेय और रहस्यपूर्ण था। इसीलिए इन मनोविज्ञानियों ने मन की अलग सत्ता का ही निषेध नहीं किया अपितु मस्तिष्क की जगह परिणाहीय अंगों (पेरिफेरल ऑरगन्स), ऐन्द्रिय अंगों, पेशियों तथा ग्रन्थियों (ग्लैण्ड्स) पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस प्रकार, दृष्टिकोण की विभिन्नता रहने पर भी (जीववादी सम्पूर्ण व्यक्तित्व के अध्ययन पर बल देना चाहते थे, व्यवहारवादी मनोविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान के स्तर तक खींच लाना चाहते थे) उक्त दोनों सम्प्रदायों द्वारा मन और शरीर के द्वन्द्व की समस्या को निरर्थक और अवास्तविक घोषित किया गया। रिचर्ड्स ने मन की आध्यात्मिक सत्ता का निषेध करते हुए उसका स्नायुतन्त्र की क्रियाशीलता से जो तादात्म्य किया है उसके पीछे उपर्युक्त मनोविज्ञानियों द्वारा प्रस्तुत किये गये

69. In this unit the development of the mind goes hand in hand with the anatomical and physiological development, not merely as a parallelism, but as a oneness with several aspects.

—*Adolf Meyer* : *Quoted in* CONTEMPORARY SCHOOLS OF PSYCHOLOGY, P. 232.

70. It is unfortunate that science still adheres to an effete and impossible contrast between mental and physical.... Mind is a sufficiently organised living being in action, and not a peculiar form of mind-stuff

—*Adolf Meyer*: Quoted *Ibid*, P 232

विचारों की स्पष्ट प्रेरणा हैं।

परम्परागत मनोविज्ञान मे मानसिक क्रियाओं की व्याख्या के क्रम मे मन की विभिन्न शक्तियों (फैकल्टीज) की कल्पना की गयी थी। यह धारणा बहुत दिनो तक प्रचलित रही कि मनुष्य की सभी मानसिक क्रियाएँ मन की ज्ञान (नोइंग), इच्छा (विलिंग) तथा भावना (फीलिंग) जैसी तीन शक्तियो द्वारा सम्पादित होती हैं। मन की इन तीन शक्तियों की कल्पना वस्तुत. एक गलतफहमी थी जो ग्रीक दार्शनिकों की कृतियों के लातिन अनुवाद के कारण प्रचारित हुई। अरस्तू ने मानसिक व्यापारों के वर्गीकरण के क्रम मे क्रियामूलक सज्ञाओं (जैसे 'रिमेम्बरिंग' आदि के ग्रीक पर्याय) का प्रयोग किया था। जब उसकी रचनाओं का लातिन मे अनुवाद किया गया तो ग्रीक मुहावरे को ठीक से ग्रहण करने के लिए 'फैकल्टी' शब्द को जोड़ना आवश्यक प्रतीत हुआ। इस तरह 'फैकल्टी ऑफ़ रिमेम्बरिंग' जैसे शब्द चल पड़े। क्रमश: यह धारणा बँधी कि मन की कुछ विशिष्ट शक्तियाँ होती हैं जिनके द्वारा वह सारे कार्य सम्पादित करता हैं। मन की इन शक्तियों को ज्ञान, इच्छा तथा भावना जैसी तीन शक्तियों मे समाहित करने की चेष्टा की गयी। यह 'फैकल्टी-मनोविज्ञान' रिचर्ड्स को स्वीकार नही हैं। उन्होंने अनेक मानसिक क्रियाओं के उदाहरण दिये हैं जिनमे ज्ञान, इच्छा तथा भावना का सम्मिलित रूप देखने को मिलता हैं। अत मन के इस विभाजन को उन्होंने अस्वीकृत किया।

(आ) मानसिक घटनाओं का स्वरूप— मानसिक घटनाओं की जसी व्याख्या रिचर्ड्स ने की हैं वह व्यवहारवादी मनोविज्ञान के अनुरूप हैं। कहा जा चुका है कि यह मनोविज्ञान 'चेतना' का निषेध करके 'व्यवहार' को अपने अध्ययन का विषय बनाता हैं और सारे 'व्यवहारों' की व्याख्या यह उद्दीपन-अनुक्रिया-सूत्र के द्वारा करता हैं। इस सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक वाट्सन ने 'व्यवहार' को जटिल मानते हुए उसे उद्दीपन और अनुक्रिया की इकाइयों मे, जिन्हे वे प्रतिवर्त (रिफ्लेक्स) कहते हैं, विश्लेषणयोग्य माना। उन्होंने उद्दीपन और अनुक्रिया का व्यापक अर्थ ग्रहण किया हैं। उद्दीपन से उनका अभिप्राय केवल इन्द्रियों को प्रभावित करनेवाली वस्तुएँ ही नही अपितु 'सम्पूर्ण परिस्थिति' हैं। इसी प्रकार, 'अनुक्रिया' का अर्थ वे पेशीगत क्रियाएँ ही नही समझते अपितु पर्यावरण मे लाये जानेवाले निश्चित परिणाम समझते हैं। रिचर्ड्सकृत मानसिक घटनाओं की व्याख्या व्यवहारवादी मनोविज्ञानसम्मत हैं, यह नीचे की पंक्तियों से स्पष्ट हैं।

रिचर्ड्स के अनुसार, स्नायुतंत्र वह साधन हैं जिसके द्वारा बाह्य जगत् से प्राप्त उद्दीपन उपयुक्त व्यवहार के रूप मे प्रतिफलित होते हैं। वे मानते हैं कि उद्दीपन और अनुक्रिया के अनुकूलन (एडैप्टेशन) की प्रक्रियाओं मे ही सारी मानसिक घटनाएँ घटित होती है। उनके अनुसार, प्रत्येक मानसिक घटना उद्दीपन से उत्पन्न होती हैं, इसकी कुछ विशेषताएँ होती हैं और कार्य अथवा कार्य के लिए

समायोजन (एडजस्टमेंट) के रूप में इसके कुछ परिणाम होते हैं।[71]

किन्तु रिचर्ड्स व्यवहारवादी मनोविज्ञान के पूर्णतः अनुयायी नहीं हैं। व्यवहारवादी अन्तरीक्षण (इण्ट्रास्पेक्शन) पर भरोसा नहीं करता और 'चेतना' को मान्यता नहीं देता। किन्तु रिचर्ड्स का कथन है कि मानसिक घटनाओं की विशेषता को कभी-कभी अन्तरीक्षण से जाना जा सकता है। उनके अनुसार, जब किसी मानसिक घटना का अनुभव होता है तो वह 'चेतना' कहलाती है और जहाँ उसका अनुभव नहीं होता वहाँ वह अचेतन रहती है।[72] इस तरह रिचर्ड्स फ्रायड के समान चेतन और अचेतन मन की स्थिति को स्वीकार करते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि रिचर्ड्स मन को आवेगजाल (सिस्टम ऑफ़ इम्पल्सेज) के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते। आवेग की परिभाषा वे इस रूप में देते हैं उद्दीपन में आरब्ध होकर कार्य में परिणत होनेवाली प्रक्रिया, जिसमें कोई मानसिक घटना घट सकती है, आवेग कहलाती है।[73] रिचर्ड्स के अनुसार, मनुष्य के सरलतम प्रतिवर्त भी अन्योन्याश्रित आवेगों के पुंज होते हैं। किसी भी मानवीय व्यवहार में सम्बद्ध आवेगों की बहुत अधिक संख्या रहती है। मनोविज्ञान का सम्बन्ध वे जटिल आवेगों से ही मानते हैं।

रिचर्ड्स ने आवेगों को ही अपने मनोवैज्ञानिक मूल्य-सिद्धान्त का आधार बनाया है। आवेगों के क्रमबन्धन (सिस्टेमेटाइजेशन) तथा संघटन (आर्गेनाइजेशन) में ही वे मूल्य का स्वरूप देखते हैं। मनोविज्ञान में आवेग का अर्थ सामान्यतः 'बिना सोचे-विचारे कार्य की प्रवृत्ति' समझा जाता है। इस तरह आवेग उस प्राकृतिक या सहज प्रवृत्ति का नाम है जो किसी परिस्थिति के प्रस्तुत होने पर तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है। उद्दीपन इसका आरंभिक बिन्दु है और कार्य इसकी परिणति। उद्दीपन से लेकर कार्य तक की संपूर्ण प्रक्रिया, जिसमें कोई मानसिक घटना घट सकती है, रिचर्ड्स के अनुसार आवेग है। आवेगों की संख्या अनगिनत है और उनमें से कुछ के ही अभिधान भाषा में मिलते हैं। रिचर्ड्स ने इस तथ्य को स्वीकार किया है।[74] इसीलिए वे विशिष्ट आवेगों के उदाहरण देने या नाम गिनाने में असमर्थ रहे हैं और उनके सामान्य, सूक्ष्म स्वरूप का ही संकेत किया है।

आवेग की परिभाषा के क्रम में उद्दीपन को प्रस्थानबिन्दु माना गया है। रिचर्ड्स अपनी इस मान्यता में किंचित् संशोधन करते हुए इसे और स्पष्ट करते

71. PRINCIPLES, P 85.
72. *Ibid, P. 85-86.*
73. *Ibid, P. 86*
74. It is difficult to give instances, since there are so few names for impulses. *Ibid, P. 190.*

है। उनका कथन है कि किसी क्षण अनेक संभावित उद्दीपनों में से हम किसे ग्रहण करेंगे और कौन-से आवेग उत्पन्न होंगे, यह इस बात पर निर्भर है कि हमारी कौन-सी अभिरुचियाँ (इण्टरेस्ट्स) सक्रिय हैं। हमारे शरीर की संतुष्ट या बेचैन स्थिति एवं उसकी आवश्यकताओं पर यह निर्भर करता है। पाकशाला की गंध का प्रतिचार बुभुक्षित और तृप्त स्थितियों में समान हो नहीं होता। उद्दीपन शारीरिक आवश्यकता के लिए उपयोगी होने पर ही गृहीत होते है और उनकी अनुक्रिया अशतः हो उनकी (उद्दीपन की) प्रकृति पर निर्भर करती है, अधिकांशतः वह शारीरिक आवश्यकता पर निर्भर करती है।

रिचर्ड्स के अनुसार, इस प्रकार, मनुष्य के अनुभव के दो स्रोत हैं और विभिन्न स्थितियों में इनका विभिन्न महत्त्व है। जहाँ तक मनुष्य कुछ निश्चित वस्तुओं के विषय मे सोचता है या उन्हे अभ्युद्दिष्ट करता है, वहाँ तक उसका व्यवहार वर्तमान या अतीत उद्दीपनो की प्रकृति द्वारा निर्धारित होकर तदुपयुक्त होगा। किन्तु जहाँ वह अपनी आवश्यकताओ और इच्छाओ की तुष्टि करता है वहाँ उद्दीपन और अनुक्रिया का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध नही रहता है। रिचर्ड्स का कथन है कि उद्दीपन से हमारे व्यवहारों की यह आंशिक स्वतंत्रता विभिन्न मनःस्थितियों में दृष्टिकोणों, मतों और विश्वासों की विविधता का कारण है। इस प्रकार की विभिन्नता यह बताती है कि विश्वास और मत शुद्ध बौद्धिक सृष्टि नही है; वे वर्तमान या अतीत उद्दीपन से निर्धारित अनुक्रिया के चिन्तन के कारण उत्पन्न नही होते अपितु किसी क्षणिक या स्थायी इच्छा की तुष्टि के लिए अपनायी गयी अभिवृत्ति (एट्टीट्युड) होते है। विचार (थॉट) अपने सही अर्थ में प्रमाण के आधार पर बदलते है पर अभिवृत्ति या भावना (फीलिंग) सभी प्रकार के कारणों से बदल जाती है।

परपरागत मनोविज्ञान मानसिक क्रिया को विचार या संज्ञान (कॉग्नीशन), भावना तथा इच्छा (विल) या क्रियावृत्ति (कोनेशन) जैसे तीन वर्गों में रखता रहा है। किन्तु रिचर्ड्स का कथन है कि यह वर्गीकरण कबूतरखाने की तरह की आत्यन्तिक रूप से विच्छिन्न प्रक्रिया नहीं समझा जाना चाहिए; कारण, प्रत्येक मानसिक घटना में मात्राभेद से उपर्युक्त तीनों विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं। रिचर्ड्स संज्ञान, भावना तथा क्रियावृत्ति के द्वैत के स्थान पर कारण (कॉज), वैशिष्ट्य (कैरेक्टर) और परिणाम या प्रभाव के द्वैत को किसी मानसिक घटना के मूल तत्त्वों के रूप में स्वीकार करते है। वे संज्ञान, भावना तथा क्रियावृत्ति के साथ किसी मानसिक घटना के कारण, वैशिष्ट्य और प्रभाव का थोड़ी दूर तक साम्य दिखाते हैं। जैसे, किसी वस्तु के संज्ञान का अर्थ उससे प्रभावित होना (कॉज) है तथा किसी चीज की इच्छा करना उसके प्रति क्रियाशील होना है। इन्ही दोनों के बीच संपूर्ण क्रिया के चेतन अनुषगों की स्थिति है। इन्ही चेतन विशेषताओं में संवेदना (सेन्सेशन) तथा भावना (फीलिंग) आती हैं, पर दोनो द्वैतों मे आत्यन्तिक समता नही है। उदाहरणार्थ, संज्ञान के अन्दर गृहीत बहुत-सी चीजे क्रियावृत्ति के अन्दर आ

जाती है, जैसे प्रत्याशा प्रायः संज्ञान के अन्दर समझी जाती है पर उसमे कुछ विशिष्ट उद्दीपनों के लिए प्रस्तुत होने की क्रिया क्रियावृत्ति है। इसी तरह भूख, जिसे प्रायः इच्छा के अन्दर रखते हैं, पोषण के अभाव की जानकारी देती हुई संज्ञान के अन्दर आ जाती है। इन्हीं बातों को देखकर रिचर्ड्स संज्ञान, भावना तथा क्रियावृत्ति के वर्गीकरण का परित्याग करके कारण, वैशिष्ट्य और परिणाम को मानसिक घटनाओं के मूल तत्त्व के रूप मे स्वीकार करते हैं।

रिचर्ड्स किसी मानसिक घटना का कारण केवल उद्दीपन को ही नहीं मानते, रक्त की हालत एवं सिर की स्थिति को भी उसका कारण मानते हैं। उनके अनुसार किसी मानसिक घटना के कारण का उतना ही अंश संज्ञान समझा जाना चाहिए जितना संवेदी आवेगों (सेन्सरी इम्पल्सेज) से कार्यान्वित होता है। इसी तरह किसी मानसिक घटना के सारे प्रभावों या परिणामों को इच्छा न मानकर तंत्रिका-तंत्र द्वारा प्रेरित उन्हीं मचलनों (मूवमेंट्स) को इच्छा के अन्तर्गत मानना चाहिए जो प्रेरक आवेगों (मोटर इम्पल्सेज) के माध्यम से प्रतिफलित होते हैं।

(इ) ज्ञान-सिद्धान्त— काव्यालोचन में ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त की आवश्यकता रिचर्ड्स के अनुसार एक ही स्थल पर है जहाँ हम यह निर्णय करना चाहते हैं कि कोई कविता सच्ची है या नहीं या वास्तविकता उद्घाटित करती है या नहीं और यदि करती है तो किस अर्थ मे। ऐसे निर्णय का आधार ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त है, ऐसा समझकर वे अपना ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं। उनके अनुसार किसी वस्तु की जानकारी (अवेयरनेस) का अर्थ उससे प्रभावित होना है। उदाहरणार्थ, किसी पृष्ठ पर अंकित अक्षरों की जानकारी मस्तिष्क के किसी अंग (जैसे रेटिना) पर पड़े प्रभावों या छापों (इम्प्रेशन्स) तथा मस्तिष्क के अन्य अंगों में घटित अन्य सम्बद्ध पेचीदी क्रियाओं के द्वारा प्राप्त होती है। इस प्रकार घटित मानसिक घटना अक्षरों की जानकारी है, यह कथन इस कथन के बराबर है कि यह घटना अक्षरों के कारण घटित हुई है। जहाँ व्यतीत या भविष्य की वस्तुओं को हम अभ्युद्दिष्ट करते हैं वहाँ प्रभाव या छाप सामान्यत: संकेत (साइन्स) होते हैं तथा उनका प्रभाव केवल उन्हीं तक सीमित नहीं होता अपितु व्यतीत में उनके साथ संयुक्त अन्य प्रभावों पर निर्भर रहता है। रिचर्ड्स के अनुसार, संकेत (साइन) वह है जो कभी मन में क्रियान्वित किसी संपूर्ण संदर्भ (कॉण्टेक्स्ट) का अंग रहा है। जब यह पुनः प्रकट होता है तो ऐसा लगता है जैसे संदर्भ के शेष अंशों के साथ यह उपस्थित हो। इस प्रक्रिया का अध्ययन शब्दों के अध्ययन के सिलसिले में रिचर्ड्स उपयोगी समझते हैं। इसपर उन्होंने अपनी 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' नामक पुस्तक में विचार किया है। ज्ञान का जो सामान्य सिद्धान्त वे मानते हैं वह है : किसी वस्तु को जानने का अर्थ उससे प्रभावित होना है, प्रत्यक्षतः तब, जब हम उसका ऐन्द्रिय बोध प्राप्त करते हैं और अप्रत्यक्षत: तब, जब व्यतीत प्रभाव (इम्प्रेशन्स) कार्यरत होते हैं।

(ई) आनन्द— आलोचना में कलाओं के मूल्यनिर्णय के प्रसंग में प्रायः 'आनन्द' को महत्त्व मिलता रहा है। आनन्दप्राप्ति प्रायः कला का उद्देश्य मानी जाती रही है। कहा जा चुका है कि रिचर्ड्स कला की इस सुखवादी (हेडोनिस्टिक) धारणा को स्वीकार नहीं करते। वे उस सुखवादी मनोविज्ञान से सहमत नहीं हैं जो मनुष्य की प्रत्येक क्रिया का लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति मानता है। कविता का लक्ष्य आनन्द-प्राप्ति नहीं है, इस बात को परिहासपूर्ण ढग से रखते हुए वे कहते हैं कि कविता वह पिटारी नहीं है जिसमें मिठाइयाँ भरी हुई हों।[75] अपनी मान्यता को पुष्ट करने के लिए रिचर्ड्स ने 'आनन्द' के स्वरूप पर प्रकाश डाला है जो नीचे प्रस्तुत है।

आनन्द या निरानन्द को रिचर्ड्स आवेगों की चेतन विशेषताएँ मानते हैं। संवेदना, बिम्बसृष्टि (इमेजरी), भावना, संवेग (इमोशन) तथा पीड़ा (पेन) भी उनके अनुसार आवेगों की चेतन विशेषताएँ हैं। आनन्द और पीड़ा के सहचर व्यवहार को रिचर्ड्स इसलिए उचित नहीं मानते कि पीड़ा जहाँ चेतना की स्वतः-पर्याप्त विशेषता है वहाँ आनन्द अपने-आपमें घटना न होकर घटना का ढग है। हम कहते हैं कि हमें आनन्द मिल रहा है। रिचर्ड्स की व्याख्या है कि वस्तुतः हमें चाक्षुष, श्रौत्र, प्रेरक (मोटर) अनुभव प्राप्त होते हैं जो आनन्दमय होते हैं। आनन्द या निरानन्द को रिचर्ड्स संवेदना का आन्तरिक धर्म नहीं मानते चूँकि किसी संवेदना की आनन्दात्मकता अत्यधिक परिवर्तनशील वस्तु है। संवेदना की ऐन्द्रिय विशेषताएँ समान रहने पर भी उसकी आनन्दात्मकता भिन्न हो सकती है। उदाहरणार्थ, संवेदना के रूप में एकरूप रहनेवाली कोई ध्वनि कुछ देर तक आनन्द दे सकती है और उसके बाद उबानेवाली लग सकती है। संवेदना (सेन्सेशन) से भावना (फीलिंग) को भिन्न मानने के मुख्य कारणों में से एक यह भी है। ध्वनि का तान (टोन), ऊँचाई (वॉल्यूम) तथा गहनता (इण्टेन्सिटी) उसकी ऐसी विशेषताएँ हैं जो उद्दीपन (स्टिमुलस) पर निर्भर हैं पर उसकी आनन्दात्मकता बाहरी उद्दीपन पर नहीं, उन कारणों पर निर्भर है जो अभी अस्पष्ट हैं। अतः जिस अर्थ में आवाज की ऊँचाई उसका धर्म है उस अर्थ में आनन्दात्मकता उसका धर्म नहीं। आनन्द को किसी भी संवेदना का धर्म मानने में रिचर्ड्स को आपत्ति है। संवेदना की परिभाषा उनके अनुसार इस प्रकार है: कोई भी आवेग अपने विकास की स्थिति में जिसे अनुभूत करता है वह संवेदना है। संवेदना के ऐन्द्रिय (सेन्सरी) धर्म आवेग की उस स्थिति की विशेषताएँ हैं। आनन्द-निरानन्द को रिचर्ड्स आवेग की विशेषता न मानकर उसके परिणाम (फेट) मानते हैं। जिस प्रणाली (सिस्टम) के अन्तर्गत कोई आवेग रहता है उस प्रणाली में सन्तुलन लाने की सफलता या विफलता को वे आनन्द या निरानन्द कहते हैं।

अपनी उपर्युक्त धारणाओं के आधार पर रिचर्ड्स आनन्द-निरानन्द की परिभाषा

75. PRINCIPLES, P. 70.

जाती है, जैसे प्रत्याशा प्रायः संज्ञान के अन्दर समझी जाती है पर उसमें कुछ विशिष्ट उद्दीपनों के लिए प्रस्तुत होने की स्थिति क्रियावृत्ति है। इसी तरह भूख, जिसे प्रायः इच्छा के अन्दर रखते हैं, पोषण के अभाव की जानकारी देती हुई संज्ञान के अन्दर आ जाती है। इन्हीं बातों को देखकर रिचर्ड्स संज्ञान, भावना तथा क्रियावृत्ति के वर्गीकरण का परित्याग करके कारण, वैशिष्ट्य और परिणाम को मानसिक घटनाओं के मूल तत्त्व के रूप में स्वीकार करते हैं।

रिचर्ड्स किसी मानसिक घटना का कारण केवल उद्दीपन को ही नहीं मानते, रक्त की हालत एवं सिर की स्थिति को भी उसका कारण मानते हैं। उनके अनुसार किसी मानसिक घटना के कारण का उतना ही अंश संज्ञान समझा जाना चाहिए जितना संवेदी आवेगों (सेन्सरी इम्पल्सेज) में कार्यान्वित होता है। इसी तरह किसी मानसिक घटना के सारे प्रभावों या परिणामों को इच्छा न मानकर तंत्रिका-तंत्र द्वारा प्रेरित उन्हीं संचलनों (मूवमेंट्स) को इच्छा के अन्तर्गत मानना चाहिए जो प्रेरक आवेगों (मोटर इम्पल्सेज) के माध्यम से प्रतिफलित होते हैं।

(इ) ज्ञान-सिद्धान्त— काव्यालोचन में ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त की आवश्यकता रिचर्ड्स के अनुसार एक ही स्थल पर है जहाँ हम यह निर्णय करना चाहते हैं कि कोई कविता सच्ची है या नहीं या वास्तविकता उद्घाटित करती है या नहीं और यदि करती है तो किस अर्थ में। ऐसे निर्णय का आधार ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त है, ऐसा समझकर वे अपना ज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं। उनके अनुसार किसी वस्तु की जानकारी (अवेयरनेस) का अर्थ उससे प्रभावित होना है। उदाहरणार्थ, किसी पृष्ठ पर अंकित अक्षरों की जानकारी मस्तिष्क के किसी अंग (जैसे रेटिना) पर पड़े प्रभावों या छापों (इम्प्रेशन्स) तथा मस्तिष्क के अन्य अंगों में घटित अन्य सम्बद्ध पेचीदी क्रियाओं के द्वारा प्राप्त होती है। इस प्रकार घटित मानसिक घटना अक्षरों की जानकारी है, यह कथन इस कथन के बराबर है कि यह घटना अक्षरों के कारण घटित हुई है। जहाँ व्यतीत या भविष्य की वस्तुओं को हम अभ्युद्दिष्ट करते हैं वहाँ प्रभाव या छाप सामान्यतः संकेत (साइन्स) होते हैं तथा उनका प्रभाव केवल उन्हीं तक सीमित नहीं होता अपितु व्यतीत में उनके साथ संयुक्त अन्य प्रभावों पर निर्भर रहता है। रिचर्ड्स के अनुसार, संकेत (साइन) वह है जो कभी मन में क्रियान्वित किसी संपूर्ण संदर्भ (कॉण्टेक्स्ट) का अंग रहा है। जब यह पुनः प्रकट होता है तो ऐसा लगता है जैसे संदर्भ के शेष अंशों के साथ यह उपस्थित हो। इस प्रक्रिया का अध्ययन शब्दों के अध्ययन के सिलसिले में रिचर्ड्स उपयोगी समझते हैं। इसपर उन्होंने अपनी 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' नामक पुस्तक में विचार किया है। ज्ञान का जो सामान्य सिद्धान्त वे मानते हैं वह है : किसी वस्तु को जानने का अर्थ उससे प्रभावित होना है, प्रत्यक्षतः तब, जब हम उसका ऐन्द्रिय बोध प्राप्त करते हैं और अप्रत्यक्षतः तब, जब व्यतीत प्रभाव (इम्प्रेशन्स) कार्यरत होते हैं।

आलोचना मे अँगरेजी 'इमोशन' तथा उसके हिन्दी समानार्थी 'भाव' शब्द का प्रयोग मन के किसी भी व्यापार का बोध कराने के लिए होता है। किन्तु वैज्ञानिक मनोवृत्ति रखने के कारण रिचर्ड्स ने संवेग (इमोशन) को उसके मनोविज्ञानसम्मत अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। 'प्रिंसिपुल्स' के तेरहवे अध्याय मे उन्होंने सवेग (इमोशन) के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए सामान्य सवेदनीयता या सार्वदेहिक सवेदनपुज (को-एनेस्थेसिया) से उनका सम्बन्ध स्थापित किया है। काव्यानुभूति मे सवेगो का योगदान रहता है, अत उनकी प्रकृति जानना आवश्यक है।

रिचर्ड्स के अनुसार सवेग चेतना के अग है। उद्दीपक परिस्थितियाँ संपूर्ण शरीर मे व्यापक रूप से सघटित प्रभाव उत्पन्न करती हैं जिन्हे हम चेतना की स्पष्टतया लक्षित विशेषताओ के रूप मे अनुभूत करते है। आंगिक या जैव अनुक्रिया (रेस्पॉन्स) के ये कलाप (पैटर्न), रिचर्ड्स के अनुसार, भय, शोक, हर्ष, क्रोध आदि सवेगात्मक स्थितियाँ हैं। उनका कथन है कि जब किसी व्यक्ति की स्थायी या सामयिक प्रवृत्तियाँ आकस्मिक रूप से विफल हो जाती हैं या सौविध्य पाती है तो प्राय. सवेग उत्पन्न होते हैं। ये संवेग, उद्दीपन के क्षण मे किसी व्यक्ति के जीवन की आन्तरिक परिस्थितियो पर ज्यादा निर्भर करते है, बाह्य उद्दीपनो की प्रकृति पर बहुत ही कम। इसीलिए सवेग, आनन्द तथा निरानन्द की भावना (फीलिंग) के अन्तर्गत रखकर सवेदना से, जो अपनी विशेषताओ के लिए उद्दीपन पर अधिक निर्भर करती हैं, पृथक् किया जाता है। रिचर्ड्स सवेग (इमोशन) तथा भावना (फीलिंग) के पर्यायरूप प्रयोग मे आपत्ति करते है। उनके अनुसार, 'भावना' को आनन्द-निरानन्द का ही वाचक मानना चाहिए, उसे सवेग (इमोशन) का पर्याय बनाना उचित नहीं, चूँकि सवेग आंगिक सवेदनाओ से निर्मित समझे जा सकते है। सवेदनाएँ सज्ञानात्मक तत्वो के समकक्ष समझी जाती हैं। उनका सम्बन्ध वस्तु के ज्ञान से होता है न कि वस्तु के प्रति हमारे व्यवहार, सवेग या अभिवृत्ति से। रिचर्ड्स के मत मे आनन्द तथा सवेग का भी एक सज्ञानात्मक पक्ष है। आनन्द का सज्ञानात्मक पक्ष यह है कि हमे अपनी मानसिक प्रक्रिया के प्रकार का (यानी सफल या विफल रूप का) ज्ञान होता है। संवेग का सज्ञानात्मक पहलू यह है कि हमे अपनी अभिवृत्तियो (एट्टीट्यूड्स) का ज्ञान होता है। किन्तु सवेग इससे भी कुछ अधिक ज्ञान करा सकते हैं। उदाहरणार्थ, कुछ लोगों मे असाधारण वर्णबोध (कलर-सेन्स) की योग्यता होती है। वे बिना सूक्ष्म चाक्षुप परीक्षण के ही रगो का सूक्ष्म अन्तर जान लेते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग पहले-पहल मिलनेवाले व्यक्तियो के नैतिक चरित्र के विषय मे तुरन्त सही अनुमान कर लेते हैं। ऐसे ही, बच्चा माँ की अभिव्यक्तियो के प्रति असाधारण रूप से सवेदनशील होता है। रिचर्ड्स के अनुसार कलाकार प्राय: ऐसी अवधारणाओ या निर्णयों मे कुशल होता है। इसी को लोग सहज ज्ञान (इन्ट्यूशन) कहकर बात को अस्पष्ट कर देते हैं।

प्रत्यक्षण (पर्सेप्शन) मे आंगिक सवेदनाओ का उपर्युक्त हस्तक्षेप सभी कलाओ में

इस प्रकार देते हैं : आनन्द एक प्रकार की (शारीरिक दृष्टि से अनिवार्यतः उपयोगी नही) सफल क्रिया हैं तथा निरानन्द निराशापूर्ण (फस्ट्रेटेड), अव्यवस्थित (केऑटिक) तथा कुण्ठित क्रिया है। आनन्द-निरानन्द उन क्रियाओं के क्रम में उत्पन्न होते हैं जो किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रेरित होती हैं। इसी धारणा के अनुकूल रिचर्ड्स की मान्यता यह हैं कि मनुष्य के सभी प्रयत्नो का लक्ष्य आनन्द की प्राप्ति और निरानन्द से विरति मानना भ्रममूलक है। उन्होंने अपने मत के समर्थन मे रिवॉ के उस कथन को उद्धृत किया है जिसमे आनन्द के लिए आनन्द की खोज को दुर्बल और आत्मविनाशक क्रिया माना गया है। रिचर्ड्स आनन्द को मूलतः एक प्रभाव मानते हैं जो यह संकेत देता हैं कि विध्यात्मक या निषेधात्मक प्रवृत्तियाँ अपना लक्ष्य प्राप्त कर चुकी हैं और सन्तुष्ट हो चुकी हैं। बाद में अनुभव के आधार पर आनन्द कारण बन जाता है। अनुभव की सीख पाकर मनुष्य तथा पशु अपने को उन स्थितियों मे रखते हैं जो इच्छा को जागरित करें और इस प्रकार सतुष्टि के द्वारा आनन्द तक ले चले। लेकिन जब आनन्द को ही लक्ष्य मान लिया जाता है तो मनोवैज्ञानिक यत्न को विलोम स्थिति (इन्वर्शन) उपस्थित होती है। प्रथम स्थिति मे क्रिया नीचे से ऊपर को ओर होती हैं और दूसरी स्थिति में (यानी आनन्द को लक्ष्य बना लेने में) ऊपर से नीचे की ओर यानी मस्तिष्क से आंगिक कार्यों की ओर।

रिचर्ड्स का कथन है कि प्रत्येक क्रिया का विशिष्ट लक्ष्य होता है जिसकी पूर्ति होने पर आनन्द उत्पन्न होता है, पर आनन्द क्रिया का लक्ष्य नही है। इसीलिए उनके अनुसार आनन्दप्राप्ति के लिए कविता पढना अपर्याप्त दृष्टिकोण का परिचायक है यद्यपि कविता पढ लेने पर आनन्दप्राप्ति सभव है। आनन्द को मुख्य लक्ष्य के रूप मे रखना अवधान (एटेन्शन) की गलती का उदाहरण है। आनन्दप्राप्ति के लिए कोई व्यक्ति कविता पढता है, यह मानना रिचर्ड्स की दृष्टि मे वैसा ही बेतुका है जैसा यह मानना कि कोई गणितज्ञ किसी समस्या के समाधान मे आनन्दप्राप्ति के लिए प्रवृत्त होता है। कविता पढ़ने मे या समस्या के समाधान मे बहुत आनन्द मिल सकता है पर यह आनन्द वस्तुतः उक्त क्रियाओं का लक्ष्य नही है अपितु उनकी प्रक्रिया मे उत्पन्न वस्तु है, ठीक उसी तरह जैसे मोटरसाइकिल चलने की प्रक्रिया मे उत्पन्न शोर उसके चलने का कारण नही है अपितु उसके चलने की सूचना देनेवाला है। रिचर्ड्स का मत है कि इस बात को न समझने के कारण ही दुखान्त नाटकों के सम्बन्ध मे गलत दृष्टिकोण का प्रचार हुआ है। उनका विश्वास है कि यदि वर्ड्सवर्थ या कॉलरिज आज लिखते तो काव्यात्मक मूल्य के वर्णन में 'आनन्द' की जगह कोई दूसरा शब्द प्रयुक्त करते।[76]

(उ) संवेग तथा सामान्य संवेदनीयता (इमोशन ऐण्ड को-एनेस्थेसिया)—

76. *Ibid*, P. 97

प्रस्तुत किया जा रहा है।

रिचर्ड्स का मत है कि हमारे अनुभव की समृद्धि और सकुलता स्मृति पर निर्भर है जिसे वे विगत अनुभूतियों को प्राय. फिर से जीवित करना मानते है। जब भी कोई उद्दीपन गृहीत होता है तो वह अपने पीछे एक छाप छोड़ जाता है। इस छाप को फिर से जिलाया जा सकता है और चेतना तथा व्यवहार मे इसका योगदान प्राप्त हो सकता है। हमारे व्यवहार की व्यवस्था इन विगत अनुभूतियो के प्रभाव पर निर्भर है। स्मृति जीवित तनुओं की ऐसी विचित्रता है जिसके द्वारा अतीत वर्तमान के व्यवहार को प्रभावित करता है।

इन प्रभावो का बोध हमे किस प्रकार होता है, यह मनोविज्ञान मे सर्वाधिक दुर्बोध विषय बना हुआ है। रिचर्ड्स का कथन है कि अब स्मृति की व्याख्या तन्त्रिका-मार्गों के मौविध्य तथा चेतोपागम (साइनैप्सेस) मे अल्प प्रतिरोध के रूप मे की जाती है। पर रिचर्ड्स स्मृति के सम्बन्ध मे मनोविज्ञानियों द्वारा दी गयी व्याख्याओ को अपूर्ण और अपरिपक्व मानते हैं। स्मृति की व्याख्या के लिए प्रतिपादित 'मार्ग-सिद्धान्त' (पाथवे थियरी) रिचर्ड्स के अनुसार सन्तोषजनक नहीं है। अनुभवो के कुछ स्थिर मार्गों को मानना और उन अनुभवो के विभिन्न सम्बन्धो के लिए कुछ भिन्न मार्गों को स्वीकार करना, उनके मत मे, हमारी अनुभूति और व्यवहार की सही व्याख्या नही कर पाता है। रिचर्ड्स ने अपने मत के समर्थन मे वान क्राइज तथा कॉफ्का के इस मत का उल्लेख किया है कि यह तथ्य कि हम उन स्थितियो मे भी वस्तुओं को पहचानते हैं जिनमे नितान्त भिन्न तन्त्रिका-मार्ग निश्चय ही सलग्न रहे होगे, स्मृति की 'मार्गीय' व्याख्या के लिए प्रतिकूल पड़ता है। रिचर्ड्स सेमॉन के इस कथन से भी सहमत नही हैं कि 'जब हम किसी गीत को सौवी बार सुनते हैं तो केवल गायक को ही नही सुनते, निन्यानवे स्मार्त आवाजो का सहसंगीत भी सुनते हैं'।

रिचर्ड्स की धारणा है कि हमे इस अधूरी मान्यता से अलग रहना ही है कि व्यतीत की पुनरावृत्ति के लिए उसका मन में 'रेकॉर्ड' रहना जरूरी है। प्राचीन साहचर्यवादियो (एसोसियेशनिस्ट्स) का मत था कि ये रेकार्ड अलग-अलग 'सेलो' मे छोटे पैमाने पर अकित रहते हैं। अपेक्षाकृत नया मत यह था कि संवाहन के स्रोतो को घनीभूत करके वे बड़े पैमाने पर सुरक्षित किये जाते है। रिचर्ड्स के अनुसार इनमे से कोई भी मत पूर्ण नही है। इसीलिए वे स्मृति की अपनी नवीन व्याख्या देते हैं जो नीचे प्रस्तुत है।

रिचर्ड्स स्मृति की व्याख्या के लिए मनुष्य मे एक ऐसी ऊर्जा-संहति (सिस्टम ऑफ एनर्जी) की कल्पना करते हैं जो बहुत जटिल और अत्यन्त सूक्ष्म व्यवस्थाओ को लिये हुए हो और जिसमे स्थिर विरामो (स्टेबल प्वाइजेज) की अनगिनत सख्या हो। वे कहते हैं कि इस ऊर्जा-संहति को एक विराम से दूसरे विराम तक अधिक सुविधा के साथ इस तरह निक्षिप्त करने की कल्पना की जाय कि प्रत्येक

सक्रिय रहता है। इस प्रक्रिया का महत्त्व कम नहीं है, पर इसपर ध्यान नहीं दिया गया है। रिचर्ड्स का कथन है कि वस्तुओं को जानने का उपर्युक्त ढंग जानने के अन्य प्रकारों से नितान्त भिन्न कोटि का नहीं है। इसलिए वस्तु के प्रति भावना के किसी विचित्र सम्बन्ध की कल्पना इसकी व्याख्या के लिए करना उचित नहीं है। किसी भी स्थिति में संवेदना अपने कारण पर ही आधृत रहती है।

रिचर्ड्स संवेगात्मक अनुभव की दो मुख्य विशेषताएँ बताते हैं, एक तो शरीर के अंगों में सहानुभूतिक प्रणालियों (सिस्टम्स) के द्वारा व्याप्त प्रतिक्रियाएँ और दूसरी, कुछ निश्चित प्रकार की क्रियाशीलता के लिए प्रवृत्ति। श्वास या रक्तशिराओं के ये व्यापक परिवर्तन, जो प्रायः पसीने और ग्रन्थियों के स्राव के रूप में व्यक्त होते हैं, उन परिस्थितियों की अनुक्रियाओं के रूप में प्रायः होते हैं जो किसी सहज प्रवृत्ति (इन्सटिंक्ट) को कार्यरत करती है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप शरीर के भीतर उत्पन्न होनेवाली संवेदनाओं का एक ज्वार चेतना में उपस्थित होता है। यह प्रायः स्वीकृत है कि ये संवेदनाएँ किसी संवेग की विशिष्ट चेतना का मुख्य अंग हैं। रिचर्ड्स का कथन है कि संवेग-सम्बन्धी सिद्धान्त की व्याख्या में इन संवेदनाओं के बिम्बों (इमेज) पर अपर्याप्त ध्यान दिया गया है। उनका मत है कि भय की वस्तु के उपस्थित न रहने पर भी भय के उत्पन्न होने की बात की व्याख्या उक्त संवेदनाओं के बिम्बों की सत्ता मानकर की जा सकती है जो (बिम्ब) भय की वस्तु का स्थान लेकर भय का कारण बनते हैं। इसीलिए, रिचर्ड्स के अनुसार, उक्त संवेदनाएँ और उनके बिम्ब किसी आवेगात्मक अनुभव का एक मुख्य अंग हैं और आवेग के विशिष्ट रंग, आकार और तीव्रता आदि के कारणभूत हैं। किन्तु उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण चेतना के वे परिवर्तन हैं जो स्नायु-तन्त्र की उन प्रतिक्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं जो उद्दीपक परिस्थिति के प्रति पेशीगत अनुक्रियाओं को नियन्त्रित करती हुई गतिनियन्त्रण करती हैं। भय के मामले में भाग जाने या छिप जाने के आवेग से लेकर किसी प्रिय मत पर आक्रमण होने पर उसका सामना करने के लिए अपने भीतर की गयी समायोजनाएँ प्राप्त करने तक की सारी बातें इनके अन्दर आ जाती हैं। रिचर्ड्स के अनुसार, किसी परिस्थिति के प्रत्यक्षण से लेकर उसका सामना करने के प्रकार की प्राप्ति तक एक असाधारणतः पेचीदी प्रक्रिया उत्पन्न होती है जो संवेगात्मक अनुभव की अवशिष्ट विशेषताओं का निर्माण करती है।

(ऊ) स्मृति—कोई भी ऐसी मानसिक क्रिया नहीं है जिसमें स्मृति का हस्तक्षेप न हो। काव्यानुभूति में कल्पना का कितना योगदान रहता है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। कल्पना में स्मृति का सुपरिचित रूप देखा जाता है। अतः काव्यानुभूति एवं कल्पना के स्वरूप को समझने के लिए स्मृति का स्वरूपबोध आवश्यक है। रिचर्ड्स ने स्मृति-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक मतों का उल्लेख करते हुए अपना विशिष्ट मत निर्धारित किया है। उनके स्मृति-सम्बन्धी विचारों का सार नीचे

बिम्बों के सचेत होने की मात्रा की दृष्टि से। ऐसे लोग भी, जो बिम्ब-बोध से वंचित ही रहते हैं, इस तरह का व्यवहार करते हैं कि उनमें भी कुछ वैसी ही प्रक्रियाएँ कार्यरत हो जैसी अत्यधिक बिम्ब-बोध करनेवाले व्यक्ति में कार्यरत रहती हैं।

(ए) अभिवृत्ति (ऐट्टीट्यूड)— रिचर्ड्स ने काल्पनिक और आरम्भमाण क्रियाओं (इन्सिपिएंट ऐक्शन्स) को अभिवृत्ति कहा है। वे मानव-अनुभूतियों में अभिवृत्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान मानते हैं। उनके अनुसार कविता के प्राय: सभी मूल्यवान् प्रभावों की व्याख्या अभिवृत्ति के रूप में की जा सकती है किन्तु आलोचना में इसपर बहुत कम ध्यान दिया गया है। रिचर्ड्स ने अभिवृत्तियों का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए काल्पनिक और आरम्भमाण क्रिया की विस्तृत व्याख्या दी है जो नीचे प्रस्तुत है।

रिचर्ड्स के अनुसार स्मृति का हस्तक्षेप केवल संवेदनाओं और संवेगों तक ही सीमित नहीं है, हमारे सक्रिय व्यवहारों में भी उसे देखा जा सकता है। किसी पेशीय निष्पन्नता (मस्क्यूलर एकॉम्प्लिश्मेंट) की प्राप्ति में, उदाहरणार्थ, नृत्य में, हम इसे देख सकते हैं। हमने जो अतीत में किया है वह हमारे वर्त्तमान के कार्य को नियंत्रित करता है। जिस तरह किसी वस्तु का प्रत्यक्षण और प्रत्यभिज्ञा (जैसे, यह वृक्ष है) सम्बद्ध ऐन्द्रिय प्रणाली में विराम (प्वाइज) उपस्थित करता है (जिसे कोहलर ने 'क्लोजर' कहा है) उसी तरह कोई कार्य प्रेरक प्रणाली (मोटर सिस्टम) में वैसा ही संतुलित विराम उत्पन्न करता है। किन्तु ऐन्द्रिय या संवेदी प्रणाली तथा प्रेरक प्रणाली एक-दूसरे से स्वतंत्र न रहकर साथ-साथ कार्य करती हैं अतः प्रत्येक प्रत्यक्षण (पर्सेप्शन) में आरम्भमाण क्रिया के रूप में एक अनुक्रिया निहित रहती है। हम इस तथ्य को प्राय: नजरअन्दाज कर जाते हैं कि हम हमेशा कितनी दूर तक प्रारंभिक समायोजन (एडजस्टमेंट) करते हैं, इस या उस ढंग से कार्य करने के लिए तैयार होते रहते हैं। यही तैयारी, यही आरंभिक समायोजन आरम्भमाण क्रिया है जो प्रकट क्रिया (ओवर्ट ऐक्शन) से बहुत-कुछ उसी तरह सम्बद्ध है जिस तरह बिम्ब संवेदना के साथ सम्बद्ध रहता है। किन्तु इस काल्पनिक क्रिया को पहचानना और इसपर प्रयोग कर पाना कठिन होता है।

रिचर्ड्स की धारणा है कि किसी भी क्रिया के घटित होने के पूर्व उसके लिए प्राथमिक समायोजन या व्यवस्था आवश्यक होती है जिससे एक अंग दूसरे के रास्ते में बाधक न बने। उनका मत है कि यह प्राथमिक समायोजन चेतना का अंगत: निर्माण करता है यद्यपि अधिकारी मनोविज्ञानियों का मत इसके प्रतिकूल है। जो भी हो, मनुष्य के अनुभवों में उक्त आरम्भमाण या काल्पनिक क्रिया का महत्त्व असंदिग्ध है। लिप्स, ग्रूस आदि ने भावतादात्म्य (एम्पेथी) के सम्बन्ध में जो कार्य किया है उससे स्पष्ट होता है कि मनुष्य जब सांगीतिक रूपों का प्रत्यक्षण प्राप्त करता है तो उसके प्रत्यक्षण के साथ-साथ प्रेरक क्रिया संलग्न रहती है।

विराम शरीर-यंत्र की संपूर्ण शक्तियों का परिणाम हो। वे पुनः कल्पना करने को कहते हैं कि मान लीजिए कि स्थितिविशेष का आंशिक प्रत्यागमन, जिसने पहले स्थिर विराम को संभव बनाया था, इसे अस्थिर परिस्थिति में निक्षिप्त करता है जिससे यह बड़ी आसानी से पहले विराम को पुनः प्राप्त करते हुए सामान्य अवस्था प्राप्त करता है। रिचर्ड्स के अनुसार इस प्रकार की व्यवस्था स्मृति-प्रक्रिया को निर्दिष्ट कर सकने में समर्थ है। इसमें रेकॉर्ड रखनेवाली बात बिलकुल नहीं मानी गयी है।

स्मृति-सम्बन्धी उपर्युक्त काल्पनिक व्याख्या को रिचर्ड्स ने एक उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। वे कहते हैं कि एक ऐसा ठोस पदार्थ लिया जाय जिसके अनेक अनीक (फेसेट) हों और उन अनीकों में से वह किसी भी अनीक पर स्थित रह सकता हो। यदि हम इसके विविध अनीकों में से किसी एक पर संतुलित करने की चेष्टा करें तो यह सबसे नजदीकवाले अनीक पर अवस्थित होगा। तंत्रिका-तंत्र में प्रत्येक स्थिर विराम एक खास 'सेट' या परिस्थितियों के प्रकरण के द्वारा निर्धारित होता है, यह रिचर्ड्स की मान्यता है। इस प्रकरण की सदस्यता अनीक के सामीप्य से मेल खाती है। प्रकरण का आंशिक प्रत्यागमन पूरे तंत्र को इस तरह का व्यवहार करने के लिए प्रेरित करता है मानो वे परिस्थितियाँ वर्त्तमान हैं जिनका अभी अस्तित्व नहीं है। स्मृति में 'अनिवार्यता' यही होता है।

रिचर्ड्स स्वीकार करते हैं कि उनके द्वारा दी गयी स्मृति की उपर्युक्त व्याख्या असंतोषजनक, अपूर्ण तथा अनुमान की प्रबलता से युक्त है तथापि वे इसी व्याख्या के पक्ष में हैं। कारण, स्मृति-सम्बन्धी 'पायबे'-सिद्धान्त तथा 'आर्किवल'-सिद्धान्त में भी वे उपर्युक्त त्रुटियाँ देखते हैं। दूसरी तरफ, उनकी व्याख्या में उक्त दो सिद्धान्तों की अन्य कमियाँ नहीं पायी जातीं, ऐसा उनका विश्वास है। उदाहरणार्थ, अनुभवों के वे कुछ संयोजन ही क्यों सम्बद्ध (एसोसियेटेड) होते हैं जो स्थिर विराम लाते हैं, इस बात की व्याख्या उपर्युक्त प्रस्तावित स्मृति-सिद्धान्त से हो जाती है। कोई भी वस्तु अनगिनत विविध पक्षों के साथ उपस्थित होने पर भी क्यों पहचान ली जाती है, इस बात की भी व्याख्या इस सिद्धान्त से हो जाती है। रिचर्ड्स के अनुसार, उनके सिद्धान्त का एक लाभ यह भी है कि यह मनोविज्ञानियों को आत्मवाद (ऐनिमिज्म) के प्रलोभन से बचा लेता है। रिचर्ड्स की धारणा है कि प्रतिवर्त-चाप (रिफ्लेक्स आर्क) के रचना-तंत्र के विषय में चूँकि समसामयिक पूर्वकल्पनाएँ (हाइपॉथेसेस) संतोषजनक नहीं हैं अतः आत्मा की सत्ता में विश्वास करने की निराश प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। स्मृति की अधूरी व्याख्या इस प्रवृत्ति को जन्म दे सकती है अतः रिचर्ड्स ने उसकी अपेक्षाकृत अधिक संतोषजनक व्याख्या करने का यत्न किया है।

रिचर्ड्स का कथन है कि स्मृति का सुपरिचित रूप चाक्षुष बिम्बों में देखने को मिलता है। मूर्तिविधान में वैयक्तिक भिन्नताएँ बहुत अधिक होती हैं, विशेषतः

भिन्न होता है। रिचर्ड्स के अनुसार जीवन के सामान्य अनुभवों से कलागत अनुभवों का यह अन्तर और कुछ नहीं, समन्वय पानेवाले आवेगों की अल्प संख्या से निर्मित अनुभवों तथा उनकी अधिक संख्या से निर्मित अनुभवों में जो सामान्य अन्तर होता है उसी का विशिष्ट रूप है।

रिचर्ड्स का मत है कि विभिन्न प्रकार के आवेगों की अधिक संख्या में समन्वय लाने का परिणाम प्रायः यह होता है कि कोई प्रकट क्रिया घटित नहीं होती। सुविकसित मनुष्य में प्रकट क्रिया की अपेक्षा काल्पनिक और आरम्भमाण क्रिया का, जो पेशीय सचलन की सीमा तक नहीं जाती, अधिक महत्त्व है। कुशाग्र एवं परिष्कृत बुद्धि के व्यक्ति तथा मन्दधी में यह अन्तर है कि तेज बुद्धि का व्यक्ति प्रकट क्रिया के स्थान पर काल्पनिक क्रिया को अधिक मात्रा में प्राप्त करता है जबकि मन्दधी व्यक्ति को प्रकट क्रिया का अधिक सहारा लेना पड़ता है। कला द्वारा उत्पन्न अनुक्रियाओं के साथ भी यही स्थिति रिचर्ड्स मानते है। कलाओं के सम्यक् बोध का अर्थ अपेक्षित अनुक्रियाओं को काल्पनिक या आरम्भमाण स्थिति में प्राप्त करना तथा उनमें परस्पर समायोजन कर पाना है जबकि कला के बोध से वंचित रहने का अर्थ अपनी अनुक्रियाओं को बिना प्रकट क्रिया के रूप में व्यक्त किये उत्पन्न न कर पाना है। कविता के अनुभवी पाठक में किसी प्रकट क्रिया का या संवेग के बाह्य चिह्नों का अभाव रहना इस बात का सूचक नहीं होता कि उसके भीतर कोई प्रभाव ही उत्पन्न नहीं हुआ है। वास्तविकता यह है कि कलाकृतियों से उत्पन्न होने-वाली अनुक्रियाएँ अधिकांश स्थितियों में आरम्भमाण या काल्पनिक स्थिति में ही रहती हैं। ऐसा होना अच्छा ही है चूँकि ये अनुक्रियाएँ प्रायः समस्या के समाधान की प्रकृतिवाली होती हैं, ये बौद्धिक गवेषणा न होकर संवेगात्मक व्यवस्थापन के रूप में प्राप्त होती हैं तथा इन्हें तभी उत्तम रूप से उपलब्ध किया जा सकता है जब, जिन आवेगों में समन्वय एवं सामञ्जस्य की आवश्यकता होती है, वे आरम्भमाण या काल्पनिक अवस्था में ही रहें।

ऊपर जिस आरम्भमाण या काल्पनिक क्रिया की व्याख्या की गयी है, उसे ही रिचर्ड्स ने 'अभिवृत्ति' (ऐट्टीट्युड) के नाम से पुकारा है। ये 'क्रिया के लिए प्रवृत्ति या झुकाव' हैं। परिस्थितियों से जगायी जाकर ये अभिवृत्तियाँ असंख्य और अनेक प्रकार की हो जाती हैं और इनके संघर्ष, दमन और घात-प्रतिघात का क्षेत्र विस्तीर्ण हो जाता है। इसी कारण अभी तक इन अभिवृत्तियों का वर्गीकरण और विश्लेषण काफी नहीं हो सका है। किसी संकुल मानसिक समायोजन में हजारों अभिवृत्तियाँ या क्रिया के लिए प्रवृत्तियाँ रह सकती है जो प्रकट क्रिया के रूप में परिणत नहीं होती। इनका कोई बाह्य साक्ष्य नहीं होता, इनकी सत्ता के अप्रत्यक्ष प्रमाण ही मिल सकते हैं।

रिचर्ड्स के अनुसार कलागत अनुभूति में अभिवृत्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संवेदना या बिम्बसृष्टि की दृष्टि से बहुत थोड़ा अन्तर रखनेवाली दो अनु-

रिचर्ड्स के अनुसार कलात्मक अनुभवों पर विचार करते समय इस प्रेरक क्रिया की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कला के प्रसग मे आवेगो के व्यवस्थापन या समायोजन को घटित करनेवाली आरभिक या काल्पनिक क्रिया का महत्त्व कितना अधिक है इसे स्पष्ट करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि किसी भी उद्दीपन का स्वाभाविक परिणाम कार्य होता है। परिस्थिति जितनी सरल होगी, प्रकट कार्य के साथ उद्दीपन का सम्बन्ध भी उतना ही घनिष्ठ होगा और उसी अनुपात मे चेतना कम समृद्ध होगी। इस तथ्य को रिचर्ड्स ने एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया है। विषम जमीन पर चलनेवाला व्यक्ति बिना चिन्तन और सवेग के ही अपने कदम को व्यवस्थित करता हुआ चलता रहता है किन्तु यदि उसे बिलकुल सीधी ढालवाली जमीन पर चलना पड़ा तो पहले से अनभ्यस्त रहने पर उसके मन मे तरह-तरह के आवेग और विचार उत्पन्न होने लगेंगे; जैसे, जरा-सी गफलत हुई तो लौटना असभव है, आदि-आदि। इस तरह परिस्थिति की जटिलता से मानसिक व्यापारो मे भी जटिलता आ जाती है और विविध प्रकार के आवेगो को व्यवस्थित करने की आवश्यकता हो जाती है। उपर्युक्त व्यक्ति के लिए उसके विविध आवेगो मे (जैसे, सतर्क होकर चलना है, लेट जाना है, हाथ से किसी चीज को पकड़ते चलना है या लौट ही जाना अच्छा है) व्यवस्थापन आवश्यक हो जाता है। उक्त व्यक्ति के आवेगो मे व्यवस्थापन एव उपयुक्त व्यवहार के साथ उन आवेगों का समन्वय करने के कारण उसके अनुभव की सारी विशेषताएँ ही बदल जाती हैं। रिचर्ड्स के अनुसार, मनुष्य के प्राय. सभी व्यवहार या आचरण उसके विविध आवेगो से उत्पन्न उन विविध क्रियाओं मे समझौते के रूप मे घटित होते हैं जो क्रियाएँ उन आवेगो को सतुष्ट करनेवाली होती है। उसके आवेगो मे जितनी अधिक विविधता होगी, उसकी चेतना मे अनुभव की समृद्धि उतनी अधिक होगी। कोई भी परिचित क्रिया जब भिन्न परिस्थिति से सम्बद्ध हो जाती है तो उसकी चेतना की समृद्धि मे वृद्धि हो जाती है चूँकि नयी परिस्थितियो के कारण उस क्रिया के उत्पादक आवेगों के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे अपने को नये आवेग-समूह के साथ समायोजित करें।

उपर्युक्त तथ्य, रिचर्ड्स के अनुसार, कलाओं के सदर्भ मे विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है चूँकि कलाओं मे परिचित वस्तुएँ अनिवार्यत नवीन परिवेश मे अनुभव का विषय बनती हैं। उदाहरणार्थ, वृक्ष का चित्र देखते समय हम वास्तविक वृक्ष को नहीं देखते बल्कि कुछ ऐसी चीज देखते हैं जिसका प्रभाव वृक्ष देखने के प्रभाव जैसा हो सकता है। हमारे इस ज्ञान के कारण कि हम वृक्ष न देखकर उसका चित्र देख रहे हैं, वृक्ष-सम्बन्धी आवेगो को नये परिवेश से उत्पन्न नये आवेगो के साथ अपने को समायोजित करना पड़ता है। इसी प्रकार रगमच पर हत्या के दृश्य को देखकर हमारे ऊपर जो प्रभाव पड़ता है वह वास्तविक हत्या के प्रभाव से

(ख) विवृति-विश्लेषण

निष्कर्ष यह कि रिचर्ड्स का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण किसी एक मनोविज्ञान-सम्प्रदाय का पूर्णत अनुगमन नही करता। वस्तुत मनोविज्ञान के प्रति आधुनिक दृष्टिकोण यही है कि किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का अनुगमन करने की अपेक्षा विविध सम्प्रदायो के द्वारा किये गये अनुसंधानो और उनसे प्राप्त निष्कर्षों का संश्लेषण ही उचित है। 'मध्यमार्गी मनोविज्ञान' (मिड्ल ऑफ़ द रोड साइकॉलोजी) इसी दृष्टिकोण का परिणाम है। आधुनिक मनोविज्ञानी सम्प्रदायो से ज्यादा मनोविज्ञान की शाखाओ मे अधिक दिलचस्पी रखते हैं। अत रिचर्ड्स का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण यदि संश्लेषणप्रधान है तो यह कोई आलोच्य विषय नही माना जाना चाहिए।

द्वितीय अध्याय

मूल्य-सिद्धान्त

रिचर्ड्स मूल्यवादी समीक्षक हैं। प्रभाववादी आलोचक की तरह वे कलाकृति द्वारा मन पर डाले गये प्रभावों के आलेखन तक ही आलोचना-कार्य की इतिश्री नहीं मानते। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि आलोचना-सिद्धान्त के आधारभूत स्तम्भ दो हैं— (१) मूल्य का लेखा और (२) संप्रेषण-व्यापार (कम्युनिकेशन) का विवेचन।[1]

कला के मूल्य-निर्णय में भ्रान्ति— रिचर्ड्स का मत है कि आलोचकों, आचार-शास्त्रियों, शिक्षकों, सौन्दर्यशास्त्रियों आदि के द्वारा मानवीय व्यापारों की सपूर्ण आयोजना में कला के स्थान और महत्त्व को समझ पाने में गलती होती रही है। जिन्होंने उसके महत्त्व को सम्यग् रूप से समझा वे व्याख्या में प्रवृत्त नहीं हुए और जो व्याख्या के लिए प्रवृत्त हुए उन्हें भाषा की कठिनता के कारण अपने प्रयास में सफलता नहीं मिली।

मूल्य-साधना में कला का स्थान— रिचर्ड्स के अनुसार कलाएँ हमारे अंकित मूल्य-विचारों का सुरक्षित भाण्डार हैं।[2] वे असाधारण व्यक्तियों के जीवन के ऐसे क्षणों की सृष्टि हैं जब उनका अपनी अनुभूतियों पर अधिकतम नियंत्रण और अधिकार रहता है; जब अस्तित्व की बहुविध संभावनाओं के स्पष्ट दर्शन होते हैं और संभावित क्रियाओं में सर्वाधिक सुन्दर सामंजस्य प्राप्त होता है, स्वार्थों की अभ्यस्त संकीर्णता या विमूढ़ावस्था का स्थान सुघटित मानसिक शान्ति ले लेती है। कलाएँ भावकों के जीवन में भी ऐसे ही क्षणों की सृष्टि करती हैं।[3] रिचर्ड्स का विश्वास है कि अनुभूतियों के मूल्य के सम्बन्ध में हमारे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय कलाओं

1. The two pillars upon which a theory of criticism must rest are an account of value and an account of communication —PRINCIPLES P. 25.

2. The arts are our storehouse of recorded values.—*Ibid, P. 32*

3. They spring from and perpetuate hours in the lives of exceptional people, when their control and command of experience is at its highest, hours when the varying possibilities of existence are most clearly seen and the different activities that may arise are most exquisitely reconciled, hours when habitual narrowness of interests or confused bewilderment are replaced by an intricately wrought composure. —*Ibid P. 32.*

मूल्य-सिद्धान्त

रिचर्ड्स मूल्यवादी समीक्षक है। प्रभाववादी आलोचक की तरह वे कलाकृति द्वारा मन पर डाले गये प्रभावों के आलेखन तक ही आलोचना-कार्य की इतिश्री नहीं मानते। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि आलोचना-सिद्धान्त के आधारभूत स्तम्भ दो हैं— (१) मूल्य का लेखा और (२) सम्प्रेषण-व्यापार (कम्युनिकेशन) का विवेचन।[1]

कला के मूल्य-निर्णय में भ्रान्ति— रिचर्ड्स का मत है कि आलोचकों, आचार-शास्त्रियों, शिक्षकों, सौन्दर्यशास्त्रियों आदि के द्वारा मानवीय व्यापारों की सम्पूर्ण आयोजना में कला के स्थान और महत्त्व को समझ पाने में गलती होती रही है। जिन्होंने उसके महत्त्व को सम्यक् रूप से समझा वे व्याख्या में प्रवृत्त नहीं हुए और जो व्याख्या के लिए प्रवृत्त हुए उन्हें भाषा की कठिनता के कारण अपने प्रयास में सफलता नहीं मिली।

मूल्य-साधना में कला का स्थान— रिचर्ड्स के अनुसार कलाएँ हमारे अंकित मूल्य-विचारों का सुरक्षित भाण्डार हैं।[2] वे असाधारण व्यक्तियों के जीवन के ऐसे क्षणों की सृष्टि है जब उनका अपनी अनुभूतियों पर अधिकतम नियंत्रण और अधिकार रहता है; जब अस्तित्व की बहुविध सम्भावनाओं के स्पष्ट दर्शन होते हैं और सम्भावित क्रियाओं में सर्वाधिक सुन्दर सामंजस्य प्राप्त होता है, स्वार्थों की अभ्यस्त संकीर्णता या विमूढ़ावस्था का स्थान सुघटित मानसिक शान्ति ले लेती है। कलाएँ भावकों के जीवन में भी ऐसे ही क्षणों की सृष्टि करती हैं।[3] रिचर्ड्स का विश्वास है कि अनुभूतियों के मूल्य के सम्बन्ध में हमारे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय कलाओं

1. The two pillars upon which a theory of criticism must rest are an account of value and an account of communication.—PRINCIPLES P. 25.

2. The arts are our storehouse of recorded values.—*Ibid, P. 32.*

3 *They spring from and perpetuate hours in the lives of exceptional people,* when their control and command of experience is at its highest, hours when the varying possibilities of existence are most clearly seen and the different activities that may arise are most exquisitely reconciled, hours when habitual narrowness of interests or confused bewilderment are replaced by an intricately wrought composure.

—*Ibid P. 32*

के माध्यम से अंकित है किन्तु अबतक मूल्य के अध्येताओं द्वारा कला के मूल्य का सम्यक् अध्ययन इसलिए नहीं हो सका कि उनके पास व्याख्या के लिए उपयोगी मनोविज्ञान का अभाव रहा और आचारशास्त्र का उनपर अनुचित प्रभाव रहा। अनुभूतियों के आपेक्षिक मूल्य-निर्णय के लिए कलाएँ उत्तम आधार-तथ्य (डाटा) प्रस्तुत करती हैं यदि उनके प्रति सही दृष्टिकोण अपनाया जाय।

आलोचक और मूल्यांकन-- रिचर्ड्स नहीं मानते कि शिवम् (गुड) की प्रकृति से सम्बद्ध जिज्ञासा और कला की परख में कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी कारण वे सर्वप्रथम 'शिवम्' की सामान्य जिज्ञासा में प्रवृत्त होते हैं। 'प्रिंसिपुल्स' की रचना के पूर्व यह सामान्य विश्वास चल पड़ा था कि आलोचक का सम्बन्ध कलाकृति से ही है, उसके किसी बाह्य प्रभाव से नहीं; अतः आलोचक को कलाकृति से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार के विचारों से जहाँ कलाकृति को प्रमुखता मिलती है, जो उचित भी है, वहीं कला और नैतिकता के सम्बन्ध-विच्छेद की धारणा को प्रोत्साहन मिलता है जो रिचर्ड्स की दृष्टि में कलालोचन के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है। यद्यपि श्रेष्ठ कलाकृतियों के सम्बन्ध में स्थूल नैतिक दृष्टि से की जानेवाली आलोचनाएँ (जैसे फ्लाबेर-कृत 'मदाम बोभेरी' को "ऐन एपॉलोजी फॉर एडल्टरस रौग" कहना) कला और नैतिकता के सम्बन्ध-विच्छेद की धारणा के लिए अंशतः उत्तरदायी हैं, किन्तु इसी कारण इस धारणा का औचित्य सिद्ध नहीं होता। यदि अयोग्य नीतिवादी कला के मूल्य की गलत व्याख्या करते हैं तो इस कारण कलालोचन से नीति-विचार का बहिष्कार उचित नहीं कहा जा सकता। कलालोचन में स्थूल नैतिक दृष्टि की प्रबलता देख नैतिक विचारों से आलोचकों का विरत हो जाना रिचर्ड्स की दृष्टि में वैसा ही है जैसा नीमहकीमों की ढिठाई के कारण योग्य और कुशल चिकित्सकों का अपने पेशे से विरत हो जाना; क्योंकि रिचर्ड्स आलोचक को मानव-मन के स्वास्थ्य के लिए उसी प्रकार जिम्मेवार मानते हैं जिस प्रकार डाक्टर को मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य के लिए।[4]

जनसंख्या की वृद्धि के साथ कलालोचन में अल्पमत और बहुमत के बीच संघर्ष की कठिन समस्या उपस्थित हुई है। कलालोचन के पैमानों पर छानेवाला यह संकट उनके पुनःपरीक्षण एवं सुरक्षा की आवश्यकता बढ़ा देता है। रिचर्ड्स इसीलिए इस बात की आवश्यकता महसूस करते हैं कि नैतिकता का ऐसा सामान्य सिद्धान्त अनुसंहित हो जिसके द्वारा मानवीय मूल्य-साधना में कलाओं के स्थान और कार्य की सही व्याख्या की जा सके। साथ ही समस्त भ्रान्तियों के निराकरण के लिए आलोचक के पास उपयुक्त अस्त्र की भी अपेक्षा है। यद्यपि व्यावसायिकता के अनुदिन अभ्युत्थान से कलालोचन के पैमानों पर छानेवाला संकट बढ़ता ही जा

4. It is as though medical men were all to retire because of the impudence of quacks For the critic is as closely occupied with the health of the mind as the doctor with the health of the body —*Ibid*, P. 35.

रहा है, चूँकि विकसित प्रचार-साधनों की सहायता से साधारण कोटि की रचनाएँ लोकप्रियता में श्रेष्ठ रचनाओं को पीछे छोड़ दे सकती हैं, पर रिचर्ड्स इस विषय में आस्थावान् है कि न तो मूल्यों की समाप्ति की आशंका है और न इसी की संभावना है कि लोकप्रियता विशेषज्ञों की सम्मति को अपदस्थ कर देगी। उनका विश्वास है कि कुछ अपवादों को छोड़कर अल्पमत का निर्णय बहुमत की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय है। तथापि आलोचक के पास इसके लिए पर्याप्त कैफियत रहनी चाहिए कि उसका निर्णय बहुमत के निर्णय से भिन्न होने के बावजूद क्यों मान्य होना चाहिए। अतः कलालोचन के क्षेत्र में अल्पमत और बहुमत के बीच की दूरी को कम करने के लिए तथा विशुद्धिवादियों (प्यूरिटन्स) और विकृत-मस्तिष्कों (पर्वर्ट्स) की उग्र-कठोर नैतिकताओं से कला की रक्षा के लिए ऐसे मूल्य-सिद्धान्त का अनुसंधान रिचर्ड्स आवश्यक समझते हैं जिसमें कला की श्रेष्ठता-हीनता की संतोषजनक व्याख्या करने की क्षमता हो।

निरपेक्ष मूल्य-सिद्धान्त— ऊपर कहा जा चुका है कि रिचर्ड्स 'शिवम्' की सामान्य जिज्ञासा आलोचक का प्रमुख कर्त्तव्य मानते हैं। वे मूल्य का सामान्य स्वरूप निर्धारित कर कला में उसकी व्याप्ति दिखाते हैं। वे अपने सामान्य मूल्य-सिद्धान्त की स्थापना के प्रकरण में सर्वप्रथम मूल्य को निरपेक्ष, अतीन्द्रिय और अव्याख्येय माननेवाली विचारणा को उपस्थित करते है और उसकी अग्राह्यता का तर्कसहित प्रतिपादन करते हैं। मूल्यविषयक इस मत के प्रमुख समर्थक डॉ० जी० ई० मूर हैं जिनके विचार उनकी 'प्रिंकिपिया एथिका' और 'एथिक्स' नामक पुस्तकों में प्राप्य है। इस मत के अनुसार मूल्यवान् और मूल्यहीन अनुभवों का अन्तर मनोवैज्ञानिक शब्दावली में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसके समर्थकों का कथन है कि जब हम किसी अनुभूति को 'अच्छी' कहते है तो उसका इतना ही अर्थ होता है कि उस अनुभूति में कोई नैतिक गुण या विशेषता विद्यमान है जिसको 'ईप्सित'-जैसे मनोवैज्ञानिक शब्द के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह मत नैतिक विशेषताओं को सहजज्ञान (इण्ट्यूशन) का विषय मानता है और 'शिवम्' को अव्याख्येय समझता है। इस मत के अनुसार वस्तुविशेष की नैतिक विशेषता का संकेतमात्र कर देना तथा वास्तविक 'शिव' और 'शिव' की साधन-स्वरूप वस्तु में अन्तर स्पष्ट कर देना मूल्य के अध्येता का कार्य होना चाहिए, इससे कुछ अधिक नहीं। इस मत के माननेवालों के अनुसार केवल कुछ चेतन अनुभूतियाँ, जैसे सौन्दर्य की परख, विशिष्ट परिस्थितियों में प्रेम और श्रद्धा के भाव ही 'साध्यरूप में शिव' (गुड फॉर देयर ओन सेक) हैं। शेष वस्तुएँ, जैसे पुस्तक, साहसिक कार्य आदि को ये साधनरूप में 'शिव' मानते हैं। इस प्रकार वास्तविक 'शिव' को ये विचारक अपना साध्य आप, अव्याख्येय और हेतु-निरपेक्ष मानते हैं। मूल्य की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करनेवालों के विरुद्ध इनकी आपत्ति यह है कि वे मूल्य की जगह किसी दूसरी वस्तु की ही व्याख्या करते है।

इनके अनुसार, 'शिव' का 'वाछनीयता' से तादात्म्य करना इसलिए ग़लत है कि हर वाछनीय वस्तु हमेशा 'शिव' नहीं होती।

रिचर्ड् स की आलोचना— रिचर्ड् स के अनुसार उपर्युक्त मत की विश्वसनीयता इस आध्यात्मिक मान्यता पर आधृत है कि कुछ ऐसी सत्ताएँ हैं जो वस्तुविशेष से सम्बद्ध दीखने पर भी उससे अविच्छेद्य सम्बन्ध से युक्त नहीं है, यानी वे किसी वस्तु के धर्म नहीं हैं। 'गोलाई' आदि विशेषताएँ ऐन्द्रिय अनुभवों के विषय हैं। इनसे भिन्न 'तार्किक सम्बन्ध', 'आवश्यकता', 'असम्भाव्यता' आदि मन द्वारा प्रत्यक्षतः बोधगम्य होने के कारण इन्द्रियातीत हैं। 'शिव' को भी इन्हीं में से एक माना गया है। रिचर्ड् स को इन अतीन्द्रिय आध्यात्मिक सत्ताओं की निरपेक्षता में विश्वास करनेवाले व्यक्तियों के विचारों में 'भाववाद' (ऐब्सट्रैक्शनिज़्म) का आधिपत्य दिखाई पड़ता है जिसे व्यंग्य करते हुए वे 'अवरोधनवाद' (ऑब्सट्रक्शनिज़्म) की संज्ञा देते हैं। यानी इस प्रकार के विचारों को वे विचारों की प्रगति का बाधक मानते हैं। उपर्युक्त प्रत्ययों के अनुसन्धित्सु दार्शनिकों की उपमा उन्होंने अँधेरी कोठरी में काली बिल्ली को खोजनेवाले व्यक्ति से दी है। उनका मत है कि बातचीत की सुविधा के लिए प्रत्ययों (कॉन्सेप्ट्स) तथा वस्तुविशेष (पर्टिकुलर्स) का पार्थक्य थोड़ी देर के लिए स्वीकार्य हो सकता है पर तात्त्विक दृष्टि से यह पार्थक्य स्वीकार्य नहीं हो सकता चूँकि संसार में प्रत्ययों और विशेषों का पार्थक्य दिखाई नहीं पड़ता। संसार को प्रत्ययों और विशेषों में विभक्त करके देखने का परिणाम रिचर्ड् स के अनुसार ऐसे मिथ्या प्रत्ययों की स्वीकृति है जिनकी शब्दाडम्बर के अतिरिक्त कोई सत्ता है ही नहीं। सौन्दर्यशास्त्र में 'सौन्दर्य', मनोविज्ञान में 'मन' तथा जीवविज्ञान में 'जीवन' को निरपेक्ष सत्ता के रूप में स्वीकार करना ऐसा ही है। इन निरपेक्षों के प्रति रिचर्ड् स की आपत्ति यह है कि ये अत्यन्त आकस्मिक रूप से अनुसंधान को समाप्त कर देते हैं। 'शिव' की निरपेक्षता की विचारणा को भी वे जिज्ञासा के आगे वैसा ही निरंकुश पूर्णविराम मानते हैं।

अतः रिचर्ड् स 'सुन्दरम्', 'शिवम्' जैसे निरपेक्ष समझे जानेवाले प्रत्ययों के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह करते हैं। उन्होंने ज्वारभाटे का उदाहरण देते हुए यह कहा है कि विज्ञान द्वारा पहले रहस्यमय और अव्याख्येय समझी जानेवाली बहुत-सी वस्तुओं और व्यापारों की तर्कसंगत व्याख्या की जा चुकी है। अतः यह आशा रखनी चाहिए कि विचारजगत् में अभी जो बातें अव्याख्येय प्रतीत होती हैं उनकी भविष्य में तर्कसम्मत व्याख्या की जा सकेगी। रिचर्ड् स का मत है कि मूल्य के निरपेक्ष सिद्धान्त का खण्डन करना यदि संभव न भी हो तो भी उसके बदले मूल्य की ऐसी धारणा ग्राह्य होनी चाहिए जो तथ्यों से प्रमाणित की जा सके और अपेक्षाकृत कम रहस्यात्मक हो। उन्होंने मनोविज्ञान की सहायता से ऐसी ही मूल्यधारणा का रूप प्रस्तुत किया है जिसका विस्तृत प्रतिपादन उन्हीं के आधार पर नीचे प्रस्तुत है।

मूल्य का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त—मूल्य-सम्बन्धी अनुसंधान के लिए नृवंशशास्त्र तथा मनोविश्लेषणशास्त्र द्वारा जो तथ्य प्रस्तुत किये गये हैं उनके कारण मूल्य के अनुसंधित्सु के निराश होने की आवश्यकता रिचर्ड्स नहीं समझते। नृवंशशास्त्र द्वारा विविध जातियों एवं सभ्यताओं की मूल्यधारणाओं में व्याप्त घोर विषमता का जो चित्र प्रस्तुत किया गया है उसे देखकर कोई सोचने को प्रस्तुत हो सकता है कि मनुष्यता के लिए श्रेय अथवा 'शिव' का कोई सामान्य सिद्धान्त ढूँढ़ निकालना असंभव है। इसी प्रकार मनोविश्लेषण द्वारा बच्चों के मूल्य-निर्णय के अध्ययन के आधार पर बच्चों के आवेगों, इच्छाओं और पसन्दों का जो चित्र सामने आता है वह उन्हें भी निराश करनेवाला है जो जीवन के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण नहीं रखते। रिचर्ड्स न तो मानवीय मूल्य-विचारों में व्याप्त घोर वैषम्य से आतंकित होते हैं और न मनुष्य के आदिम पशुरूप के दर्शन से ही चिन्ता का कोई कारण समझते हैं। उनका कथन है कि आन्तरिक मूल्य (इंट्रिंजिक वैल्यू) तथा साधनस्वरूप मूल्य (इन्स्ट्रूमेंटल वैल्यू) में अन्तर नहीं देख पाने के कारण ही मानवीय मूल्यधारणा में इतनी अधिक विभिन्नता देखने को मिलती है। तथापि रिचर्ड्स यह स्वीकार करते हैं कि मनुष्य की अच्छाई-बुराई की धारणाएँ उसकी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के द्वारा निर्णीत होती हैं। इस तथ्य से हमें यह सबक लेना चाहिए कि हम नैतिक विचारों की गतिशीलता में विश्वास रखें। मनोविश्लेषकों के नैतिकता-सम्बन्धी अध्ययन के विषय में रिचर्ड्स का मत है कि यह सुविदित है कि मनुष्य के आरंभिक आवेग सामाजिक दबावों के कारण प्रच्छन्न हो जाते हैं और उनका दिशापरिवर्त्तन हो जाता है। रीति-रिवाज, अन्धविश्वास, जनमत आदि के नियंत्रण में मनुष्य अपने भीतर नयी सहजप्रवृत्तियों का विकास प्राप्त करता है, क्रमशः वह संसार का अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करता है और उसपर उसका अधिकार बढ़ता चलता है। इन सबके परिणामस्वरूप आदिम मानवपशु धर्मात्मा के रूप में परिणत हो सकता है, ऐसा रिचर्ड्स का विश्वास है।

रिचर्ड्स का कथन है कि विकास की प्रत्येक स्थिति में मनुष्य के आवेग, इच्छाएँ और झुकाव नया रूप ग्रहण करते हैं और उनमें व्यवस्था एवं क्रमबन्धन (सिस्टेमेटाइजेशन) की अधिकाधिक मात्रा प्राप्त होती चलती है। यह व्यवस्था कभी पूरी नहीं होती। हमेशा कोई एक आवेग या आवेगसमूह किसी-न-किसी प्रकार दूसरे आवेगों के लिए बाधक होता रहता है या उनसे संघर्षरत होता है। मनुष्य का संपूर्ण जीवन आवेगों को व्यवस्थित करने का प्रयास है जिससे उनकी अधिकाधिक संख्या को संतुष्टि या सफलता मिले या उनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण आवेगों को संतुष्ट किया जा सके। यहीं मूल्य का प्रश्न उठ खड़ा होता है। हम कैसे यह निश्चय करें कि अमुक आवेग दूसरे की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है या विभिन्न मानसिक व्यवस्थाओं में से अमुक अधिक मूल्यवान् है। रिचर्ड्स ने मूल्य की व्याख्या में या आवेगों के महत्त्वनिर्णय के क्रम में किसी मनोविज्ञानेतर विचार

को प्रश्रय नहीं दिया है।

आवेगों को एषणाओं (एपेटेन्सी) तथा विमुखताओं (एवर्शन्स) में बाँटते हुए रिचर्ड्स ने मूल्य की परिभाषा इस प्रकार दी है : कोई भी ऐसी वस्तु मूल्यवान् है जो किसी दूसरी समान या अधिक महत्त्वपूर्ण एषणा को कुंठित किये बिना हमारी किसी एषणा को संतुष्ट करे।[5] एषणा की संतुष्टि में दूसरी एषणाओं के अतिरिक्त और कोई मनोवैज्ञानिक बाधा रिचर्ड्स स्वीकार नहीं करते।[6] उनका कथन है कि हर मनुष्य अपनी अधिकतम एषणाओं की संतुष्टि चाहता है पर एक एषणा की संतुष्टि कभी-कभी दूसरी एषणा के लिए बाधक हो जाती है। इसीलिए किसी वस्तु का मूल्यवान् होना इसी पर निर्भर नहीं करता कि उससे एषणाविशेष की संतुष्टि होती है, देखना यह भी होता है कि कहीं उक्त एषणा की संतुष्टि के कारण उसके समान या उससे अधिक महत्त्वपूर्ण एषणा बाधित तो नहीं हो रही है। यदि अन्य एषणाओं को निराश किये बगैर कोई वस्तु हमारी किसी एषणा को संतुष्ट करती है तभी वह मूल्यवान् है अन्यथा उससे प्राप्त होनेवाला संतोष अन्य एषणाओं के असंतोष के कारण घट जायगा। इस प्रकार नैतिकता का स्वरूप रिचर्ड्स की दृष्टि में बुद्धिमत्ता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और आचार-संहिताएँ कामचलाऊपन की सामान्य योजना से अधिक महत्त्व नहीं रखतीं।[7]

ऊपर रिचर्ड्स द्वारा दी गयी मूल्य की जिस परिभाषा का उल्लेख किया गया है उसमें एक बात के स्पष्टीकरण की अपेक्षा रह जाती है। एषणाओं के समान या अधिक महत्त्व की जो बात उक्त मूल्यपरिभाषा में उल्लिखित है उससे स्वभावतः हमारे सम्मुख यह प्रश्न उठता है कि एषणाओं के महत्त्वनिर्णय का आधार क्या है। रिचर्ड्स ने इस प्रश्न का भी समाधान कर दिया है। उनका कथन है कि आवेगों में एक की दूसरे की अपेक्षा प्राथमिकता स्पष्ट है। आवेगों की इस प्राथमिकता का अध्ययन अर्थशास्त्रियों द्वारा 'प्राथमिक आवश्यकताओं' और 'गौण आवश्यकताओं' के अन्तर्गत हुआ है। मनुष्य की कुछ आवश्यकताएँ, जैसे खाना, पीना, सोना, साँस लेना आदि, अवश्य पूरी होनी चाहिए जिससे दूसरे आवेगों की संतुष्टि संभव हो सके। कुछ आवश्यकताएँ तो प्रत्यक्षत: तृप्त होती है, जैसे साँस लेना, पर कुछ के लिए हमें साधनस्वरूप श्रम के पेचीदे चक्र में संलग्न होना पड़ता है। प्राथमिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए उद्दिष्ट इन क्रियाओं को अन्य क्रियाओं की अपेक्षा प्राथमिकता प्राप्त होती है। साथ ही, अपनी संतुष्टि की

5. Anything is valuable which will satisfy an appetencey without involving the frustration of some equal or more important appetency.—*Ibid, P. 48.*

6 The only psychological restraints upon appetencies are other appetencies *Ibid, P. 48*

7. Thus morals become purely prudential, and ethical codes merely the expression of the most general scheme of expediency to which an individual or a race has attained.—*Ibid, P. 48.*

आवश्यक शर्त के रूप में ये आवेगों का एक समूह बनाती हैं जिनकी सतुष्टि शारीरिक आवश्यकताओं की तुलना में गौण महत्त्व रखती है। किन्तु चूँकि मनुष्य सामाजिक प्राणी है अतः ये भी उसके सुखी जीवन के लिए प्रत्यक्षतः आवश्यक हो जाती है। आरभ मे जो आवेग साधन के रूप में महत्त्वपूर्ण थे और इसीलिए जिनकी जगह हम दूसरे आवेगों से काम चला सकते थे, वे समय पाकर असंख्य भिन्न कार्यों के लिए आवश्यक हो जाते है। साथ ही, जो वस्तुएँ आरभ में एक आवश्यकता की पूर्ति के रूप में मूल्यवान् थी, बाद में दूसरी आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिए भी महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। उदाहरण के लिए पोशाक को ले सकते हैं जो आज एक साथ अनेक आवश्यकताओं की तृप्ति का साधन बनी है। किन्तु रिचर्ड्स आवेगों की प्राथमिकता के इन उदाहरणों को उदाहरणमात्र समझते हैं। यानी उनके अनुसार मनुष्य के आवेगों की प्राथमिकता की स्थायी सूची नही प्रस्तुत की जा सकती। ये प्राथमिकताएँ परिवर्तनशील हैं। कभी-कभी आरभ मे अत्यन्त गौण समझा जानेवाला आवेग बाद मे शेष क्रियाओ से सम्बद्ध होकर इतना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि उसके बिना जीवन दूभर हो जाता है। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जब मनुष्य समाजविच्छेद की अपेक्षा मरण को श्रेयस्कर समझता है। अतः आवेगों के महत्त्व की दृष्टि मे उनकी प्राथमिकताओं की सूची न देकर उनके महत्त्व का सामान्य सिद्धान्त ही रिचर्ड्स निरूपित करते है जो इस प्रकार है: किसी आवेग की कुठा से उत्पन्न व्यक्ति की क्रियाओ मे दूसरे आवेगों द्वारा उपस्थित बाधा की मात्रा प्रथम आवेग के महत्त्व की निर्णायिका है।[8] यानी किसी आवेग का महत्त्व इस बात पर निर्भर है कि उसे कुंठित कर देने पर दूसरे आवेग किस मात्रा तक बाधा पहुँचाते हैं; यदि कम बाधा प्राप्त होती है तो वह आवेग अधिक महत्त्वपूर्ण है और यदि अधिक बाधा प्राप्त होती है तो वह आवेग कम महत्त्व का है।

आवेगों की सतुष्टि के रूप में मूल्य की जो व्याख्या रिचर्ड्स ने की है और जिसे ऊपर की पक्तियो में प्रस्तुत किया गया है उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जीवन मे अधिकाधिक मूल्य की प्राप्ति आवेगों के सामंजस्य पर निर्भर है। किन्तु रिचर्ड्स का मत है कि किसी भी व्यक्ति के जीवन मे आवेगों का समन्वय (को-ऑर्डिनेशन) तथा सामजस्य (हार्मोनाइज़ेशन) घटित करनेवाली कोई मनोव्यवस्था सदैव एक समान नही रहा करती—उसमे परिवर्तन होता रहता है। कारण, विभिन्न परिस्थितियों मे विभिन्न मनोव्यवस्थाओ की आवश्यकता होती है। जिस अनुपात मे कोई मनोव्यवस्था स्थिर रहती है उसी अनुपात मे वह त्याग की भी माँग करती है। अब प्रश्न यह उठता है कि विभिन्न प्रकार की मनोव्यवस्थाओ

8. The importance of an impulse, it will be seen, can be defined for our purposes as the extent of the disturbance of other impulses in the individual's activities which the thwarting of the impulse involves.—*Ibid, P. 51.*

से किसे हम अधिक मूल्यवान् मानें और किसे कम। इस सम्बन्ध में रिचर्ड्स का उत्तर है कि जिस मनोव्यवस्था में मानवीय सम्भावनाओं की कम-से-कम व्यर्थता लक्षित होती है, वह सर्वोत्कृष्ट है।[9] किसी भी मनोव्यवस्था में सभी आवेगों का पूर्ण सन्तोष सम्भव नहीं है। अतः कुछ आवेग किसी सीमा तक कुंठित होंगे ही। अतः कितने आवेग किस सीमा तक अतृप्त रहते हैं और उनका कितना महत्त्व है, इन बातों पर किसी मनोव्यवस्था का मूल्य निर्भर है। रिचर्ड्स ने भ्रष्टाचारी और अन्तःकरण के शिकार—दोनों प्रकार के लोगों की मनोव्यवस्थाओं की आलोचना की है चूँकि उनकी दृष्टि में दोनों को अपनी मनोव्यवस्थाओं के लिए त्याग के रूप में काफी कीमत चुकानी पड़ती है। केवल बुद्धिमत्ता की दृष्टि से भी दोनों प्रकार की मनोव्यवस्थाएँ आलोच्य हैं, यह रिचर्ड्स का मत है। रिचर्ड्स उन लोगों को सौभाग्यशाली मानते हैं जिनकी मनोव्यवस्था एक प्रकार के समायोज्य शोधनगृह[10] (क्लियरिंग हाउस) का विकास कर लेती है जिसके द्वारा विविध आवेगों के हकों को एक-दूसरे के साथ समायोजित करते हुए पूरा किया जाता है। रिचर्ड्स ऐसे लोगों की इसलिए प्रशंसा करते हैं कि इन्हें अधिकतम सन्तुष्टि मिलती है और अल्पतम दमन तथा त्याग करना पड़ता है। रिचर्ड्स का कथन है कि इस बात पर ध्यान नहीं देने के कारण ही उनको प्राकृतवादी या उपयोगितावादी नैतिकता पर स्वार्थपरायणता का आक्षेप किया जाता है। अपराधकर्मियों की निन्दा एक विशेष दृष्टि से रिचर्ड्स ने की है जिसका आधार उनकी नैतिक मान्यताएँ हैं। उनका कथन है कि अपराधकर्मियों का वास्तविक घाटा पकड़े जाने पर मिलनेवाला दण्ड या समाज में उनकी प्रतिष्ठाहानि नहीं अपितु महत्त्वपूर्ण मूल्यों के अनुभवों को प्राप्त कर पाने में असमर्थ हो जाना है।

मूल्य या नैतिकता का उपर्युक्त प्रतिपादन व्यक्ति की दृष्टि से किया गया है। किन्तु रिचर्ड्स ने उक्त वैयक्तिक नैतिकता को ही सामाजिक नैतिकता के रूप में भी परिणत करके दिखाया है। उन्होंने बेन्थम के सूत्रों में स्वमान्य नैतिकता के वैयक्तिक एवं समष्टिगत पक्षों का उपयुक्त कथन पाया है अतः उन्हें उद्धृत भी किया है। बेन्थम के ये सूत्र इस प्रकार हैं—

(१) किसी कार्य को करते समय सदैव प्रत्येक व्यक्ति का वास्तविक उद्देश्य उसका, अपनी दृष्टि में, उस समय का सबसे बड़ा सुख होना है।

(२) कार्यकाल में सदैव प्रत्येक व्यक्ति का उचित उद्देश्य उस क्षण से लेकर जीवन के अन्त तक उसका वास्तविक सुख है।

9. That organisation which is least wasteful of human possibilities is, in short, the best.—*Ibid*, P. 52.

10. बैंक प्रणाली में ऐसे 'गृह' की आवश्यकता होती है जहाँ विभिन्न बैंकों के पारस्परिक देयों को एक-दूसरे से समायोजित करके अवशिष्ट राशि की अदायगी हो। अपने यहाँ स्टेट बैंक 'क्लियरिंग हाउस' का कार्य करता है।

(३) समाज के ट्रस्टी के रूप मे समाज के किसी सदस्य के कार्य का उचित उद्देश्य सदैव उस समाज का सबसे बडा सुख होता है जहाँ तक वह सुख उन स्वार्थों पर निर्भर करता है जो सदस्यो के बीच एकता के सूत्र होते हैं।

रिचर्ड्स बेन्थम के उपरलिखित सूत्रों को इस संशोधन के साथ स्वीकार करते है कि 'सुख' (हैपिनेस) का अर्थ 'आनन्द' न लिया जाकर 'आवेगो की सतुष्टि' *लिया जाय।*

सामाजिक नैतिकता के विषय मे रिचर्ड्स ने एक पते की बात यह कही है कि समूह के नैतिक मानदण्डों की अपेक्षा अच्छी मनोव्यवस्था विकसित कर लेने-वाले व्यक्तियो के प्रति समाज उतना ही कठोर रहा है जितना उसकी अपेक्षा बुरी मनोव्यवस्था रखनेवाले व्यक्तियों के प्रति वह रहा है। उदाहरणार्थ, समाज सोक्रेतेज या ब्रूनो के प्रति उतना ही कठोर रहा जितना टर्पिन या बांटम्ले के प्रति। अत: रिचर्ड्स किसी व्यक्ति का सामाजिक बहिष्कार केवल इसी आधार पर उचित नही मानते कि वह समाज से भिन्न मनोव्यवस्था रखता है या समाज के दैनन्दिन कार्यकलापो मे हस्तक्षेप करता है। समूह और व्यक्ति के नैतिक मानदण्डो की भिन्नता का रूप विचारणीय है। समूह और व्यक्ति के द्वन्द्व मे अतिम निर्णय बहुमत की इच्छा पर देना रिचर्ड्स ठीक नही मानते। उनका विचार है कि *इस सम्बन्ध में आधारभूत सिद्धान्त यह होना चाहिए कि विभिन्न मनोव्यवस्थाओं* मे से किसके द्वारा अधिक मात्रा मे आवेगो की सतुष्टि मिलती है। समाज में प्राय: ऐसे लोगो को प्रशसा और आदर मिलता है जिनका जीवन अधिक समृद्ध होता है। *किन्तु इसका कारण यह होता है कि लोग समझते हैं कि ऐसे व्यक्तियों* का वे अपने लाभ के लिए उपयोग कर सकते हैं। रिचर्ड्स इसी आधार पर ऐसे लोगो की मनोव्यवस्थाओं को उचित और प्रशसनीय नही मानते।

समाज में प्रचलित रिवाजों के प्रति कट्टर आसक्ति क्यो रहती है तथा किसी भी नवीनता के प्रति क्यों असहिष्णुता दिखायी जाती है इसका कारण रिचर्ड्स यह बताते हैं कि जब भी कोई इच्छा किसी दूसरी की खातिर परित्यक्त कर दी जाती है तो *अपनायी गयी कार्यप्रणाली अतिरिक्त मूल्य प्राप्त करती है।* अत: उनके प्रति कट्टर आसक्ति स्वाभाविक है। कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व मे क्षण-क्षण कितना भी अधिक परिवर्त्तन क्यों न महसूस करे, वह बाह्य सामाजिक व्यवहारो की रक्षा मे सहयोग देने को विवश है। *ईश्वरेच्छा, अत.करण, मौखिक उपदेश, नैतिक* बन्धन, दडसहिता, जनमत आदि के द्वारा सामाजिक जीवन मे एकरूपता की रक्षा की जाती है। रिचर्ड्स का मत है कि इन तरीको तथा रीति-रिवाज, परपरा *या अन्धविश्वास के द्वारा नैतिकता का असली आधार, यानी समन्वित मनोव्यवस्था* द्वारा अधिकतम सतुष्टि की प्राप्ति का प्रयास, असाधारण मात्रा तक आच्छन्न हो जाता है तभी तो बड़ी-बड़ी मुश्किलें और विपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। सामाजिक व्यवहारों मे एकरूपता और स्थिरता की रक्षा इतनी आवश्यक प्रतीत होती है कि

उसके लिए कोई भी साधन न्यायोचित मान लिया जाता है, भले ही श्रेय की खोज में हमें विफलता हो क्यों न हाथ लगे। रिचर्ड्स इसीलिए गतिशील सामाजिक नैतिकता के पक्ष में हैं। उनका कहना है कि परिस्थितियों की अपेक्षा रिवाज देरी से बदलते हैं पर यह समझ लेना चाहिए कि परिस्थिति का हर परिवर्तन नये ढंग की मनोव्यवस्था की संभावना ला देता है। रिचर्ड्स के अनुसार व्यतीत नैतिक सिद्धान्तों से बढ़कर मानवता के लिए कष्टकर कोई बात हो ही नहीं सकती। अतः परिस्थितियों के द्रुत परिवर्तन के साथ-साथ नैतिक मानों के परिवर्तन को वे श्रेयस्कर समझते हैं।

जिस मनोव्यवस्था की चर्चा अपने मूल्य-सिद्धान्त के प्रकरण में रिचर्ड्स ने की है उसे वे चेतन योजना का विषय नहीं मानते। उनका विश्वास है कि यह व्यवस्था हमारी मैंरजानकारी में विकसित होती चलती है; विशेषतः दूसरे व्यक्तियों से प्रभावित होकर हम अस्तव्यस्त अवस्था से बेहतर व्यवस्थित स्थिति की ओर बढ़ते चलते हैं। साहित्य और कलाएँ इन प्रभावों को लाने के मुख्य साधन हैं। रिचर्ड्स के अनुसार उच्च कोटि की सभ्यता, जिसका अर्थ मुक्त, बहुविध और व्यर्थताशून्य जीवन है, साहित्य और कलाओं पर निर्भर करती है।

तृतीय अध्याय

कला और नैतिकता

जीवन-सम्बन्धी मनोवैज्ञानिक मूल्य-सिद्धान्त की स्थापना के पश्चात् रिचर्ड्स कलागत नैतिकता के स्वरूपविश्लेषण मे प्रवृत्त होते हैं। उनका दावा है कि उन्होंने ऐसी नैतिकता की रूपरेखा प्रस्तुत की है जो परिस्थितियों के परिवर्त्तन के साथ अपने मूल्यो मे परिवर्त्तन कर पाएगी; जो गुह्यता, निरपेक्षता तथा यथेच्छता से मुक्त रहेगी एव जिसके द्वारा मानवीय प्रयत्नों मे कला के स्थान और मूल्य की समुचित व्याख्या हो सकेगी।

सर्वप्रथम रिचर्ड्स नैतिकता की समस्या का अर्थ स्पष्ट करते है। मूल्य की व्याख्या के क्रम मे उन्होंने बताया है कि किसी चीज के मूल्यवान् होने का अर्थ आवेगों की सक्रियता तथा उनकी एषणाओ की सतुष्टि है। अच्छे होने का अर्थ सतुष्टिदायक होना है तथा अच्छी अनुभूति उस अनुभूति को कहेगे जिसमे अधिक महत्त्वपूर्ण आवेगो को बाधित किये बिना आवेगों की सतुष्टि एव सफलता प्राप्त हो। इस तरह नैतिकता की समस्या (यानी जीवन से अधिकतम सतुष्टि कैसे पायी जाय) वस्तुत. व्यक्ति के जीवन मे तथा व्यक्तियो के जीवन के पारस्परिक समायोजन मे व्यवस्था प्राप्त करने की समस्या हो जाती है। रिचर्ड्स का विश्वास है कि बिना व्यवस्था के मूल्य का लोप हो जाता है चूँकि अस्तव्यस्त स्थिति मे महत्त्वपूर्ण एव तुच्छ आवेग समानतः कुंठित रह जाते हैं।

कला का आस्वाद मूल्यवान् मन स्थिति उत्पन्न करता है। प्रश्न उठता है कि मन स्थितियों के मूल्यवान् होने का अर्थ और आधार क्या है। रिचर्ड्स का उत्तर है कि सर्वाधिक मूल्यवान् मन स्थितियाँ वे हैं जो मानवीय क्रियाओ मे अधिकतम और व्यापकतम समन्वय कर पाती हैं तथा जो आवेगो के कम-से-कम निरोध, संघर्ष, अतृप्ति एवं प्रतिबन्ध को लाजिमी बनाती हैं। जिस अनुपात मे जीवन की व्यर्थता एव निराशा मे कमी होती है उसी अनुपात मे मन.स्थितियो को अधिक मूल्य प्राप्त होता है। रिचर्ड्स जीवन की विविधता पर बल देते हैं और ऐसे व्यवहारपटु लोगो की प्रशसा नही करते जिनकी तत्कथित सफलता उनकी अनेक भावनाओं के दमन पर आधारित होती है।

रिचर्ड्स किसी एक मनोव्यवस्था (सिस्टेमेटाइजेशन) को सर्वोत्कृष्ट नही बताते। उनका कथन है कि कई प्रकार की अच्छी मनोव्यवस्थाएँ सभव है और जो मनोव्यवस्था एक व्यक्ति के लिए अच्छी है वह दूसरे के लिए अच्छी नहीं

भी हो सकती हैं। किसी जहाजी, डॉक्टर, गणितज्ञ और कवि की मनोव्यवस्थाएँ एकसमान नहीं हो सकतीं। साथ ही, अलग-अलग परिस्थितियों में अनिवार्यतः मूल्य की विभिन्नता प्रकट होती है। प्रकृतवादी नैतिकता का तकाजा है कि परिस्थितियों की विभिन्नता के अनुरूप मूल्यों में परिवर्तन लाया जाय। इस तरह रिचर्ड्स मनोव्यवस्थाओं की विविधता एवं परिवर्तनशीलता के पक्ष में हैं। उन्होंने इसी कारण किसी विशिष्ट मनोव्यवस्था की संस्तुति न कर मनोव्यवस्था के मूल्य का सामान्य सिद्धान्त प्रतिष्ठित किया है जिसके अनुसार वह मनोव्यवस्था सर्वोत्तम है जिसमें आवेगों की कम-से-कम व्यर्थता, दमन और अतृप्ति रहे। पात्र एवं परिस्थिति के आधार पर मनोव्यवस्थाओं की विविधता को स्वीकार करते हुए भी रिचर्ड्स इसमें विश्वास रखते हैं कि बुद्धिमत्ता एवं सद्भावना के द्वारा कोई भी व्यक्ति सामान्यतः प्राप्तव्य मूल्यों से वंचित नहीं रह सकता। किन्तु इसके लिए नैतिक प्रश्नों में आचारशास्त्र की अनावश्यक बातों एवं अंधविश्वासों को दूर रखने की नितान्त आवश्यकता है। अभी तक ऐसा नहीं हो सका है।

रिचर्ड्स को आलोचना में नीतिविचार का सम्बन्धविच्छेद स्वीकार्य नहीं है। वे आलोचना को अनुपयोगी वाग्विलास नहीं मानते। जबतक समाज के सदस्य स्वतःश्रेष्ठ मूल्यों के अनुभव को पाने लायक नहीं हो जाते, तबतक समालोचक की अपेक्षा रहेगी ही। जबतक समाजरूपी गाड़ी का ड्राइवर पूर्णतः समर्थ नहीं हो जाता, तबतक पिछले डिब्बे में रहनेवाले गार्ड की आवश्यकता बनी रहेगी।[1] समालोचक ऐसा ही पिछले डिब्बे का गार्ड है। समाज में बुद्धिमत्ता एवं सद्भावना अभी भी अल्पमात्रा में ही पायी जाती हैं जिनकी मूल्यों की प्राप्ति के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसी अवस्था में अधिकांश लोगों को किसी सहायक की आवश्यकता है। रिचर्ड्स के अनुसार समीक्षक ऐसा ही सहायक है जो मन के स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी डाक्टर है। इसीलिए समीक्षक होने का अर्थ मूल्यों का निर्णायक होना है।[2]

समीक्षक का प्रधान उत्तरदायित्व मूल्यनिर्णय इसलिए रिचर्ड्स मानते हैं कि उनके अनुसार कलाएँ अनिवार्यतः अस्तित्व का मूल्यन हैं। इसीलिए वे मैथ्यू आर्नल्ड की इस टिप्पणी से पूर्णतः सहमत हैं कि कविता जीवन की आलोचना है। उनका कथन है कि कलाकार अपनी जिन अनुभूतियों को मूल्यवान् समझता है उन्हें अभिलिखित करके स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास करता है। उसकी ऐसी कुछ विशेषताएँ हैं जिनके कारण उसे ऐसी मूल्यवान् एवं अभिलेख्य अनुभूतियाँ अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक प्राप्त भी होती हैं। कलाकार मानसिक विकास के ऊर्द्ध्व बिन्दु को सूचित करता है। उसकी कृति को मूल्यवान् बनानेवाली अनुभूतियाँ आवेगों का ऐसा सामंजस्य प्रस्तुत करती हैं जैसा सामान्य व्यक्तियों में उपलब्ध

1. The rear-guard of society cannot be extricated until the vanguard has gone further.—PRINCIPLES P. 60.
2. To set up as a critic is to set up as a judge of values.—*Ibid*, P. 61.

नहीं होता । अन्य व्यक्तियों के मन में जो आवेग अव्यवस्थित, संघर्षरत एवं संभ्रम-पूर्ण रहते हैं वे कलाकार की कृतियों में व्यवस्थित अनुभूतियों के रूप में प्रकट होते हैं।

रिचर्ड्स मूल्यबोध के लिए आचारशास्त्र की अपेक्षा कला को अधिक विश्वसनीय प्रमाण मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि मूल्य क्या है और कौन-सी अनुभूतियाँ सर्वाधिक मूल्यवान् हैं, यह तबतक नहीं समझा जा सकता जबतक हम पाप-पुण्य या गुण-दोष जैसे स्थूल एवं सामान्य भावों के रूप में सोचने के अभ्यस्त रहेंगे। उनका मत है कि मूल्य की सत्ता हमारी अनुक्रियाओं और अभिवृत्तियों के सूक्ष्म विशेषों (माइन्यूट पर्टिकुलर्स ऑफ रेस्पॉन्स एंड ऐटिट्यूड) में है। किन्तु इस तथ्य को नहीं समझने के कारण लोग अबतक मूल्य का सम्बन्ध आचार के सामान्य नियमों और विधि-निषेधों के साथ जोड़ते आये हैं। इसीलिए कला की अपेक्षा आचारशास्त्र की ओर मूल्यबोध के लिए लोगों का अधिक झुकाव रहा है। किन्तु रिचर्ड्स की धारणा है कि आचारसंहिताओं के स्थूल विधि-निषेध मूल्य को उपलब्ध कराने में हमेशा असमर्थ प्रमाणित होते हैं चूँकि मूल्य को आचारशास्त्र के स्थूल नियमों में बाँध पाना कठिन है।

रिचर्ड्स के उपर्युक्त मन्तव्य को स्पष्ट करने के लिए किंचित् व्याख्या की अपेक्षा है। आचारसंहिताएँ पाप-पुण्य, अच्छे-बुरे के वर्गों में बाँटकर हमारे लिए आचरण के आदर्श निरूपित करती हैं। 'सत्यं वद', धर्मं चर', 'मा गृधः कस्यस्विद्धनम्' जैसे विधि-निषेध-वाक्यों का आधार यही 'अच्छे-बुरे' का वर्गविभाजन है। आचारशास्त्र आचारनियमों के मूलभूत सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा करता है एवं नीति-अनीति की तात्त्विक व्याख्या करता है। किन्तु जीवन में हम आचारसंहिताओं द्वारा अनुमोदित आचार के सामान्य नियमों का पालन करते समय अनेक प्रकार की कठिनताएँ अनुभूत करते हैं। ऐसी कुछ कठिनताओं की चर्चा महाभारत के यक्ष-युधिष्ठिर-संवाद में की गयी है जो इस प्रकार है—

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

अर्थात् श्रेय का मार्ग क्या है, इस विषय में तर्क अप्रतिष्ठ है, श्रुतियाँ विभिन्न हैं, कोई एक ऋषि ऐसा नहीं जिसके द्वारा निर्मित स्मृति सर्वाधिक प्रमाणभूत हो। वस्तुतः धर्म का तत्त्व रहस्यपूर्ण है। अतः यक्ष के 'क: पन्था:' का उत्तर युधिष्ठिर 'महाजनो येन गतः स पन्था:' कहकर देते हैं।

तर्क सन्देहमूलक होता है। उसके द्वारा किसी विषय का खण्डन जितना आसान है उतना उसकी स्थापना नहीं। चपल बुद्धि इसीलिए मार्गनिर्देश के समय जवाब दे देती है। श्रुति-स्मृतियों की प्रचोदनाएँ इतनी भिन्न और कभी-कभी इतनी विरोधिनी होती हैं कि सामान्य व्यक्तियों की बात छोड़ दी जाय, विज्ञों की मति भी विमूढ़ हो जाती है। तभी तो कहा गया है,

'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः'। जीवन की पेचीदी परिस्थितियों में कोई भी सामान्य नीतिवाक्य पर्याप्त निर्देश नहीं दे पाता। इसीलिये परस्परविरोधी नीतिवाक्यों का कथन मिलता है। मनु के नीतिवाक्य 'अहिंसासत्यमस्तेयशौचमिन्द्रियनिग्रह' में 'अहिंसा' को ले जिसे परमधर्म कहा गया है। क्या जीवन में पूर्णतः अहिंसा का पालन संभव है? न चाहते हुए भी हमारे द्वारा असंख्य, अदृश्य जीवों की हिंसा होती चलती है। दूसरे, सृष्टि में 'जीवो जीवस्य जीवनम्' का नियम देखा जाता है। तीसरे, आततायी की हिंसा को स्वयं मनु ने विहित बताया है। इसी तरह सत्यपालन में भी अनेक संकट के अवसर आ सकते हैं। जैसे, कोई चोर जब छाती पर सवार होकर संपत्ति का पता पूछे या किसी छिपे हुए निरपराध व्यक्ति को ढूंढनेवाला आततायी उसका पता पूछे तो सत्यकथन कहाँ तक उचित है, यह स्पष्ट है। महाभारत में भीष्म ऐसे अवसर पर असत्य-भाषण को ही उचित बताते हैं—'श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति विचारितम्'। अस्तेय (चोरी न करना) के सम्बन्ध में विश्वामित्र का उदाहरण पर्याप्त होगा जिनके चांडाल के घर में चुराकर मांस खाने की कथा प्रसिद्ध है। प्राणरक्षा के लिए चोरी को भी श्रेयस्कर माना गया है। प्राणरक्षा के पक्ष में अनेक वचन मिलते हैं। दूसरी तरफ महाभारत की विदुला की यह प्रसिद्ध उक्ति सामने है—'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम्'। इन्द्रियनिग्रह के सम्बन्ध में गीता की पंक्ति है—'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति'। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की संशयात्मक स्थिति में युधिष्ठिर का सूत्र भी काम नहीं देता। कारण, एक तो 'महाजन' किसे कहें? दूसरे, इतिहासपुराणप्रसिद्ध महाजनों के भी कुछ आचरण (जैसे, राम का छिपकर बालिवध, अग्निपरीक्षा के बावजूद सीता का निर्वासन, परशुराम का मातृवध आदि) विचित्र प्रतीत होते हैं। महापुरुषों के स्थूल आचरणों का अनुकरण न तो संभव है और न काम्य, क्योंकि उनके जीवन की परिस्थितियाँ सबके जीवन में समान रूप से आ नहीं सकतीं। ऐसी अवस्था में उनके स्थूल आचरणों की अपेक्षा सूक्ष्म, भावात्मक चारित्र्य के अनुकरण की सीख दी जा सकती है। पर वह चारित्र्य भी विभिन्न होता है और उसका विनियोग विशिष्ट परिस्थितियों में किस प्रकार हो, यह समस्या बनी रह जाती है।

निष्कर्ष यह कि नीति के सामान्य नियमों से जीवन में पूरी तरह काम नहीं चल पाता। इस तथ्य को रिचर्ड्स ने ही लक्षित किया हो, ऐसी बात नहीं। हमारे यहाँ भी अतिप्राचीन काल में ही सामान्य नीतिवाक्यों की अपर्याप्तता स्वीकार करते हुए 'सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य' जैसी सूक्तियाँ कही गयी थीं। भीष्म पितामह महाभारत में कहते हैं—

न हि सर्वहितः कश्चिदाचारः सम्प्रवर्तते।
तेनैवान्यः प्रभवति सोऽपरं बाधते पुनः॥

अर्थात् ऐसा कोई आचार नहीं मिलता जो सभी लोगों के लिये समान रूप से

द्वारा नहीं, कवियों के द्वारा प्रतिष्ठित होती है।

कला और नैतिकता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर चुकने के बाद रिचर्ड्स इस विषय में सम्बद्ध वास्तविक एवं सम्भावित भ्रान्तियों की चर्चा करते हैं। तल्सतॉय और शैली के नीतिवाद से उनके नीतिवाद का क्या पार्थक्य है, इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने 'सुखवाद' (हेडोनिज्म) से अपने नीतिवाद को भिन्न बताया है। इस भ्रान्तिनिराकरण की आवश्यकता उन्हें इसलिए महसूस हुई कि उन्होंने अनेक स्थलों पर तल्सतॉय एवं शैली को उद्धृत करते हुए उनके कुछ मन्तव्यों से जो सहमति प्रकट की है उसके कारण उनके नीतिवाद को तल्सतॉय एवं शैली के नीतिवाद से अभिन्न समझ लेने का भ्रम हो सकता है। दूसरे, 'आवेगों की सतुष्टि' के रूप में मूल्य की उन्होंने जो व्याख्या की उससे उनके नीतिसिद्धान्त को सुखवादी समझने की गलतफहमी हो सकती है।

तल्सतॉय ने 'ह्वाट इज आर्ट ?' नामक पुस्तक में कला के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किये हैं उनसे रिचर्ड्स अंशत: ही सहमत हैं। उक्त पुस्तक में तल्सतॉय ने कलानिर्माण में लगनेवाली शक्ति की प्रचुरता का उल्लेख करते हुए इस बात पर बल दिया है कि जिस क्रिया में मनुष्य की इतनी शक्ति खर्च होती है उसका सही स्वरूप समझना आवश्यक है। इसके पश्चात् वे 'कला' एवं 'सौन्दर्य' की विविध परिभाषाओं की परीक्षा करते हैं और निष्कर्ष देते हैं कि उन परिभाषाओं से कला के विषय में सही धारणा प्राप्त नहीं होती। परिभाषाओं की असमर्थता का कारण तल्सतॉय की दृष्टि में अंशत: कलालोचन में 'सौन्दर्य' जैसे शब्द का प्रयोग है और अंशत: कला के वर्तमान रूपों को कला का सही रूप सिद्ध करने का आलोचकों के द्वारा प्रयास। तल्सतॉय की इन बातों से रिचर्ड्स सहमत हैं। वे तल्सतॉय की निम्नलिखित कला-परिभाषा के सम्बन्ध में भी कोई आपत्ति नहीं करते— "पूर्वानुभूत सवेदना को व्यक्तिविशेष में जागरित करना तथा उस सवेदना को दूसरों तक इस प्रकार संचारित करना कि दूसरे भी वैसी ही सवेदना का अनुभव करें। ······इस प्रकार दूसरे व्यक्तियों में ये सवेदनाएँ सक्रमित हो जायें।"[3] इस परिभाषा में प्रयुक्त 'सवेदना' शब्द की जगह रिचर्ड्स 'अनुभूति' शब्द को रखना पसन्द करते हैं। इस अन्तर के अतिरिक्त वे तल्सतॉय की कला-परिभाषा को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं देखते। किन्तु वे उक्त परिभाषा को पर्याप्त एवं पूर्ण नहीं मानते। कला का धर्म अनुभूतियों का संक्रमण (इन्फेक्शन) है, इसे मानते हुए भी रिचर्ड्स इस बात पर बल देते हैं कि कला के मूल्यांकन के लिए कलागत अनुभूति की प्रकृति का विचार आवश्यक है।

कलागत वस्तु के मूल्यांकन की कसौटी तल्सतॉय की दृष्टि में युग की धार्मिक

3. What Is Art ? Section V

चेतना है।[4] यह धर्मचेतना तल्सतोय के अनुसार उच्च स्तर पर जीवन का अर्थ-बोध है और जीवन का सम्यक् अर्थबोध मानवमात्र का ईश्वर के साथ और आपस में भी एक-दूसरे के साथ ऐक्य की अनुभूति प्राप्त करना है। रिचर्ड्स तल्सतोय के इस मूल्यांकन-निकष को स्वीकार नहीं करते। उन्होंने तल्सतोय की कसौटी की अनुपयुक्तता के प्रमाण में इतना ही संकेतित किया है कि इस कसौटी को अपनाने का परिणाम यह हुआ कि है कि शेक्सपियर, गेटे तथा दान्ते जैसे कलाकार प्रथम श्रेणी के अधिकारी नहीं माने गये जबकि भावक-समुदाय उन्हें प्रथम श्रेणी का कलाकार मानता रहा है। इसके विपरीत, 'ऐडम बीड' और 'अकल टॉम्स केबिन' जैसी द्वितीय कोटि की रचनाओं को तल्सतोय ने प्रथम कोटि में रखा है। इस तरह कला के संक्रमण-पक्ष के विषय में तल्सतोय से सहमत होते हुए भी रिचर्ड्स उनके मूल्यांकन की कसौटी को स्वीकार नहीं करते हैं।

शैली ने कलागत नैतिकता के सम्बन्ध में जो उद्घोषणा की है उसमें भी तल्सतोय की तरह ही भ्रान्तियाँ हैं, यह रिचर्ड्स की मान्यता है। शैली के अनुसार, कला द्वारा मनुष्य के नैतिक उत्थान की प्रक्रिया को ठीक से नहीं समझने के कारण ही कला पर अनैतिकता का आरोप किया जाता है। शैली का कथन है कि आचारशास्त्र कविता द्वारा प्रदत्त नैतिक तत्त्वों का क्रम स्थापित करता है एवं उनके आधार पर नागरिक एवं पारिवारिक जीवन के आदर्शों की स्थापना करता है। उनके अनुसार मनुष्य की बुराइयों का कारण उसके पास अच्छे सिद्धान्तों का अभाव नहीं है। कविता का कार्य आचारशास्त्र की अपेक्षा अधिक पवित्र एवं उदात्त ढंग से होता है। कविता मन को जाग्रत करती है एवं उसे विस्तृति प्रदान करती है। *अपनी भावावेशमयी शैली में शेली आगे कहते हैं कि* "जो-कुछ हमारे रागों को सबल एवं पवित्र बनाता है, हमारी कल्पना को विस्तृत करता है, हमारे ज्ञान को शक्ति प्रदान करता है, वह हमारे लिए उपयोगी है। यह कल्पना करना कठिन है कि यदि दान्ते, पेट्रार्क, बोकाचिओ, चॉसर, शेक्सपियर, काल्डरेन, लार्ड बेकन या मिल्टन में से कोई न हुआ होता तो संसार की नैतिक स्थिति क्या होती।"

शैली के उपर्युक्त मन्तव्य को रिचर्ड्स सही नहीं मानते। उनका कहना है कि शेक्सपियर या दान्ते के अभाव में भी दुनिया वैसी ही होती जैसी अब है। समुद्र से थोड़ा पानी निकाल लेने पर भी उसमें कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता। किन्तु, इसका यह अर्थ नहीं कि समुद्र उस पानी से नहीं बना है। अतः, रिचर्ड्स का कथन है कि यह मानना ही पड़ेगा कि मानव-मस्तिष्क के विकास में या मानवीय संवेदनाओं के क्षेत्रविस्तार में कविता का महत्त्वपूर्ण हाथ है।

रिचर्ड्स की मान्यता है कि संकीर्ण मूल्यदृष्टि या नैतिकता की अनिसरल

4 And so there always has been, and is, a religious perception in every society. And it is by the standard of this religious perception that the feelings transmitted by art have always been appraised.—*Ibid*, P. 232.

धारणा उपर्युक्त गलतफहमियों के लिए जिम्मेवार हैं। कविता के उद्देश्य को लेकर 'मनोरंजन' एवं 'उपदेश' के परस्परविरोधी पक्षों का जो चिरपुरातन विवाद चला आ रहा है उसे भी रिचर्ड्स अनावश्यक मानते हैं। स्थूल नैतिक दृष्टि से देखनेवाला ही 'मनोरंजन' या 'उपदेश' जैसे लक्ष्यों को ही सब-कुछ मान लेगा। दुःखान्त नाटक के महत्त्व का अंकन करते समय ये स्थूल लक्ष्य काम नहीं दे पाते। ट्रैजिडी में न तो हम मनोरंजन चाहते है और न उपदेश ही। रिचर्ड्स के अनुसार, ट्रैजिडी में निबद्ध अनुभूति इतनी पूर्ण, वैविध्ययुक्त तथा परस्परविरुद्ध आवेगों (जैसे, करुणा एवं आतंक या हर्ष और दुःख) का सूक्ष्म संतुलन प्रस्तुत करनेवाली होती है कि उसकी व्याख्या स्थूल भावों को व्यक्त करनेवाले शब्दों के रूप में नहीं की जा सकती। ट्रैजिडी वह काव्यरूप है जिसमें मन सर्वाधिक स्पष्टता एवं मुक्तता से मानवीय परिस्थितियों का चिन्तन कर पाता है, उनकी समस्याओं और प्रश्नों को उद्घाटित कर पाता है और जीवन की विविध संभावनाओं को स्पष्टतः देख पाता है। इसीलिए उसमें 'आनन्द' या 'उपदेश' को ढूँढना रिचर्ड्स की दृष्टि में व्यर्थ प्रयास है। 'सुखवादी' धारणाओं के आधार पर ट्रैजिडी का मूल्यांकन संभव नहीं। 'आवेगों की संतुष्टि' के रूप में रिचर्ड्स ने मूल्य की जो व्याख्या की है वह 'आनन्दवाद' या 'सुखवाद' से भिन्न है। 'आवेगों की संतुष्टि' का अर्थ 'आनन्द' नहीं है। कविता, रिचर्ड्स के अनुसार, मिठाई की पिटारी नहीं है।

'कविता, कविता के लिए' का सिद्धान्त—कला और नैतिकता के सम्बन्ध के प्रकरण में डॉ० ब्रैडले के 'कविता, कविता के लिए' सिद्धान्त की परीक्षा भी रिचर्ड्स के लिए आवश्यक प्रतीत हुई चूँकि उसके खण्डन के बिना कला और नीति के अनिवार्य सम्बन्ध की धारणा प्रतिष्ठित नहीं की जा सकती थी। 'कलावाद' से प्रभावित एवं प्रेरित उक्त सिद्धान्त कला का नैतिकता से कोई आवश्यक सम्बन्ध स्वीकार नहीं करता। डॉ० ब्रैडले ने अपनी 'ऑक्सफोर्ड लेक्चर्स ऑन पोयट्री' नामक पुस्तक में 'कविता, कविता के लिए' के सिद्धान्त की व्याख्या इस प्रकार की है : काव्यानुभूति अपना उद्देश्य आप है, अपने कारण ही मूल्यवान् है और इसका एक आन्तरिक मूल्य है; यही आन्तरिक मूल्य काव्यानुभूति का काव्यात्मक मूल्य है। कविता का, धर्म या संस्कृति के साधन के रूप में, एक बाह्य मूल्य भी हो सकता है, चूँकि कविता उपदेश देती है या मनोरागों को कोमल बनाती है या किसी अच्छे उद्देश्य को प्रचारित करती है। कविता का बाह्य उद्देश्य इस दृष्टि से भी है कि वह कवि को यश, द्रव्य या शान्त अन्तःकरण प्रदान करती है। डॉ० ब्रैडले कविता का इन कारणों से भी मूल्य स्वीकार करते हैं। पर, उनका कथन है कि उक्त बाह्य मूल्य कविता के न तो काव्यात्मक मूल्य हैं और न काव्यात्मक मूल्य के निर्णायक ही हैं। उनके अनुसार, कविता का काव्यात्मक मूल्य तो संतुष्टिदायक कल्पनात्मक अनुभूति के रूप में है और यह मूल्य

कविता का पूर्णतः भीतर से मूल्यांकन करने पर ही उद्घाटित होता है। बाह्य मूल्यों का विचार तो कविता के काव्यात्मक मूल्य को कम करने का कारण बनता है चूंकि यह कविता को उसके प्रकृत वातावरण से निकालकर बाहर ले जाता है। डॉ० ब्रैडले के अनुसार, कविता की प्रकृति वास्तविक जगत् का न तो अंग है और न उसका अनुकरण ही अपितु उसका अपना एक स्वतंत्र, पूर्ण और स्वायत्तता-पूर्ण जगत् है।

रिचर्ड्स की आलोचना—रिचर्ड्स ने ब्रैडले की उपर्युक्त मान्यताओं को चार मुद्दों में बाँटते हुए उनमें अपनी असहमति प्रकट की है। वे इस प्रकार हैं—

(१) रिचर्ड्स का कथन है कि ब्रैडले ने जिन्हें बाह्य मूल्य (अल्टीरियर वैल्यूज) कहा है (जैसे-धर्म, संस्कृति, उपदेश, मनोरागों को कोमल बनाना, सदुद्देश्य का प्रचार और कवि द्वारा यश, द्रव्य तथा शान्त अन्तःकरण की प्राप्ति) वे सभी एक स्तर के न होकर विभिन्न स्तरों के हैं। ब्रैडले इनमें से किसी को भी कविता के काव्यात्मक मूल्य का निर्णायक मानने में असमर्थ हैं। पर रिचर्ड्स के अनुसार उपर्युक्त बाह्य मूल्यों में से कुछ—जैसे; धर्म, संस्कृति, उपदेश, मनोरागों को कोमल बनाना तथा सदुद्देश्य का प्रचार—काव्यानुभूति के काव्यात्मक मूल्य के निर्णय में प्रत्यक्षतः सम्बद्ध हो सकते हैं अन्यथा 'काव्यात्मक' शब्द निरर्थक हो जायगा। दूसरी ओर यश, द्रव्य या शान्त अन्तःकरण की प्राप्ति जैसे लक्ष्य काव्यात्मक मूल्य के विवेचन के लिए स्पष्टतः अनावश्यक हैं।

(२) काव्यानुभूति का मूल्यांकन पूर्णतः भीतर से करने की बात भ्रमात्मक है। अपवादस्वरूप ही कभी कविता का मूल्यांकन उसके भीतर से होता है। रिचर्ड्स के अनुसार, नियमतः हमें कविता के मूल्यांकन के लिए काव्यानुभूति से बाहर आना पड़ता है और हम स्मृति द्वारा या मन में अवशिष्ट (रेजीडुअल) प्रभावों द्वारा, जिन्हें हम मूल्य का अच्छा संकेतक (इण्डिसेज) मानना सीखते हैं, कविता का मूल्यांकन करते हैं। कविता का मूल्यांकन करते समय हम मानव-जीवन के विशाल ढाँचे में इसके स्थान की उपेक्षा नहीं कर सकते। कविता का मूल्य इस तथ्य पर भी निर्भर करता है। इसी कारण कविता के मानव-जीवन में स्थान का और इससे सम्बद्ध अन्य बाह्य मूल्यों का लेखा-जोखा किये बिना इसका सम्यक् मूल्यांकन हो ही नहीं सकता।

(३) रिचर्ड्स डॉ० ब्रैडले की यह बात भी समीचीन नहीं मानते कि बाह्य मूल्यों का विचार कविता के काव्यात्मक मूल्य को घटा देता है। रिचर्ड्स के अनुसार, सब-कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि बाह्य मूल्य कैसे हैं और कविता किस प्रकार की है। कुछ ऐसी कविताएँ होती हैं जिनमें बाह्य मूल्यों को स्वीकार करना वस्तुतः उनके काव्यात्मक मूल्य के अवमूल्यन का कारण हो सकता है। किन्तु कुछ दूसरे प्रकार की कविताएँ भी हैं जिनका मूल्य उनसे सम्बद्ध बाह्य मूल्यों पर निर्भर करता है। जॉन बनयान, दान्ते तथा बायरन की रचनाएँ

इसी प्रकार की हैं। हिन्दी में 'रामचरितमानस' और 'कामायनी' भी ऐसी ही हैं जबकि बच्चन की आरम्भिक रचनाएँ प्रथम प्रकार की कविताओं के उदाहरण हैं। उक्त दूसरे प्रकार की रचनाओं के निर्माण के समय कवि का ही ध्यान बाह्य मूल्यों की ओर था अतः पाठक के लिए भी उनका विचार आवश्यक होता है।

(४) रिचर्ड्स प्रधानतः ब्रैडले की इस चौथी बात से अपनी असहमति प्रकट करते हैं कि वास्तविक जगत् से कविता के जगत् का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह बात रिचर्ड्स सर्वाधिक आपत्तिपूर्ण मानते हैं चूँकि इससे कविता और जीवन का सम्बन्धविच्छेद स्वीकार करना पड़ता है। ब्रैडले ने भी कविता और जीवन के प्रच्छन्न सम्बन्ध की बात स्वीकार की है। रिचर्ड्स के अनुसार, यह प्रच्छन्न सम्बन्ध ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके मत में कविता के जगत् का शेष जगत् से किसी भी अर्थ में अलग अस्तित्व नहीं है और इसके कोई विशिष्ट नियम या अन्यजातीय विशेषताएँ नहीं हैं। यह वैसी ही अनुभूतियों से बना है जैसी दूसरे मार्गों से हमें प्राप्त होती हैं। यह अवश्य है कि काव्यानुभूति अधिक उच्च एवं सूक्ष्म ढंग से व्यवस्थित होती है तथा इसमें भावसंचार की विशेष योग्यता भी होती है। इसके अलावा, कविता की अनुभूति का शेष अनुभूतियों से एक कृत्रिम विच्छेद बनाये रखना इसके सम्यक् आस्वाद के लिए आवश्यक होता है। लेकिन, रिचर्ड्स के अनुसार, यह विच्छेद असमान वस्तुओं का विच्छेद नहीं है अपितु एक ही क्रिया की विभिन्न व्यवस्थाओं का विच्छेद है।

रिचर्ड्स का कथन है कि स्वयं डॉ० ब्रैडले ने अपनी व्यावहारिक आलोचनाओं में अपने सिद्धान्त का अनुसरण नहीं किया है। रिचर्ड्स के अनुसार, यदि डॉ० ब्रैडले के सिद्धान्त का ईमानदारी से अनुसरण किया जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि हम किसी कविता के पाठक को सौन्दर्यभोगी, नैतिक, व्यावहारिक, राजनैतिक आदि व्यक्तियों के रूप में बाँटकर देखें। किन्तु ऐसा संभव नहीं है। किसी भी सच्ची अनुभूति में ये सभी पक्ष अनिवार्यतः प्रवेश पाते ही हैं। इस तरह का विच्छेद स्वीकार करने का परिणाम आलोचनात्मक निर्णय की पूर्णता के लिए घातक सिद्ध होता है। रिचर्ड्स पूछते हैं कि क्या यह संभव है कि शेली का 'प्रोमीथियस अनबाउण्ड' पढ़ें और यह मानें कि मनुष्य की पूर्णता अवांछनीय आदर्श है या फाँसी देनेवाले जल्लाद उत्तम व्यक्ति होते हैं? हिन्दी से उदाहरण लें तो क्या यह संभव है कि 'गोदान' पढ़ें और जमींदारों तथा महाजनों के शोषण का समर्थन करें? 'कुरुक्षेत्र' पढ़ें और पूँजीवाद का तथा स्वत्व छीने जाने पर भी चुप बैठे रहने की कायरता का समर्थन करें? रिचर्ड्स का मत है कि किसी भी महान् कविता को ठीक से और पूर्ण रूप से पढ़ने के लिए यह आवश्यक है कि पाठक में नितान्त वैयक्तिक तत्त्व को छोड़कर जो-कुछ है उसका बेरोक-टोक प्रवेश हो। पाठक के लिए अपनी आँखों पर किसी प्रकार की पट्टी रखना नितान्त गलत है तथा अपने व्यक्तित्व के किसी भी अंग को भाग लेने देने से

रोक रखना अनुचित है। यदि पाठक किसी कल्पित सौन्दर्यतत्त्व के अतिरिक्त बाकी सब-कुछ का परित्याग करने का विलक्षण रुख अपनाता है तो रिचर्ड्स उसे हेनरी जेम्स के 'ऑस्मोण्ड' का उसके टावर में साथ देनेवाला तथा ब्लेक के राजाओं और पुरोहितों के ऊँचे महलों और मीनारों का साथी मानते हैं। यथार्थ से दूर ऐसा पाठक कविता का सम्यक् आस्वादन एवं अध्ययन कर पाने में असमर्थ होता है

चतुर्थ अध्याय

कविता का विश्लेषण

प्रथम अध्याय में रिचर्ड्स के वैज्ञानिक दृष्टिकोण की चर्चा की जा चुकी है। जिस तरह कोई रासायनिक किसी वस्तु के विविध तत्त्वों का विश्लेषण करता है उसी तरह वैज्ञानिक दृष्टिकोणवाले समीक्षक रिचर्ड्स ने 'प्रिंसिपुल्स' के सोलहवें अध्याय में काव्यानुभूति के संघटक तत्वों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। काव्यानुभूति के निर्माण में जिन मानसिक घटनाओं का योग रहता है उनकी रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए रिचर्ड्स ने काव्यानुभूति के विविध तत्वों के आपेक्षिक महत्व पर भी प्रकाश डाला है।

ऐसे विश्लेषण की आवश्यकता और उपादेयता के पक्ष में रिचर्ड्स ने अनेक युक्तियाँ दी हैं। उनका मत है कि किसी भी अच्छे समीक्षक के लिए तीन योग्यताएँ आवश्यक हैं। प्रथमत, जिस कलाकृति का वह मूल्यांकन करना चाहता है उसके लिए अपेक्षित मनःस्थिति को अनुभूत करने की पर्याप्त कुशलता उसमें चाहिए। द्वितीयत, उसमें विभिन्न अनुभूतियों की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में अन्तर देख पाने की क्षमता होनी चाहिए। अतत, उसे मूल्यों का प्रौढ़ निर्णायक होना चाहिए। ये योग्यताएँ समीक्षक में तभी आ सकती हैं जब काव्यानुभूति के मनोवैज्ञानिक स्वरूप की उसे अच्छी जानकारी प्राप्त हो। इतना ही नहीं, काव्यानुभूति के विविध तत्त्वों एव उनके आपेक्षिक महत्त्व का ज्ञान भी उसे होना चाहिए अन्यथा उसका मूल्यांकन असन्तुलित एवं असम्यक् हो जायगा। दो उदाहरणों से रिचर्ड्स ने इन बातों का समर्थन किया है: (१) इस बात से सभी सहमत होंगे कि स्विन्बर्न की किसी कविता से हार्डी की कोई कविता भिन्न प्रतीत होती है। दोनों कवियों की शब्दयोजना एवं वर्णन का ढंग भिन्न है इसीलिए दोनों की कविताओं के प्रति पाठक के दृष्टिकोण में भी भिन्नता रहेगी ही। इन दोनों कवियों के द्वारा प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक साधन अलग-अलग हैं। हिन्दी से उदाहरण लेना हो तो मैथिलीशरण गुप्त एवं अज्ञेय को लिया जा सकता है। यदि समीक्षक को इसकी जानकारी न हो कि इन कवियों के द्वारा उपयुक्त साधनों की भिन्नता किस मानी में है और उनके काव्य के प्रति उपयुक्त मनःस्थिति और दृष्टिकोण क्या हैं तो वह उनकी कविता का न तो सम्यक् रूप में आस्वाद ही कर सकेगा और न उचित मूल्यांकन ही। अतः काव्यानुभूति का निर्माण करनेवाले साधनों का सूक्ष्म अन्तर जानना समीक्षक के लिए आवश्यक है। इसके लिए उसे

काव्यानुभूति में निहित मानसिक प्रक्रियाओं का ज्ञान चाहिए। (२) किसी कविता में निबद्ध अनुभूति के दो पक्ष रिचर्ड्स स्वीकार करते हैं। अनुभूति के कुछ अंग ऐसे होते हैं जिन्हें 'साधन' कह सकते हैं। ये साधन काव्यानुभूति के 'साध्यपक्ष' को सम्भव बनाते हैं जिसपर (साध्यपक्ष पर) कविता का मूल्य निर्भर करता है। यह निर्विवाद है कि अच्छे आलोचक भी किसी कविता को अनेक बार पढ़ने पर अपनी अनुभूतियों में व्यापक अन्तर पाते हैं। इसी तरह, किसी कविता के विभिन्न पाठकों की अनुभूतियों में भी शायद ही पूर्ण समानता रहती है। ये अन्तर लाजिमी हैं। किन्तु, अनुभूतियों के इन अन्तरों के भी कई रूप होते हैं। कुछ अन्तर अन्यों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। यदि अनुभूति के साध्यपक्ष में, जिसपर कविता का मूल्य निर्भर करता है, अन्तर न हो तो साधनपक्ष के अन्तरों के कारण कविता की अनुभूतियों में विशेष महत्त्व का अन्तर नहीं आता। किन्तु साध्यपक्ष का अन्तर काव्यानुभूति के लिए घातक होता है। कारण, उससे उसके मूल्य के विषय में पर्याप्त मतान्तर हो जाता है। अतः काव्यानुभूति के विविध तत्त्वों का आपेक्षिक महत्त्व समझना समीक्षक के लिए आवश्यक होता है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए रिचर्ड्स ने काव्यानुभूति का विश्लेषण किया है।

काव्यानुभूति के विश्लेषण के लिए रिचर्ड्स ने एक चित्र भी दिया है जो 'प्रिंसिपुल्स' के एक सौ सोलहवें पृष्ठ पर अंकित है। इस चित्र के विषय में रिचर्ड्स ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह तन्त्रिका-तन्त्र का चित्र नहीं है। चित्र का स्थानिक सम्बन्ध (स्पेंशियल रिलेशन्स) चित्रित वस्तु के स्थानिक सम्बन्ध का सूचक नहीं है। यानी, चित्र में जो वस्तुएँ जिस स्थान पर अंकित की गयी हैं उनका उसी क्रम में वास्तविक स्थानगत सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार, चित्र के द्वारा सामयिक सम्बन्धों को भी रिचर्ड्स ने सूचित नहीं किया है। मतलब यह कि चित्र में जिस क्रम से मानसिक घटनाओं को अंकित किया गया है वह क्रम उनके समय का नहीं है।

रिचर्ड्स के अनुसार, किसी कविता को पढ़ने पर प्रतिक्रियाओं की ऐसी धारा प्रवाहित होती है जिसमें छह स्पष्ट घटनाओं को देखा जा सकता है। ये मानसिक घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) मुद्रित अक्षरों की चाक्षुष संवेदनाएँ,
(२) चाक्षुष संवेदनाओं से घनिष्ठरूपेण सम्बद्ध बिम्ब,
(३) अपेक्षाकृत मुक्त बिम्ब,
(४) विविध वस्तुओं का 'अभ्युद्बोधन' या उनका चिन्तन,
(५) संवेग (इमोशन्स),
(६) रागात्मक-संकल्पात्मक अभिवृत्तियाँ (एफेक्टिव-वॉलिशनल ऐट्टीट्यूड्स)।

इनकी रिचर्ड्स ने जिस रूप में व्याख्या की है वह नीचे प्रस्तुत है—

कविता से समान बिम्बबोध होता है। रिचर्ड्स इस बात से सहमत नहीं है। उनका कथन है कि विभिन्न व्यक्तियों में न केवल बिम्बो के प्रकार की दृष्टि से अपितु विशिष्ट बिम्बों के उत्पादन की दृष्टि से भी भिन्नता रहती है। किसी कविता के प्रति पाठकों की जो सम्पूर्ण प्रतिक्रियाएँ होती हैं उनमें मुक बिम्ब वह बिन्दु है जहाँ दो पाठक प्रायः भिन्नता रखते हैं और यह भिन्नता नगण्य है। रिचर्ड्स कविता का मूल्य उसकी बिम्बात्मकता पर आधृत नहीं मानते इसीलिए पाठकों के बिम्बबोध की भिन्नता को वे नगण्य मानते हैं।

प्रश्न है कि यदि चाक्षुष बिम्बों का मूल्य उनकी चित्रात्मकता में नहीं है तो फिर कहाँ है? यह तो नहीं माना जा सकता कि बिम्ब का महत्त्व बतानेवाले समीक्षकों ने निरर्थक बातें की हैं। रिचर्ड्स ने इसका स्पष्टीकरण किया है। उनका कथन है कि यदि हम अपना ध्यान बिम्बो की संवेदी विशेषताओं से हटाकर उनकी प्रभावोत्पादकता की मौलिक विशेषताओं पर केन्द्रित करें तो बात स्पष्ट हो जायगी। वे पहले ही कह चुके हैं कि संवेदी विशेषताओं की दृष्टि से भिन्नता रखनेवाले बिम्ब समान प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। चूँकि बिम्ब बिना संवेदनाओं से समानता रखे भी उन संवेदनाओं का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं जहाँ तक विचारों को प्रेरित करने एवं संवेगों को उभारने के रूप में उनका प्रभाव दिखाई पड़ता है, अतः बिम्बों की अनुकरणात्मक योग्यता का अन्तर गौण हो जाता है। जिन व्यक्तियों में सजीव, स्पष्ट एवं चटकीले मूर्तिविधान की क्षमता होती है उनके लिए यह मानना बिलकुल स्वाभाविक है कि विचार और भावना पर बिम्बों की सजीवता और स्पष्टता के द्वारा ही प्रभाव पड़ता है। जो समीक्षक बिम्बों की सजीवता आदि की प्रशंसा करते हैं वे वस्तुतः विचार और भावना पर बिम्बों के प्रभाव के कारण ही प्रशंसा करते हैं। रिचर्ड्स का अभिप्राय यह है कि असल में विचार और भावना पर बिम्ब के प्रभाव के कारण बिम्ब की प्रशंसा की जाती है पर लोग बिम्बों की संवेदी विशेषताओं—सजीवता, स्पष्टता आदि—को बिम्ब के महत्त्व का सूचक मान लेते हैं। रिचर्ड्स के अनुसार, बिम्ब का महत्त्व चित्रात्मकता की दृष्टि से नहीं, विचार और भावना को प्रभावित करने की दृष्टि से है। उनका मत है कि चित्र के रूप में बिम्ब का मूल्यांकन बेमानी है और चित्रकारों तथा उन अन्य व्यक्तियों के द्वारा, जिनकी जगत् में चाक्षुष अभिरुचि अधिक होती है, कविता में चित्रों की खोज नहीं की जाती अपितु निरीक्षण के क्षणों की या संवेग के उद्दीपनों की खोज होती है।

(४) आवेग तथा अभ्युद्देशन (इम्पल्सेज ऐंड रेफरेंसेज)— उपर्युक्त तीन मानसिक घटनाओं को रिचर्ड्स ने काव्यानुभूति में मूल्यनिर्णायक नहीं माना है। आवेग, अभ्युद्देश, संवेग तथा अभिवृत्तियों को वे कविता का मूल्यनिर्णायक तत्त्व मानते हैं। कविता के पढ़ने पर आवेगों की एक धारा प्रवाहित होती है जो अक्षरों की चाक्षुष संवेदना में प्रारंभ होती है। ये आवेग चाक्षुष संवेदनाओं पर ही

नहीं, उनमें सम्बद्ध बिम्बों पर भी निर्भर हैं।

रिचर्ड्स के अनुसार, ये आवेग अनुभूति के बाने है और मन का पूर्ववर्ती व्यवस्थित ढाँचा ताना है। ताने-बाने का यह रूपक इसलिए अपूर्ण है कि ताने-बाने यहाँ स्वतंत्र नहीं है। आवेग कहाँ सचरित हैं और कैसे विकसित होते हैं, यह मन की अवस्था पर निर्भर करता है। मन की अवस्था पहले से सक्रिय होने-वाले आवेगों पर निर्भर करती है। आवेग, उनकी दिशा, शक्ति तथा उनका एक-दूसरे को प्रभावित करना किसी भी अनुभूति की अनिवार्य और मौलिक वस्तुएँ हैं। शेष वस्तुएँ, जैसे बौद्धिक या संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ, आवेगों की क्रियाशीलता पर ही निर्भर हैं।

कविता के पढ़ने से आवेगों की सक्रियता किस तरह आती है इसकी व्याख्या करते हुए रिचर्ड्स कहते हैं कि आँखों की राह से क्रमशः आता हुआ उद्दीपनों का प्रतनु प्रवाह मन की नाजुक स्थिरता में विराम पाती हुई प्रवृत्तियों के व्यवस्था-क्रम में मिलता है। ये उद्दीपन किसी दूसरी चीज की सहायता के बिना भी पूर्वस्थित प्रवृत्तियों के व्यवस्थाक्रम को प्रभावित करने के लिए पर्याप्त समर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ, किसी शब्द को बिना सुने या मनसा उच्चरित किये केवल देख लेने भर से उसका अर्थग्रहण हो जा सकता है। किन्तु, इस उद्दीपन का प्रभाव सम्बद्ध बिम्बों से प्राप्त नये उद्दीपनों को सहायता पाकर और भी बढ़ जाता है तथा इन्हीं के माध्यम से संवेगात्मक प्रभाव उत्पन्न किये जाते हैं। जैसे-जैसे उत्तेजना आगे बढ़ती चलती है प्रत्येक नयी उद्दीप्त व्यवस्था से उसका पोषण होता चलता है। इस तरह, यह समस्या सुलझ जाती है कि कैसे कागज पर का एक धब्बा भी मन की सपूर्ण शक्तियों को कार्यान्वित कर देता है।

अभ्युद्देशन एकमात्र मानसिक व्यापार है जो दृश्य शब्दों के साथ उसी तरह घनिष्ठरूपेण सम्बद्ध होते हैं जिस तरह उनसे सम्बद्ध बिम्ब। इन्हें 'विचार' (थॉट) कहा जाता है। किसी शब्द को देखते ही साधारणतः वह 'विचार' सामने आ जाता है जिसका वह शब्द वाचक होता है। इस 'विचार' को प्रायः उस शब्द का 'अर्थ' या 'शाब्दिक अर्थ' कहते हैं। 'विचार' में वस्तु का अभ्युद्देशन या संकेत अनिवार्यतः होता है। 'विचार' और 'वस्तु' के सम्बन्ध का क्या अर्थ है, यह सम्बन्ध कैसे घटित होता है आदि प्रश्नों पर विचार करना रिचर्ड्स इसलिए आवश्यक मानते हैं कि इन विषयों की स्पष्ट धारणा नहीं रहने पर कविता के सत्य, संवेग और बुद्धि का द्वन्द्व आदि समालोचना के गंभीर प्रश्नों के विषय में सम्यक् दृष्टि-कोण नहीं आ पाता। इसीलिए रिचर्ड्स ने वस्तु और उसके विचार की प्रक्रिया का विवेचन किया है।

रिचर्ड्स के अनुसार, वस्तु और विचार का सम्बन्ध कभी-कभी प्रत्यक्ष होता है, जैसे घड़ी की टिक्-टिक् ध्वनि 'घड़ी टिक्-टिक् कर रही है' इस विचार का प्रत्यक्ष कारण होती है। ऐसी स्थिति में 'वस्तु' 'विचार' का कारण होती है। पर, हमेशा

'विचार' की वस्तु सामने नहीं रहती। जैसे, कागज पर छपे अक्षरों से कुछ वस्तुओं का 'विचार' मन में आता है। शब्दप्रयोग के सीखने की प्रक्रिया के विश्लेषण से ऐसी स्थितियों में शब्द और अर्थ (वस्तु) का सम्बन्ध क्या है, यह समझा जा सकता है। अनेक अवसरों पर वस्तु और शब्द का प्रत्यक्ष सम्बन्ध देखते-देखते हम यह सीख जाते हैं कि यह शब्द अमुक वस्तु का वाचक है। तब, वस्तु के अभाव में भी उसके वाचक शब्द को सुनकर वस्तु का 'विचार' मन में आ जाता है। इस तरह एक खास प्रकार की वस्तु के लिए शब्द 'संकेत' (साइन) बन जाता है। यहाँ विचार और वस्तु का सम्बन्ध अप्रत्यक्ष रहता है।

रिचर्ड्स ऐसे अप्रत्यक्ष सम्बन्ध में 'विचार' को 'सामान्य' मानते हैं जबकि वस्तु के प्रत्यक्ष रहने पर उसके 'विचार' को 'विशिष्ट'। भारतीय काव्यशास्त्र के एक प्रमुख प्रश्न—"संकेतग्रह 'जाति' का होता है या 'व्यक्ति' का"—के सम्बन्ध में रिचर्ड्स का उत्तर स्पष्ट है : वस्तु के उपस्थित रहने पर 'व्यक्ति' का, न रहने पर "उस वस्तु के प्रकार में से किसी एक का"। यह 'वस्तु' के 'जातित्व' का विचार है, पर 'विशिष्टता' से रहित नहीं। इस प्रकार, रिचर्ड्स संकेतग्रह के इस प्रश्न पर नैयायिकों की विचारधारा से साम्य रखते हैं। उनका कथन है कि वस्तु के प्रत्यक्ष न रहने पर अनेक साधनों से हम यह सोच लेते हैं कि उस वस्तु के ढंग की ही कोई एक चीज होगी और इस प्रकार हमारे 'वस्तुविचार' की विशिष्टता की भावना सन्तुष्ट होती है। काव्यगत सत्य के प्रश्न पर संकेतग्रह की इन प्रक्रियाओं के आधार पर रिचर्ड्स अपना मत देते हैं। उनका कथन है कि वस्तु का विचार जहाँ वस्तु के प्रत्यक्ष रहने पर आता है वहाँ विचार सच ही होता है जबकि वस्तु और विचार के अप्रत्यक्ष सम्बन्ध की स्थिति में विचार के सच और झूठ दोनों होने की संभावना रहती है। उनका कथन है कि देश और काल से सम्बद्ध करके हम 'विचार' को विशिष्ट बनाते हैं। देशकाल से सम्बद्ध न होने पर 'विचार' या वस्तु का अभ्युद्देशन (रेफरेंस) सामान्य हो जाता है। अभ्युद्देशनों की यह स्वाभाविक सामान्यता और अस्पष्टता कविता के सत्य के अर्थ को समझने की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कविता पढ़ते समय शब्द का अर्थ सबसे पहले प्राप्त होता है किन्तु अन्य विचार कम महत्त्वपूर्ण नहीं होते। अर्थ से प्राप्त अन्य विचार अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं। ये अन्य विचार है अर्थ से उत्पन्न व्याख्या या अर्थापत्ति (इण्टरप्रिटेशन) तथा अनुमानों का जाल। शब्दार्थप्राप्ति के बाद इन अर्थापत्तियों या व्याख्याओं की आवश्यकता की दृष्टि से विभिन्न कविताओं में मौलिक अन्तर होता है। स्विनबर्न की कविता में प्राय. शब्द के अर्थ को पा लेना पर्याप्त होता है और अगली व्याख्याओं की अपेक्षा नहीं होती है जबकि हार्डी की कविता का प्रभाव शब्द और अर्थ की प्राप्ति हो जाने पर ही पूरा नहीं हो पाता। इस तरह, काव्यानुभूति के इन विविध तत्त्वों (ध्वनि, अर्थ एवं परवर्ती व्याख्या) के आपेक्षिक महत्त्व की दृष्टि

से कविताओं में अन्तर मिलता है। जो लोग यह मानते हैं कि अनुभूतियों के इन विविध तत्त्वों का एक-सा सम्बन्ध ही हर प्रकार की कविताओं के लिए उचित एवं आवश्यक है, वे रिचर्ड्स की दृष्टि में गलत हैं। चूँकि ये तत्त्व तो साधन-स्वरूप हैं और इनका कोई भी सम्बन्ध कविता में रह सकता है और कविता के मूल्य पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता है। रिचर्ड्स का मत है कि कविता में ध्वनि एवं अर्थ का कोई उचित रूप उसी तरह विहित नहीं माना जा सकता जिस तरह सभी जानवरों के लिए कोई उचित आकृति विहित नहीं है। इसीलिए मिल्टन की कविता पर हार्डी की कविता की दृष्टि से विचार करते हुए उसकी आलोचना करना मिल्टन को दोषपूर्ण हार्डी मानना है, जो वैसा ही बेतुका है जैसा किसी कुत्ते को दोषपूर्ण बिल्ली कहना।

काव्यानुभूति के उपर्युक्त तत्त्व विभिन्न काव्यरूपों में विभिन्नरूपेण महत्त्व प्राप्त कर सकते हैं। जैसे, गीतिकाव्य में सम्बद्ध बिम्ब को नहीं छोड़ा जा सकता। उसे पढ़ते समय हम ऐसे बिम्बों की विशेषताओं की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। जिन कविताओं में संवेग की हलचल रहती है उनका लयात्मक और छन्दोबद्ध होना लाजिमी है। नाटक में अर्थ के बाद की व्याख्याओं और अनुमानों को छोड़ा नहीं जा सकता।

तथापि रिचर्ड्स यह नहीं मानते कि महान् कविता के लिए गंभीर विचार या उत्कृष्ट ध्वनियोजना या सजीव बिम्बसृष्टि जैसी कोई चीज अनिवार्य है। उनके अनुसार, इस तरह का कोई सामान्य सिद्धान्त स्थिर करना अज्ञानमूलक सिद्धान्तवादिता का परिचायक है। कविता उक्त तत्त्वों में से किसी एक या अनेक के अभाव में भी महान् हो सकती है, ऐसा उनका मत है।

'विचार' की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया की व्याख्या करते हुए रिचर्ड्स कहते हैं कि मुद्रित शब्दों की चाक्षुष संवेदनाओं से आगत आवेग मस्तिष्क की स्नायु: प्रणाली तक पहुँचते हैं; जहाँ उत्पन्न होनेवाले प्रभाव केवल वर्तमान उद्दीपनों पर ही निर्भर नहीं करते, अतीत के अवसरों पर जिन अन्य उद्दीपनों से उनका संयोग हुआ था उनपर भी वे निर्भर करते हैं। ये प्रभाव 'विचार' कहलाते हैं और वे समूह के रूप में अन्य विचारों के संकेत बन जाते हैं।

(५-६) संवेग तथा अभिवृत्ति (इमोशन्स ऐंड ऐटिट्यूड्स) — भावना या संवेग प्रकृति को ग्रहण करने का कोई नितान्त विलक्षण प्रकार नहीं है। भावनाएँ सामान्यतया वस्तु के लिए संकेत या चिह्न (साइन) होती हैं। जो लोग वस्तुओं का सहज ज्ञान प्राप्त करते हैं या उनका अनुभव करते हैं तथा जो बुद्धि-पूर्वक उनका बोध प्राप्त करते हैं उनमें संकेत (साइन) के प्रयोक्ता और प्रतीक के प्रयोक्ता (यूज़र ऑफ सिम्बॉल) का ही अन्तर है। यानी, प्रथम वर्ग के व्यक्ति संकेतों का प्रयोग करते हैं और द्वितीय वर्ग के व्यक्ति प्रतीकों का। संकेत और प्रतीक दोनों ही ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा हमारी वर्तमान अनुक्रियाओं को सहायता अतीत अनु-

पूर्तियाँ करती हैं। आसानी से नियन्त्रित एवं दूसरों तक प्रेषित होने के कारण प्रतीक लाभदायक स्थिति में होते हैं। पर, उनसे घाटा यह है कि जब शब्द प्रतीकात्मक या वैज्ञानिक ढग से प्रयुक्त होते हैं और आलंकारिक या संवेगात्मक ढग से नहीं होते तो वे सामान्य परिस्थितियों की थोड़ी-सी विशेषताओं की ओर ही हमारे विचारों को प्रेरित कर पाते हैं। भावनाएँ अभ्युद्दिष्ट करने का सूक्ष्म ढग होती हैं। तथापि धारणाओं और विचारों में कोई अन्तर्निहित प्रतिद्वन्द्विता नहीं है। केवल विनियोग की दृष्टि से उनमें अन्तर होता है।

संवेग मुख्यतः अभिवृत्तियों के संकेत या चिह्न होते हैं इसीलिए कलासिद्धान्त में उनका महत्त्व है। चूँकि किसी भी अनुभूति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग मन में जगायी गयी अभिवृत्तियाँ हैं। अभिवृत्तियों का मूल्य उनके रूप और संग्रथन पर निर्भर करता है। तीव्रता, आनन्द, उत्फुल्लता आदि के कारण चेतन अनुभूति मूल्यवान् नहीं होती, आवेगों की व्यवस्था ही उसे मूल्य प्रदान करती है। रिचर्ड्स के अनुसार, अत्यधिक आह्लाद या आनन्द के क्षण भी मूल्यहीन हो सकते हैं। चेतना की किसी खास क्षण की विशेषता उसे उत्पन्न करनेवाले आवेगों की उत्तमता की परिचायक नहीं होती। अनुभूति के बाद मन में किसी विशिष्ट प्रकार के व्यवहार के लिए जो तत्परता या सन्नद्धता होती है उसी में उसका विश्वसनीय प्रमाण मिलता है। रिचर्ड्स का कथन है कि कला से उत्पन्न क्षणस्थायी चेतना के गुणों पर अधिक बल देना समीक्षाजगत् की बहुत भारी भूल है। कलाकृति से उत्पन्न परवर्ती प्रभाव या मन के ढाँचे में लाये गये स्थायी सुधारों को अबतक उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता रहा है। किसी भी अनुभूति के बाद व्यक्ति वही नहीं रह जाता जो वह पहले था। उसकी सम्भावनाएँ कुछ मात्रा में परिवर्तित हो जाती हैं। मानवीय संवेदनाओं के क्षेत्र को व्यापक बनानेवाले सभी साधनों में कला सर्वाधिक शक्तिशाली साधन है। कला ही वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य एक-दूसरे से सर्वाधिक मात्रा में सहयोग कर पाता है और कलागत अनुभूति में ही मन सबसे ज्यादा आसानी से और कम-से-कम बाधा पाकर अपने को व्यवस्थित कर पाता है। निष्कर्ष यह कि काव्यानुभूति में अभिवृत्तियों के निर्माण का महत्त्व सबसे ज्यादा है और इसी कारण उनपर कविता का मूल्य सर्वाधिक निर्भर करता है।

सम्यक् आस्वाद के लिए बहुत ज्यादा है। गद्य में व्यंग्य (आयरनी) एक ऐसा ही साधन है पर उसका प्रभाव सीमित होता है। रिचर्ड्स के मत में छन्द सर्वाधिक कठिन और सर्वाधिक सूक्ष्म कथनों के लिए करीब-करीब अनिवार्य साधन-सा है।[4]

---

4 Metre for the most difficult and most delicate utterances is the all but inevitable means.—*Ibid*, P. 146.

संप्रेषण (कम्युनिकेशन)

कहा जा चुका है कि आलोचना के दो आधारभूत स्तम्भों मे से एक रिचर्ड्स के अनुसार मूल्यविवेचन है और दूसरा सप्रेषण का विश्लेषण। काव्यानुभूति के मूल्य का स्वरूप स्पष्ट कर देने से ही आलोचनाकार्य की इतिश्री नही हो जाती। आलोचक से इस बात की भी अपेक्षा रहती है कि वह इसका भी स्पष्टीकरण करे कि कविता के रूप मे निबद्ध कवि की मूल्यवान् अनभूति पाठको के मन मे किस प्रकार समान मूल्यवान् मनःस्थिति उत्पन्न करने मे समर्थ होती है। सप्रेषण-व्यापार का विश्लेषण इसीलिए किसी आलोचनासिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण अग है।

संप्रेषण का महत्त्व—'प्रिंसिपुल्स' के चतुर्थ अध्याय मे रिचर्ड्स ने सप्रेषण का महत्त्व स्पष्ट करते हुए कलाकार की सप्रेषण के प्रति सजगता पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। उनका कहना है कि हमारे अनुभवो के बहुलाश का स्वरूप इस आधार पर निर्मित होता है कि हम सामाजिक जीव हैं और बाल्यावस्था से ही संप्रेषण मे अभ्यस्त रहे हैं। यह तो बिलकुल जाहिर है कि हम अपने सोचने और अनुभव करने का ढंग अपने माँ-बाप तथा अन्य गुरुजनो से प्राप्त करते हैं; किन्तु सप्रेषण का प्रभाव इससे भी अधिक गहरा है। हमारे मन के ढाँचे का निर्माण ही वस्तुतः बहुत-कुछ विगत हजारो वर्षो के विकास की अवधि में निरन्तर सप्रेषण-प्रक्रिया मे हमारे लगे रहने के कारण हुआ है। मन की अधिकाश विशेषताएँ उसके संप्रेषण का साधन बनने के कारण उद्भूत हुई हैं। यह आवश्यक है कि दूसरों तक प्रेषित होने के पहले ही हमारे अनुभवो का निर्माण हो जाता है पर यह भी सच है कि हमारे अनुभवो का रूप बहुत-कुछ इस आधार पर बनता है कि उन्हे दूसरो तक प्रेषित होना रहता है।

यो तो मन का यह उपेक्षित और अल्पाधीत पक्ष, जिसे 'संप्रेषण' का नाम दिया जाता है, मनोविश्लेषको तथा गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों की अनेक समस्याओं को सुलझाने की कुंजी प्रदान कर सकता है, पर, रिचर्ड्स के अनुसार, इसका सर्वाधिक उपयोग कलाओं के प्रसंग मे है चूंकि कलाएँ सप्रेषणक्रिया का श्रेष्ठ रूप है। कलालोचन के बहुत सारे प्रश्नों पर 'सप्रेषण' की दृष्टि से विचार करने पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ, कला के वर्ण्य की अपेक्षा उसके रूपपक्ष को क्यों प्राथमिकता दो जाती है या निर्वैयक्तिकता और तटस्थता की इतनी प्रशसा क्यों की गयी है, यह संप्रेषण के तथ्य पर ध्यान देने से समझ मे आ जाता है।

कलाकार का संप्रेषण के प्रति दृष्टिकोण—संप्रेषण के महत्व पर उपर्युक्त विचार व्यक्त करने के पश्चात् रिचर्ड्स कलाकार की संप्रेषण के प्रति सजगता के विषय मे अपने विचार व्यक्त करते है। इस विषय पर उनकी महत्वपूर्ण टिप्पणी यह है कि कलाकार अपनी कला मे संप्रेषण की योग्यता लाने के लिए सजग और सतर्क होकर अलग से कोई चेष्टा नही करता। संप्रेषण का गुण उसकी कला मे अचेतन प्रक्रिया से आप-से-आप आ जाता है।

रिचर्ड्स के अनुसार यद्यपि कलाकार को मुख्य रूप से संप्रेषक मानते हुए उसपर विचार करना सर्वाधिक लाभप्रद है पर स्वयं कलाकार साधारणत. अपने को इस रूप मे शायद ही देखता हो। अपनी कृतियो की निर्माणप्रक्रिया में वह संप्रेषण की दृष्टि से अलग से कोई प्रयत्न शायद ही करता हो। वह तो प्राय अपनी रचना को 'स्वान्त सुखाय' मानता है। उसकी रचना को दूसरे भी पढ़ेंगे और उससे अनुभूति प्राप्त करेंगे, यह उसके लिए आकस्मिक और गौण विषय रहता है।

कला का सही रूप क्या है, इसके विषय मे प्रत्येक कलाकार के मन मे कुछ धारणाएँ रहती हैं। वह अपनी इन धारणाओ के अनुकूल अपनी कला को सँवारता है। उसकी कला के प्रति अन्य व्यक्तियो की या विशिष्ट पाठको की क्या प्रतिक्रिया होगी, इस बात को वह प्राय रचना करते समय मन से अलग ही रखता है। जो कलाकार अपनी कला मे संप्रेषण की योग्यता लाने के लिए अलग से ध्यान देता है वह प्राय निम्न स्तर पर स्खलित हो जाता है। रिचर्ड्स शेक्सपियर को इस नियम का अपवाद मानते हैं पर इसकी कोई तर्कसम्मत व्याख्या नही देते।

रिचर्ड्स के मत मे कलाकार द्वारा संप्रेषण के प्रति की जानेवाली उपेक्षा से कला के भावमचार का महत्व किसी तरह कम नहीं होता। चूँकि हमारी चेतन क्रियाएँ ही सब-कुछ नहीं हैं, अचेतन क्रियाओं का भी महत्व कला-निर्माण की प्रक्रिया मे कम नही है। कलाकार की यह प्रवृत्ति कि उसकी कला 'सही कला' का रूप ग्रहण करे, आप-से-आप उसकी कला मे संप्रेषण की क्षमता ला देती है। जब हम यह देखते हैं कि कलाकार निर्वैयक्तिकता के लिए निरन्तर संघर्षशील रहता है, अपनी कृति को नितान्त वैयक्तिक अभिरुचियों से बचाने के लिए प्रयत्नशील रहता है और नितान्त वैयक्तिक कलाकृतियाँ, जो कलाकार को तो सन्तुष्ट करती हैं पर अन्य लोगों के लिए दुर्बोध बनी रहती हैं, अल्प मात्रा मे प्रसूत होती हैं तो यह मानना पड़ता है कि कलाकार द्वारा अपनी कला को सही रूप देने की प्रक्रिया मे ही उसमें संप्रेषण का गुण आप-से-आप आ जाता है। कलाकार की कलागत औचित्यसम्बन्धी धारणाएँ यदि तुष्ट होती हैं और उसे अपनी कला से सन्तोष होता है तो उसकी कला मे संप्रेषण का सामर्थ्य आप-से-आप आ जाता है। रिचर्ड्स का विश्वास है कि कलाकार का आत्मतोष और उसकी कला मे संप्रेषण की क्षमता होना साथ-साथ इसलिए घटित होते हैं कि

वह साधारण (नॉर्मल) मन स्थिति का व्यक्ति होता है। उसकी साधारणता के कारण ही उसके आत्मसतोष के साथ पाठक के सतोष का सयोग घटित होता है। सप्रेषण की दृष्टि से सजग प्रयास की अपेक्षा अचेतन प्रक्रियाओ का महत्त्व अधिक है। इसीलिए रिचर्ड्स कलाकार को अपनी कृति के मुख्य उद्देश्य (संप्रेषण) के प्रति प्रतीयमान उपेक्षा के लिए स्वतत्र मानते हैं।

'प्रिसिपुल्स' के इक्कीसवे अध्याय मे रिचर्ड्स ने सप्रेषण के अर्थ, स्वरूप एव कोटि पर प्रकाश डालते हुए उसकी सफलता के लिए आवश्यक विषयो का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम वे 'सप्रेषण' के अर्थ के सम्बन्ध मे प्रचलित भ्रमो का निराकरण करते हैं। उनका कथन है कि अन्य विषयो की तरह सप्रेषण-व्यापार पर भी रहस्यमय ढग से सोचा गया है। सप्रेषण के तीन प्रचलित गलत अर्थों का रिचर्ड्स ने उल्लेख किया है। वे इस प्रकार हैं—

(१) कुछ लोग सप्रेषण का अर्थ अनुभूतियो का वास्तविक स्थानान्तरण या सक्रमण समझते है। जैसे एक व्यक्ति की जेब का पैसा दूसरे की जेब मे चला जाता है और इस प्रकार पैसे का हस्तान्तरण होता है उसी तरह सप्रेषण का मतलब अनुभूतियो का स्थानान्तरण समझा जाता है।

(२) ब्लेक-जैसे रहस्यवादी सप्रेषण की व्याख्या इस रूप मे करते है शक्ति या सत्ता के रूप मे एक ही समान मन स्थिति कभी एक मन को, कभी दूसरे को और कभी एक साथ अनेक मनों को व्याप्त कर लेती है।

(३) कुछ अन्य लोगो ने सप्रेषण का आधार मन की व्यापक सत्ता को माना है। ऐसे लोगो का कहना है कि मनुष्य के मन का क्षेत्र व्यापक है, एक मन के अंग दूसरे तक पहुँचकर उसका अग बन जाते है, इस तरह मनो का परकायप्रवेश होता है और उनका अन्तर्मिश्रण होता है। ऐसे लोगो के अनुसार अलग-अलग व्यक्तियो के अलग-अलग मन की सत्ता मानना भ्रम है। वास्तविकता यह है कि एक ही मन की सत्ता है और उसी के विविध पक्ष अलग-अलग रूपो मे प्रतिभासित होते है।

उक्त मान्यताओ मे रिचर्ड्स अतिप्राकृतिक एव अनुभवातिक्रमणवादी (ट्रान्सेडेंटल) सिद्धान्तो की स्वीकृति पाते हैं। वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण इस प्रकार की व्याख्याओ को स्वीकार नही कर सकता। हमारे यहाँ रसनिष्पत्ति एव साधारणीकरण की व्याख्या मे जिस प्रकार एकात्मवाद को आधार बनाया गया है, सप्रेषण-सम्बन्धी उपर्युक्त मान्यताओं मे मन के धरातल पर उसी ऐकात्म्य की स्वीकृति है। रिचर्ड्स ऐसी व्याख्याओ को भ्रान्त मानते हैं।

रिचर्ड्स की संप्रेषण-सम्बन्धी व्याख्या— रिचर्ड्स ने सप्रेषण की सीधी व्याख्या यह कहकर दी है कि कुछ खास स्थितियों मे अलग-अलग मनो को प्राय. समान अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। सप्रेषण की व्याख्या मे रिचर्ड्स मन की अलग-अलग सत्ता को आधारभूत तथ्य मानकर चले हैं। उनका कथन है कि मनुष्य

के मन तो अलग-अलग हैं ही, उनकी अनुभूतियाँ भी अलग-अलग होती हैं। संप्रेषण की प्रक्रिया वहाँ घटित होती है जहाँ अलग-अलग व्यक्तियों की अनुभूतियों में प्राय समानता हो। रिचर्ड्स के अनुसार, संप्रेषण तब घटित होता है जब एक मन अपने परिवेश के प्रति इस प्रकार से प्रतिक्रिया व्यक्त करता है कि दूसरा मन उससे प्रभावित हो जाता है और उस दूसरे मन में ऐसी अनुभूति उत्पन्न होती है जो प्रथम मन की अनुभूति के समान और अंशत उसके कारण उत्पन्न होती है।

संप्रेषण एक संकुल प्रक्रिया है और कम-से-कम दो दृष्टियों से इसकी अलग-अलग कोटियाँ संभव हैं। एक स्थिति वह है जिसमें दो अनुभूतियाँ कम या बेशी एक-दूसरे के समान हों और दूसरी वह जिसमें दूसरी अनुभूति कम या बेशी पहली के ऊपर आधृत हो। मान लिया जाय कि 'क' और 'ख' दो मित्र हैं जो किसी रास्ते पर चल रहे हैं और मुख्य न्यायाधीश को गुजरते देखते हैं। 'क' 'ख' को टोकते हुए कहता है—वह देखो, मुख्य न्यायाधीश जा रहे हैं। यहाँ 'ख' का अनुभव आकस्मिक रूप से ही 'क' के अनुभव पर आधृत है। किन्तु यदि 'ख' 'क' के साथ न होता और 'क' ने अकेले मुख्य न्यायाधीश को देखा होता और बाद में 'ख' के समक्ष उनका वर्णन किये होता तो 'ख' का अनुभव बहुत-कुछ तो अतीत में उसके द्वारा देखे गये विशिष्ट न्यायाधीशों की स्मृति पर निर्भर होता और शेष के लिए उसे 'क' के वर्णन पर निर्भर रहना पड़ता। ऐसी स्थिति में यदि 'क' के पास असाधारण वर्णनकौशल न हो और 'ख' के पास असाधारण ग्राहिका शक्ति न हो तो दोनों के अनुभव मोटे तौर पर ही एक-दूसरे से मेल खायेंगे। ऐसा भी संभव है कि दोनों के अनुभवों में कोई समानता न हो और इस बात की जानकारी दोनों में से किसी को न हो।

जहाँ वक्ता के पास विशिष्ट प्रकार की संप्रेषण-योग्यता न हो और श्रोता के पास भी वैसी ही विशिष्ट ग्राहिका शक्ति न हो वहाँ संप्रेषण के लिए सामान्यत दोनों में दीर्घकालीन एवं वैविध्यपूर्ण परिचय, घनिष्ठ सम्बन्ध और प्राय समान जीवन-परिस्थितियाँ अपेक्षित हैं जिससे दोनों के अनुभवभाण्डार में बहुत-कुछ समानता हो।

रिचर्ड्स की उपर्युक्त स्थापना को स्पष्ट करने के लिए हम कुछ उदाहरण देते हैं। कहते हैं कि फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के दिनों में जब राजा के महल के सामने भूखड़ भीड़ ने रोटी की माँग करते हुए उग्र प्रदर्शन किया था तो राजा ने मंत्री से पूछा था—आखिर ये चाहते क्या हैं? मंत्री के इस जवाब पर कि ये रोटी चाहते हैं, राजा ने तुरत उसे आदेश दिया था—तो इन्हें मक्खन के साथ रोटी दे दो। राजा सोच भी नहीं सकता था कि रोटी-जैसी मामूली चीज के लिए कोई बगावत पर उतारू हो सकता है। दूसरा उदाहरण एक भारतीय गरीब नौकर का है जो इंगलैंड के सम्राट् की समृद्धि की चर्चा मालिक से सुनने

पर उनके सुख की कल्पना इस रूप में करता है— मालिक, इंगलैंड के राजा तो दिन भर में जितनी बार चाहते होंगे भर-पेट चूड़े का लड्डू खाते होंगे! जिस *साम्राज्य में कभी सूर्य नहीं डूबता था* (उन्हीं दिनों का यह वार्त्तालाप भी है) उसके सिंहासन पर समासीन व्यक्ति के परमसुख की यही चरम कल्पना भारत के किसी गरीब नौकर के दिमाग में आ सकती है।

हिन्दी के एक कहानीलेखक की कहानी में हमारे एक समृद्ध मित्र ने इसलिए अस्वाभाविकता देखी कि उस कहानी में एक मजदूर के कुएँ में कूदकर इसलिए जान दे देने की कथा थी चूँकि उसकी बिलकुल नयी, उजली 'विलायती' गंजी (मिल की गंजी) को झगड़े में उसके साथी ने फाड़ डाला था। उस मजदूर ने बड़ी मुश्किल से कुछ पैसे बचाकर पहली बार जीवन में मैली और फटी धोती के ऊपर नयी और उजली गंजी पहनने का सौभाग्य पाया था। इस तथ्य की जानकारी कहानी से पाकर भी हमारे मित्र को कहानी में यदि *अविश्वसनीयता* मिली तो इसका कारण एकमात्र यही है कि जीवन-सम्बन्धी परिस्थितियों की घोर विषमता अनुभवों में भी घोर विषमता ला देती है। ऐसी स्थिति में संप्रेषण के लिए असाधारण वर्णनकौशल ही नहीं, असाधारण ग्राहिकाशक्ति भी चाहिए। हमें संकोच के साथ कहना पड़ता है कि हमारे उक्त मित्र में इसका भी अभाव था।

रिचर्ड्स ने संप्रेषण की सफलता के लिए जिन बातों का उल्लेख किया है और जिन्हें ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है उनकी सत्ता रहने पर *भी हर स्थिति में संप्रेषण सफल नहीं हो पाता।* रिचर्ड्स *का कहना है कि* वक्ता-श्रोता के समान अनुभवस्रोतों के बावजूद कठिन स्थितियों में संप्रेषण की सफलता इसपर निर्भर करती है कि व्यतीत अनुभवों की समानताओं का किस मात्रा में उपयोग किया गया है। यानी, यदि पिछले समान अनुभवों का उपयोग किया जाता है तो संप्रेषण सफल होगा, यदि नहीं किया जाता है तो उसमें बाधा होगी।

ऊपर संप्रेषण की कठिन स्थिति का उल्लेख किया गया है। इस '*कठिन स्थिति' का तात्पर्य क्या है, उसे भी रिचर्ड्स ने स्पष्ट किया है। उनके अनुसार,* संप्रेषण की कठिन स्थिति वह है जिसमें एक तरफ वक्ता को श्रोता के अनुभव के कारणों को प्रस्तुत करना एवं नियंत्रित करना पड़ता हो और दूसरी तरफ श्रोता को अपने विगत अनावश्यक अनुभवों को वर्तमान अनुभव में प्रविष्ट नहीं होने देने के लिए संघर्ष करना पड़ता हो। मतलब यह कि संप्रेषण वहाँ कठिन होता है जहाँ वक्ता को ही श्रोता के अनुभव के लिए आवश्यक उपादान जुटाने पड़ते हैं, श्रोता के पास अपनी ओर से ये उपादान नहीं रहते तथा श्रोता के कुछ ऐसे विगत अनुभव उसकी वर्तमान *अनभूति को बाधित करते रहते हैं जो वर्तमान अनुभूति के लिए नितान्त अनपेक्षित* होते हैं। सरल वस्तु के प्रति संप्रेषण आसान होता है जबकि जटिल वस्तुओं में यह आसानी नहीं होती। कोई प्राकृतिक दृश्य दो व्यक्तियों के सामने है। उसमें चुनाव

के मन तो अलग-अलग है ही, उनकी अनुभूतियाँ भी अलग-अलग होती हैं। संप्रेषण की प्रक्रिया वहाँ घटित होती है जहाँ अलग-अलग व्यक्तियों की अनुभूतियों में प्रायः समानता हो। रिचर्ड्स के अनुसार, सप्रेषण तब घटित होता है जब एक मन अपने परिवेश के प्रति इस प्रकार से प्रतिक्रिया व्यक्त करता है कि दूसरा मन उससे प्रभावित हो जाता है और उस दूसरे मन में ऐसी अनुभूति उत्पन्न होती है जो प्रथम मन की अनुभूति के समान और अंशतः उसके कारण उत्पन्न होती है।

सप्रेषण एक सकुल प्रक्रिया है और कम-से-कम दो दृष्टियों से इसकी अलग-अलग कोटियाँ सभव हैं। एक स्थिति वह है जिसमें दो अनुभूतियाँ कम या बेशी एक-दूसरे के समान हों और दूसरी वह जिसमें दूसरी अनुभूति कम या बेशी पहली के ऊपर आधृत हो। मान लिया जाय कि 'क' और 'ख' दो मित्र हैं जो किसी रास्ते पर चल रहे हैं और मुख्य न्यायाधीश को गुजरते देखते हैं। 'क' 'ख' को टोकते हुए कहता है— वह देखो, मुख्य न्यायाधीश जा रहे हैं। यहाँ 'ख' का अनुभव आकस्मिक रूप से ही 'क' के अनुभव पर आधृत है। किन्तु यदि 'ख' 'क' के साथ न होता और 'क' ने अकेले मुख्य न्यायाधीश को देखा होता और बाद में 'ख' के समक्ष उनका वर्णन किये होता तो 'ख' का अनुभव बहुत-कुछ तो अतीत में उसके द्वारा देखे गये विशिष्ट न्यायाधीशों की स्मृति पर निर्भर होता और शेष के लिए उसे 'क' के वर्णन पर निर्भर रहना पड़ता। ऐसी स्थिति में यदि 'क' के पास असाधारण वर्णनकौशल न हो और 'ख' के पास असाधारण ग्राहिका शक्ति न हो तो दोनों के अनुभव मोटे तौर पर ही एक-दूसरे से मेल खायेंगे। ऐसा भी सभव है कि दोनों के अनुभवों में कोई समानता न हो और इस बात की जानकारी दोनों में से किसी को न हो।

जहाँ वक्ता के पास विशिष्ट प्रकार की सप्रेषण-योग्यता न हो और श्रोता के पास भी वैसी ही विशिष्ट ग्राहिका शक्ति न हो वहाँ सप्रेषण के लिए सामान्यतः दोनों में दीर्घकालीन एवं वैविध्यपूर्ण परिचय, घनिष्ठ सम्बन्ध और प्रायः समान जीवन-परिस्थितियाँ अपेक्षित है जिससे दोनों के अनुभवभाण्डार में बहुत-कुछ समानता हो।

रिचर्ड्स की उपर्युक्त स्थापना को स्पष्ट करने के लिए हम कुछ उदाहरण देते हैं। कहते हैं कि फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के दिनों में जब राजा के महल के सामने भुक्खड़ भीड़ ने रोटी की माँग करते हुए उग्र प्रदर्शन किया था तो राजा ने मंत्री से पूछा था— आखिर ये चाहते क्या है? मत्री के इस जवाब पर कि ये रोटी चाहते हैं, राजा ने तुरत उसे आदेश दिया था— तो इन्हें मक्खन के साथ रोटी दे दो। राजा सोच भी नहीं सकता था कि रोटी-जैसी मामूली चीज के लिए कोई बगावत पर उतारू हो सकता है। दूसरा उदाहरण एक भारतीय गरीब नौकर का है जो इंग्लैंड के सम्राट् की समृद्धि की चर्चा मालिक से सुनने

पर उनके सुख की कल्पना इस रूप में करता है— मालिक, इंगलैंड के राजा तो *दिन भर मे जितनी बार चाहते होगे भर-पेट चूडे का लड्डू खाते होगे! जिस साम्राज्य मे कभी सूर्य नही डूबता था (उन्ही दिनों का यह वार्त्तालाप भी है)* उसके सिहासन पर समासीन व्यक्ति के परमसुख की यही चरम कल्पना भारत के किसी गरीब नौकर के दिमाग मे आ सकती है।

हिन्दी के एक कहानीलेखक की कहानी मे हमारे एक समृद्ध मित्र ने इसलिए अस्वाभाविकता देखी कि उस कहानी मे एक मजदूर के कुएँ मे कूदकर इसलिए जान दे देने की *कथा थी चूँकि उसकी बिलकुल नयी, उजली 'विलायती' गजी (मिल* की गजी) को झगडे मे उसके साथी ने फाड डाला था। उस मजदूर ने बडी मुश्किल से कुछ पैसे बचाकर पहली बार जीवन मे मैली और फटी धोती के ऊपर नयी और उजली गजी पहनने का *सौभाग्य पाया था*। इस *तथ्य की जानकारी* कहानी से पाकर भी हमारे मित्र को कहानी मे यदि अविश्वसनीयता मिली तो इसका कारण एकमात्र यही है कि जीवन-सम्बन्धी परिस्थितियो की घोर विषमता अनुभवों मे भी घोर विषमता ला देती है। ऐसी स्थिति मे संप्रेषण के लिए असाधारण वर्णनकौशल ही नही, असाधारण ग्राहिकाशक्ति भी चाहिए। हमें सकोच के साथ कहना पडता है कि हमारे उक्त मित्र मे इसका भी अभाव था।

रिचर्ड्स ने संप्रेषण की सफलता के लिए जिन बातों का उल्लेख किया है और जिन्हे ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट किया गया है उनकी सत्ता रहने पर भी हर स्थिति मे संप्रेषण सफल नही हो पाता। रिचर्ड्स का कहना है कि वक्ता-श्रोता के समान अनुभवस्रोतो के बावजूद कठिन स्थितियो मे संप्रेषण की सफलता इसपर निर्भर करती है कि व्यतीत अनुभवो की समानताओ का *किस मात्रा मे उपयोग किया गया है*। *यानी*, यदि पिछले समान अनुभवों का उपयोग किया जाता है तो संप्रेषण सफल होगा, यदि नही किया जाता है तो उसमे *बाधा होगी*।

ऊपर संप्रेषण की कठिन स्थिति का उल्लेख किया गया है। इस 'कठिन स्थिति' का तात्पर्य क्या है, उसे भी रिचर्ड्स ने स्पष्ट किया है। उनके अनुसार, संप्रेषण की कठिन स्थिति वह है जिसमें एक तरफ वक्ता को श्रोता के अनुभव के कारणो को प्रस्तुत करना एव नियत्रित करना पडता हो और दूसरी तरफ श्रोता को अपने विगत अनावश्यक अनुभवों को वर्तमान अनुभव मे प्रविष्ट नही होने देने के लिए सघर्ष करना पडता हो। मतलब यह कि संप्रेषण वहाँ कठिन होता है जहाँ वक्ता को ही श्रोता के अनुभव के लिए आवश्यक उपादान जुटाने पडते हैं, श्रोता के पास अपनी ओर से ये उपादान नही रहते तथा श्रोता के कुछ ऐसे विगत अनुभव उसकी वर्तमान अनुभूति को बाधित करते रहते हैं जो वर्तमान अनुभूति के लिए नितान्त अनपेक्षित होते हैं। सरल वस्तु के प्रति संप्रेषण आसान होता है जबकि जटिल वस्तुओ मे यह आसानी नही होती। कोई प्राकृतिक दृश्य दो व्यक्तियों के सामने है। उसमे चुनाव

के लिए अनेक विकल्प हैं। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति की जो प्रतिक्रिया होगी, वह दूसरे में समानरूपेण सचरित होने में कठिनता प्राप्त करेगी; कारण, प्रत्येक की अलग-अलग अभिरुचियाँ अधिक प्रबल हो सकती हैं। एक व्यक्ति झरने के कल-निनाद में तल्लीन हो सकता है और दूसरा काली चट्टानों को देखकर इस तथ्य पर चिन्तन करने लग जा सकता है कि प्रकृति के दुर्निवार परिवर्तनचक्र के नीचे कितनी समृद्ध सभ्यताएँ विवश भाव से दबकर सो जाती हैं। कभी-कभी कम जटिल वस्तुओं के प्रति जो प्रतिक्रिया होती है उसे इस विश्वास के साथ कोई दूसरे तक सप्रेषित कर दे सकता है कि उस दूसरे की भी वैसी ही प्रतिक्रिया होगी। जैसे, मंदिर के ओसारे पर सोये किसी मुस्टड व्यक्ति को दो व्यक्ति देखें और इस दृश्य की सारी विशेषताएँ स्पष्ट होते हुए भी दोनो की प्रतिक्रियाओ मे घोर भिन्नता हो। जैसे, एक व्यक्ति इस बात पर गुस्से का अनुभव करे कि इस पवित्र भूमि पर कोई इस प्रकार निर्द्वन्द्व खर्राटे ले रहा है जबकि दूसरा इस दृश्य में अपना मनोरंजन करने लगे।

सप्रेषण की कठिन स्थितियों में प्रेषण के साधन भी अनिवार्यतः जटिल होते हैं। रिचर्ड्स के अनुसार, किसी शब्द का प्रभाव सहवर्ती शब्दों के कारण अलग-अलग हो जाता है। अपने-आपमें अस्पष्ट वस्तु भी उपयुक्त प्रकरण में स्पष्ट और निश्चित हो जाती है। इसीलिए एक तत्त्व का प्रभाव दूसरे तत्त्वो पर निर्भर करता है। संप्रेषण-क्रिया में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। कठिन और गहरे सप्रेषण की स्थितियों की दृष्टि से पद्य को गद्य की अपेक्षा श्रेष्ठता प्राप्त है चूँकि पद्य, गद्य की अपेक्षा, संप्रेषण का अधिक जटिल साधन है।

रिचर्ड्स सप्रेषण की कठिनता का अर्थ वर्ण्य की कठिनता नहीं मानते यद्यपि दोनों की प्राय सहस्थिति देखी जाती है। कभी-कभी अत्यधिक कठिन विषय को भी बडी आसानी से सप्रेषित किया जा सकता है। इसी तरह रिचर्ड्स सप्रेषण की कठिनाई और गहराई का अनिवार्य सम्बन्ध नहीं स्वीकार करते। सप्रेषण की गहराई का अर्थ यह है कि जिन अनुक्रियाओं की अपेक्षा रहती है वे पूर्णरूपेण प्रतिफलित हों। जहाँ केवल अभ्युद्देशन किया जाता है वहाँ सप्रेषण का गहरा रूप उपलब्ध नहीं होता। पर, जहाँ अभिवृत्तियो का निर्माण उद्देश्य होता है वहाँ सप्रेषण गहरा रग-रूप प्राप्त करता है। सूक्ष्म और विश्लेषणात्मक गद्य की सफलता शुष्कता पर निर्भर करती है, इसीलिए इसमें भावो को उद्दीप्त करने से बचना चाहिए।

सप्रेषण की सफलता के लिए वक्ता और श्रोता की जिन असाधारण योग्यताओं की ओर ऊपर संकेत किया गया है उन्हें रिचर्ड्स कोई सर्वथा विचित्र योग्यताएँ नहीं मानते। उनके अनुसार, मनुष्य की सामान्य मनोवैज्ञानिक क्रियाओं से वे भिन्न नहीं हैं। वक्ता की असाधारण योग्यता का अर्थ यह है कि वह अपने अनुभव की विगत समानताओं का उपयोग करता है। श्रोता की असाधारण ग्राहिका शक्ति

अनुभव का अर्थ उसमें घटित आवेग है। इसलिए उस अनुभव के पुनरुत्पादन की पहली शर्त यह है कि समान आवेग घटित हो। जिस अनुभव में आवेगों की दृष्टि से सरलता रहती है उसके पुनरुत्पादन की संभावना प्रायः कम रहती है। जिसमें आवेग की दृष्टि से जटिलता रहती है उसका पुनरुत्पादन अधिक संभव होता है। मनोविज्ञान का यह सिद्धान्त है कि किसी स्थिति का आंशिक प्रत्यागमन संपूर्ण स्थिति के प्रत्यागमन को संभव बना देता है। चूंकि अधिकांश आवेग अनेक और विविध संपूर्ण स्थितियों में संलग्न रहते हैं, इसलिए उन अलग-अलग संपूर्णों में इस दृष्टि से द्वन्द्व होता संभव है कि उनमें से कौन पुनः उत्थित हो। इस द्वन्द्व का निर्णय अंगों के मूल सम्बन्ध की विशेषता के आधार पर होता है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान में ज़ोर देकर बताया गया है, "अनुभवों के पुनरुत्पादन के लिए केवल मूल संपर्क या सामीप्य या समानान्तरीणता ही यथेष्ट नहीं है, बल्कि यों कहें कि यह तो पुनरुत्पादन के लिए अपेक्षाकृत शक्तिहीन है।"

जिन अनुभवों में अधिक व्यवस्था रहती है उनके पुनरुत्पादन की अधिक संभावना रहती है। जिनमें उलझन और संभ्रम रहता है उनके पुनरुत्पादन की संभावना कम रहती है। डॉ० हीड ने 'सतर्कता' पर बल दिया है। सतर्कता की उच्च स्थिति में तंत्रिका-संस्थान उद्दीपनों के प्रति अधिक उपयोजित, विवेकपूर्ण और क्रमबद्ध अनुक्रियाओं के रूप में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इसलिए उच्च कोटि की सतर्कता से युक्त अनुभवों के पुनरुत्पादन की संभावना अधिक रहती है। साथ ही, पुनरुत्पादन के क्षण की सतर्कता भी समान महत्त्वपूर्ण विषय है। इस तरह, कवि को व्यतीत अनुभवों की सुलभता कैसे होती है इसकी व्याख्या इसी रूप में की जा सकती है कि उसका अनुभव असामान्य रूप से व्यवस्थित और असामान्य सतर्कता से युक्त रहता है। उसके अनुभवों में सम्बन्ध-सूत्र साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक आसानी से घटित होते हैं और इन्हीं मूल सम्बन्ध-स्थापनों के कारण आवश्यकता पड़ने पर उसका व्यतीत उसके लिए मुक्त भाव से सुलभ और पुनरुत्पाद्य बन जाता है।

(२) कलाकार की सामान्यता — सफल संप्रेषण के लिए यदि कवि की पहली विशेषता विगत अनुभूतियों को अपने लिए सुलभ करना है तो दूसरी शर्त उसकी (कवि की) सामान्यता (नॉर्मेल्सी) है। संप्रेषण की विफलता का अर्थ संप्रेषित होनेवाली अनुभूतियों का भावकों की अनुभूतियों से मेल नहीं खाना है। कवि की सामान्यता और कवि और भावक की अनुभूतियों के सादृश्य की जो व्याख्या रिचर्ड्स ने की है वह नीचे प्रस्तुत है।

सफल संप्रेषण के लिए सभी भावकों में, अपने प्रभावशील उद्दीपनों के साथ कुछ आवेगों का सामान्य रूप में रहना आवश्यक है। साथ ही, एक आवेग दूसरे को जिस तरह प्रभावित और परिवर्तित करता है उस दृष्टि से भी उनमें समानता चाहिए।

कुछ सक्रिय आवेगों के रहने पर दूसरे आवेग आवश्यक उद्दीपनों के अभाव में भी उत्थित हो सकते है। ऐसे आवेगो को रिचर्ड्स ने 'काल्पनिक आवेग' कहा है। उनके लिए मूर्तिविधान अनिवार्य नही होता। कौन-से ये दूसरे आवेग घटित होंगे, यह इसपर निर्भर है कि अकाल्पनिक अनुभव मे, जब सभी आवेगों के उद्दीपन उनके साथ उपस्थित थे, कौन-से आवेग सहकारी थे। इस कारण के उपस्थित होने की दृष्टि से कल्पना आवृत्तिमूलक होती है। पर, हमारा प्रयोजन कल्पना के निर्माण-पक्ष से अधिक है। अतीत अनुभवो की अपेक्षा वर्तमान अनुभव की परिस्थितियाँ कम महत्त्वपूर्ण नही होती। इसका प्रमाण यह है कि किसी जबर्दस्त सवेग के प्रभाव मे जो दृश्य देखा गया वही दृश्य मनोदशा के बदल जाने पर बहुत बदला हुआ मालूम पड़ता है। चूंकि सक्रिय आवेगो के चुनाव मे भिन्नता आ जाती है और उनका रूप परिवर्तित हो जाता है। इस तरह, कल्पना की निर्माणप्रक्रिया मे वर्तमान स्थिति का हाथ अतीत की अपेक्षा, जो कल्पना का उद्गमस्रोत होता है, कम नही होता। इस तथ्य पर ध्यान देने से कलासम्बन्धी इन बातो की व्याख्या हो जाती है (१) कलाकृतियो की सख्या की कमी, कला की निर्वैयक्तिकता, तटस्थता आदि विशेषताएँ, (२) कला की रूपगत विशेषताओ का महत्त्वपूर्ण होना।

सप्रेषण की कठिन स्थितियों मे कलाकार के पास कुछ ऐसे साधन अवश्य होने चाहिए जिनके द्वारा भावक के अनुभव के एक अग का वह नियत्रण कर सके जिसके फलस्वरूप भावक की कल्पना का विकास उस अग के द्वारा निर्धारित हो और ऐसी आवृत्ति को अवसर न मिले जो व्यक्ति-व्यक्ति मे अलग-अलग होगी। इसीलिए प्रत्येक कला के आधार के रूप मे असाधारणत एकरूप आवेगो का टाइप पाया जाना चाहिए जो एक बाहरी ढाँचा बना सके और जिसके अन्दर शेष अनुक्रियाएँ विकसित हो। ये आवेग अत्यन्त एकरूप आवेगों मे से होते है जिनका अपने उद्दीपनों से एक ऐसा सम्बन्ध होता है जिसे हम सभी अनुभूत करते हैं।

कला के रूपतत्त्व (जैसे कविता मे लय, छन्द, सुर-ताल, सगीत मे तारता, सुर-ताल; चित्र मे आकार तथा रग आदि) उन उद्दीपनो को प्रस्तुत करते हैं जिनके ऊपर भावको की अनुक्रियाओं की एकरूपता के लिए निर्भर हुआ जा सकता है। सप्रेषण के लिए एकरूपता तथा पर्याप्तत परिवर्तित अनुक्रियाओ की आवश्यकता होती है जिन अनुक्रियाओं को भौतिक दृष्टि से सँभालने लायक उद्दीपनों द्वारा सज्जित किया जा सके। इन तीनो आवश्यकताओ (यानी अनुक्रियाओ की एकरूपता, उनकी परिवर्तनशीलता तथा भौतिक साधनो द्वारा उन्हे परस्पर सज्जित किये जाने की योग्यता) के कारण ही कलाओं की रचना पर्याप्त मात्रा मे सभव नहीं हो पाती और उनके रूपतत्त्व को इतना अधिक महत्त्व मिलता है।

कवि और पाठको के आवेगों मे किस ढग से साम्य रहना अनिवार्य है इसे स्पष्ट करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि कवि की मनोवृत्ति की थोड़ी भी

विलक्षणता कभी-कभी संप्रेषण की दृष्टि से घातक सिद्ध हो सकती है। कविता का कोई एक दोष उसके मूल्य में कोई कमी लाये बिना संप्रेषण की दृष्टि से अत्यन्त खतरनाक हो सकता है। किसी व्यक्ति में अत्यन्त उच्चकोटि की मूल्य-वान् मनःस्थिति का विकास बिलकुल संभव है पर वह मनःस्थिति दूसरों के लिए दुर्बोध्य या अगम्य हो सकती है। ऐसी अवस्था में यह प्रश्न उठता है कि कौन सही है—कलाकार ? या उसकी कृति को न समझनेवाला समीक्षक ? इस द्वन्द्व से कलाकार की सामान्यता (नॉर्मल्सी) का प्रश्न उठ खड़ा होता है।

कलाकार की सामान्यता का अर्थ : 'मानक' होना— रिचर्ड्स के अनुसार, सामान्य होने का अर्थ मानक (स्टैंडर्ड) बनना है न कि औसत बनना। कलाकार औसत स्थिति को त्याग कर आगे बढ़ता है तो उसकी कृति में हमारी दिलचस्पी होती है। औसत लोगों से कलाकार का कितना और कैसा अन्तर प्रशंसनीय है इसका स्पष्टीकरण अपने मूल्यसिद्धान्त के आधार पर करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि यदि कलाकार की मनोव्यवस्था ऐसी है कि वह औसत लोगों की अपेक्षा अधिक पूर्ण जीवन जी पाता है तो हमें कलाकार के अनुकरण का प्रयास करना चाहिए। यदि कलाकार की मनोव्यवस्था इतनी विलक्षण हो कि वहाँ तक आम लोगों की बिलकुल पहुँच न हो तो हमें उसकी उपेक्षा करनी चाहिए, भले ही उसकी मनोव्यवस्था बहुत अच्छी हो। रिचर्ड्स के अनुसार, मनोव्यवस्था की अच्छाई और अनुकरणीयता अनिवार्यतः एक ही नहीं होती। उनका कथन है कि जिन मनःस्थितियों तक आम व्यक्ति की पहुँच नहीं होती वे प्रायः दोषग्रस्त होती हैं। इसी कारण उनतक सबकी पहुँच नहीं होती। कुछ रहस्यवादी कवि इसके उदाहरण हैं। जिन विलक्षणताओं के कारण कवि की अनुभूति तक आम लोगों की पहुँच नहीं होती उनके ऊपर कविता का मूल्य निर्भर नहीं होता।

औसत लोगों से कलाकार यद्यपि कुछ दृष्टियों में अन्तर रखता है पर उनके साथ उसकी समानता भी बहुत अधिक होती है। औसत लोगों से कलाकार की भिन्नता मन के नवीनतम, सर्वाधिक अभिवर्द्धमान तथा सबसे कम स्थिर अंगों तक ही सीमित रहती है। यानी, मन का जो अंश स्थिर नहीं रहता, हमेशा नव-निर्माण की प्रक्रिया के लिए प्रस्तुत होने के कारण क्षण-क्षण नवीन होता है उसी अंश की दृष्टि से कलाकार और औसत व्यक्तियों में भिन्नता रहती है, शेष अंशों की दृष्टि से उनमें समानता ही रहती है। सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा सूक्ष्मतर मनोव्यवस्था के लिए कलाकार की तत्परता बुरी बात नहीं है चूँकि इसमें मन का दबाव या तनाव (स्ट्रेन) कम होता है।

रिचर्ड्स कलाकार को चौराहे पर का प्राणी मानते हैं। यों कहें कि वह अनेक आयामों वाले चौराहे पर का जीव होता है। मन का विकास किस दिशा में जाने से होगा और कौन-सी राह किस व्यक्ति के लिए अनुकूल पड़ेगी, इसका

सवाल उठता है। कुछ कवि सार्वजनीन होते हैं और कुछ विशेषज्ञ। विशेषज्ञ अपनी मनोव्यवस्था का विकास इस तरह कर सकता है जो सामान्य विकास के साथ-साथ न चलनेवाला हो। यह बात ऐसे कलाकार की कृति के मूल्यांकन के सिलसिले मे बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। कलाकृति की शाश्वतता के साथ भी इस बात का सम्बन्ध है। किसी भी क्षण, किसी परिस्थिति मे अभिवृत्तियो की विविधता सभव है। कौन-सी अभिवृत्तियाँ सर्वोत्तम हैं, इसका निर्णय केवल उन आवेगों के द्वारा ही नहीं होता जिन्हे अभिवृत्ति में व्यवस्थित सतुष्टि मिलती है अपितु व्यक्ति की मनोव्यवस्था के शेष अग पर अभिवृत्ति के पडनेवाले प्रभाव के द्वारा होता है।

'मानक' की व्याख्या—कलाकार की सामान्यता का आकलन व्यर्थता की दृष्टि से भी होना चाहिए। अधिकाश मानवीय अभिवृत्तियाँ व्यर्थ होती हैं। जो मन कम-से-कम व्यर्थतापूर्ण होता है उसे ही हम 'मानक' (स्टैंडर्ड या नॉर्म) मानेंगे। इस सामान्यता का ग्रहण अवचेतन प्रक्रिया से होता है। अनुभव धीरे-धीरे भ्रान्त पसदो को छोडता चलता है और साधारणता की ओर हमे लेता चलता है। हम जानबूझकर, चेष्टा द्वारा, शायद ही अपनी रुचि का परिष्कार करते हो। हमारी रुचि अनायास बदलती चलती है और कभी पीछे मुडकर हम जब देखते हैं तो अपनी रुचि मे घोर परिवर्तन पाते हैं। बचपन मे जिस कविता से मुग्ध हो उठे थे उन्हे प्रौढ होने पर वाहियात वाग्विलास मानने लगते हैं।

संप्रेषण और सक्रमणसिद्धान्त—तल्सतोय ने अपनी पुस्तक 'ह्वाट इज आर्ट' मे कहा है कि कला कलाकार द्वारा अनुभूत भावो को दूसरो तक सक्रमित करती है। तल्सतोय के इस 'सक्रमणसिद्धान्त' (इन्फेक्शन थियरी) को सप्रेषण के विवेचन के प्रसग मे विवेच्य समझते हुए रिचर्ड्स ने इसकी परीक्षा 'प्रिंसिपुल्स' के तेइसवें अध्याय मे की है और उक्त सिद्धान्त की अपने ढग से व्याख्या की है।

तल्सतोय का कथन है कि कला तीन स्थितियो के परिणामस्वरूप कम या अधिक सक्रमित होती है -

(१) जिस सवेदना को व्यक्त किया जाता है उसकी कम या अधिक विचित्रता के कारण;

(२) इस सवेदना को व्यक्त करने मे कम या अधिक स्पष्टता के फलस्वरूप;

(३) कलाकार की ईमानदारी और सचाई के परिणामस्वरूप। यानी कलाकार जिस सवेदना को व्यक्त कर रहा है उसे उसने कम या अधिक शक्ति के साथ अनुभव किया था, इसके आधार पर भी कला की सक्रमितता की मात्रा निर्भर करती है। तल्सतोय की स्थापना यह है कि कला के मूल्याकन का मापदड उसकी सक्रमितता की मात्रा है। यानी जो कला जितनी ही अधिक सक्रमित हो सकेगी, तल्सतोय के अनुसार, वह उतनी ही अधिक मूल्यवान् होगी।

रिचर्ड्स के अनुसार, 'सक्रमितता की मात्रा' बडी ही अस्पष्ट पदावली है। इसके दो मानी सभव हैं . (१) कला के सक्रमण से प्रभावित होनेवाले व्यक्तियो

में हटकर अभिवृत्ति में निवास करने लगते हैं। किसी भी अभिवृत्ति के विकास की अनेक क्रमिक स्थितियाँ होती हैं जिन्हें उनका 'विश्रामबिन्दु' कह सकते हैं और जिनमें अपेक्षाकृत अधिक स्थिरता रहती है। इन स्थितियों को पार करना कठिन होता है। फलतः अधिकांश व्यक्ति ऐसे ही 'अपूर्ण गृहों' में जीवन भर निवास करते रह जाते है। ये स्थितियाँ या भावात्मक अभियोजन के स्तर परिस्थिति की उपयुक्तता के आधार पर नहीं, सामाजिक संकेतों और उन आकस्मिकताओं के कारण जड़ीभूत हो जाते हैं जो हमें वास्तविक अनुभव से दूर ले जाती हैं। आधुनिक युग में बुरा साहित्य, बुरी कला तथा सिनेमा, अधिकांश वस्तुओं के प्रति हमारी अपरिपक्व अभिवृत्तियों को जड़ीभूत करने में बहुत बड़ा प्रभाव डालते हैं। यहाँ तक कि युवक-युवतियों की सौन्दर्य-धारणाएँ भी पत्रिकाओं के आवरण-पृष्ठों और सिनेमा के सितारों के द्वारा निर्णीत होती हैं। इन्हीं बुरे प्रभावों के कारण अच्छी कलाकृतियों का आम प्रदर्शन प्रभाव की दृष्टि से असफल होता है।

अभिवृत्तियों के उपर्युक्त स्थिरण के घाटे बहुत हैं। इनके करण औसत किशोर अपने अस्तित्व की संभावनाओं के प्रति बड़े बुरे ढंग से अभियोजित होता है। वह तथ्यों का सामना करने में असमर्थ होता है और फिक्शन की दुनिया में ही जीता है। इस काल्पनिक जगत् का निर्माण उसकी संचित अनुक्रियाओं (स्टॉक रेस्पॉन्सेज) के प्रक्षेपण (प्रोजेक्शन) द्वारा होता है। इन्हीं संचित अनुक्रियाओं की सहायता से लोकप्रिय लेखक विजयी बनता है। भावनाओं के विकास की विरामावस्था का स्पर्श करनेवाली रचनाएँ लोकप्रिय हो जाती हैं।

आनन्द को कविता का मूल्य माननेवाले ऐसी लोकप्रिय रचनाओं को हीन नहीं बता सकते, कारण, इनका उपभोग बड़ा व्यापक होता है। पर, कविता की सार्थकता किसी अन्य दृष्टि से माननेवाले (जैसे, रिचर्ड्स ने आवेगों की सामंजस्यमयी संतोषप्रद स्थिति में मूल्य की सत्ता देखी है) ऐसी रचनाओं को घटिया बताने का कारण दे सकते हैं। ऐसे ही लोग यह कह सकते हैं कि 'पोयम्स ऑफ पैशन्स' के आस्वादन की स्थिति से आगे बढ़कर 'गोल्डेन ट्रेजरी' के आस्वादन की स्थिति में पहुँचे हुए लोगों के लिए पीछे लौटना असंभव हो जाता है। हिन्दी से उदाहरण लें तो कहेंगे कि 'हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' का पाठक जब 'पुष्करिणी' जैसे संग्रह का योग्य पाठक बन जाता है तो उक्त प्रेमगीतसंग्रह को बाद में उलटने लायक भी नहीं मानता।

(२) निर्णय एवं अनेकविध अध्ययन—विविध पाठकों के द्वारा कविता के अध्ययन में कभी-कभी बहुत भिन्नता रहती है पर उसके मूल्य के सम्बन्ध में वे प्रायः एकमत रहते हैं। यह आश्चर्यजनक लग सकता है, पर ऐसा होता है। कविता का ठीक ढंग से अध्ययन न कर पाने के कारण भी उसपर अस्पष्टता का दोषारोपण किया जाता है। कविता की अस्पष्टता के लिए कभी तो कवि उत्तरदायी होता है और कभी पाठक का गलत ढंग से कविता का अध्ययन। काव्य के

अध्ययन की यह अनेकविधता कविता के मूल्य-सम्बन्धी निर्णय में भिन्नता नही लाती, इसका उदाहरण देते हुए रिचर्ड्स ने शेक्सपियर के 'हैमलेट' तथा वर्ड्सवर्थ के सॉनेटों का जिक्र किया है। हैमलेट के चरित्र के विषय में विविध मत रखते हुए भी उस नाटक के मूल्य के विषय मे पाठक एकमत हो सकते हैं। अज्ञेय के 'शेखर' के चरित्र के विषय में अनेकविध धारणाएँ रखनेवाले भी 'शेखर: एक जीवनी' के मूल्य के विषय में ऐकमत्य रखते हैं। अतः मूल्य-सम्बन्धी ऐकमत्य को इसका प्रमाण नही मानना चाहिए कि कविता के अध्ययन में भी एकरूपता है।

(३) **अनुक्रियाओं के स्तर एवं अपील की व्यापकता**— रिचर्ड्स ने कविता के अध्ययन की कुछ ऐसी स्थितियों की चर्चा की है जिनमे कोई कृति एक ही प्रकार की मूल्यवान् अनुक्रियाओ को अनेक स्तरो पर घटित करती है। विभिन्न पाठकों के अध्ययन में वास्तविक अन्तर रहते हुए भी ऊपरी सहमति इतनी अधिक होती है कि उस अन्तर को वह ढँक लेती है। शेक्सपियर के 'मैकबेथ' को रिचर्ड्स ने ऐसी कृति का उदाहरण माना है। तुला के एक छोर पर 'मैकबेथ' अत्यन्त सफल और सुबोध मेलोड्रामा[1] प्रतीत होता है और दूसरे छोर पर विचित्र ढग की पहेलीनुमा ट्रैजिडी। इन दोनो छोरो के बीच भी कई स्थितियाँ हैं। इसीलिए विभिन्न प्रकार के विवेकवाले पाठक उसकी प्रशंसा मे शामिल होते हैं। अनेक स्तरों पर आस्वादित होने की संभावना एलिजाबेथीय युग के नाटको की स्वीकृत विशेषता है। 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस', 'रॉबिन्सन क्रूसो', 'गलिवर्स ट्रैवल्स' आदि ऐसी ही रचनाएँ हैं। डोने, मिल्टन, ब्लेक, लैंडर, हेनरी जेम्स, बॉदलेयर आदि की रचनाएँ अनेक स्तरो पर आस्वादित होनेवाली रचनाएँ नही हैं।

यह एक आम धारणा है कि सभी प्रकार और सभी कोटि के मनुष्यों तक जिस कृति की अपील होती है वह उस कृति की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् होती है जिसकी अपील कुछ विशिष्ट व्यक्तियो तक ही होती है। रिचर्ड्स का इस सम्बन्ध में मत यह है कि व्यापक अपीलवाली कृतियो का सामाजिक मूल्य अधिक होता है, पर इससे यह सिद्ध नही होता कि उच्चतम स्तर के पाठक के लिए भी उनका अधिक मूल्य होगा ही। व्यापक अपील रखनेवाली कविता को विशिष्ट व्यक्तियों तक ही सीमित रहनेवाली कविताओं की अपेक्षा अधिक प्रशसनीय मानने का आधार यह विश्वास होता है कि समान कारणों से ही किसी कविता की अपील व्यापक होती है और इस कारण ऐसी कविता मानवप्रकृति के मूलभूत और अनिवार्य तत्वो का स्पर्श करती है। किन्तु अंग्रेजी साहित्य के प्राध्यापक जानते हैं कि शेक्सपियर की रचनाओ की अपील एकरूप नही होती। 'रामचरितमानस' की भी यही स्थिति है। इसकी व्यापक अपील होते हुए भी विभिन्न कोटि के

1. मेलोड्रामा वैसे नाटक को कहते हैं जिसमें भावों के प्रति असंस्कृत (क्रूड) अपील रहती है। अपने यहाँ की नौटंकियों में यही बात रहती है पर उसकी कुछ दूसरी विशेषताएँ भी हैं।

पाठकों के लिए इसकी अपील विभिन्न होती है। विभिन्न कारणों से मानस की प्रशंसा की जाती है। यह बिलकुल संभव है कि एक व्यक्ति जिस कारण से किसी कृति की तारीफ कर रहा है उस कारण को सुनकर उस कृति का दूसरा प्रशंसक नाक-भौं सिकोड़ ले। रामायणी लोगों के आह्लाद पर एवं उनके द्वारा 'मानस' की पंक्तियों की व्याख्या पर आधुनिक सौन्दर्यबोध एवं मूल्यबोध से युक्त पाठक की क्या प्रतिक्रिया होती है, यह स्पष्ट है। रिचर्ड्स का कथन है कि व्यापक अपील-वाली कृतियों को मानवप्रकृति के अनिवार्य एवं सार्वजनीन तत्त्वों का स्पर्श करने-वाली समझते हुए कलागत मूल्य का आधार इसी तथ्य को मानना भ्रान्त धारणा है। उनके अनुसार, हमेशा से दोनों प्रकार की रचनाएँ होती आयी हैं: व्यापक अपीलवाली तथा सीमित अपीलवाली। इन दोनों का अंतर स्पष्ट करते हुए उनका कथन है कि वह कला जो बच्चों को उनकी क्रीडा से और बूढ़ों को अलाव से अलग खींच लेती है, स्पष्टतः सरलतम और सर्वाधिक आदिम आवेगों की सहायता से अपनी अभिवृत्तियों का निर्माण करती है और इस प्रकार उनका संचालन करती है कि अविकसित मन उन्हें संतोषजनक ढाँचे में बुन ले सकता है जबकि अधिक परिपक्व मन उनका ऐसा संस्कार कर सकता है कि वे अपने आरंभिक स्वरूप की सभी समानताएँ छोड़ दें और तब भी उसकी आवश्यकताएँ पूरी करें। दूसरे प्रकार की कला वह है जो ऐसे आवेगों से निर्मित होती है जो बहुत अच्छी अभियोजनावाले व्यक्तियों को छोड़कर अन्य लोगों में मूल्यवान् ढंग से अन्वित या एकीकृत नहीं हो पाते। बहुधा इनके आवेग ही ऐसे होते हैं जिनका अनुभव उच्चतया विकसित मन को ही हो पाता है।

रिचर्ड्स दोनों प्रकार की कलाकृतियों के अलग-अलग लाभों को स्पष्ट करते हैं। व्यापक अपीलवाला कवि साधारण आवेगों से, जिनमें जीवन भर दिलचस्पी होती है और जो अनुभूतियों के प्रतिनिधिरूप होते हैं, काम लेता है। ऐसे कवि की कला खतरनाक समाप्ति का शिकार नहीं बनती। अनेक स्तरों पर समायोजित होनेवाले आवेग अनिश्चित काल तक समायोजित होते रह सकते हैं और इसीलिए उनका आधार लेनेवाली कृति हमेशा नयी मालूम पड़ सकती है। शेक्सपियर की नवीनता का यही कारण है। हेनरी जेम्स के साथ ऐसी बात नहीं है। उसकी कृति को दुबारा पढ़ने पर आवृत्ति का बोध होता है। पर, सीमित अपील-वाली सभी रचनाओं के साथ ऐसी बात नहीं। पोप या ह्विटमैन को उदाहरण-स्वरूप ले सकते हैं। हिन्दी में 'कामायनी' ऐसी ही सीमित अपीलवाली रचना है जिसकी नवीनता समाप्त नहीं होती। 'शेखर: एक जीवनी' को भी ऐसी ही रचना मान सकते हैं। श्रेष्ठ गीतिकाव्य की अपील बहुधा उच्चस्तर तक ही होती है।

(४) शाश्वतता की कसौटी— जिस तरह व्यापक अपीलवाली कृति के प्रति पक्षपात होता है उसी तरह वैसी कृति के प्रति भी जो सदियों के निर्णय पर खरी उतरती है। रिचर्ड्स दोनों प्रकार की कृतियों के प्रति पक्षपात का कारण

समीक्षात्मक कायरता मानते हैं, यानी यह प्रवृत्ति कि हम युद्ध निर्णय नहीं ले सकते तो वोट गिन ले तथा बहुमत का साथ दे दें। रिचर्ड्‌स का मत है कि कभी-कभी आपेक्षिक शाश्वतता का निर्धारण ऐसी परिस्थितियों के द्वारा होता है जिनका मूल्य से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इसी कारण कुछ बहुमूल्य कृतियाँ नष्ट हो जाती हैं। अमरता बुरी और अच्छी दोनों प्रकार की कृतियों से जुड़ी रहती है। हिन्दी के पाठक जानते हैं कि राजदरबारों का आश्रय पानेवाली अनेक रीतिकालीन कृतियाँ सुरक्षित हैं पर सभी अच्छी ही नहीं हैं।

कला की शाश्वतता के विभिन्न अर्थ लिये गये हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि ऐसी कलाएँ अमर तत्त्वों को अपने में सन्निहित रखती हैं और शाश्वत सत्यों का उद्‌घाटन करती हैं। पर, रिचर्ड्‌स ऐसे अनुमान का परित्याग कर देना अच्छा समझते हैं। उनकी दृष्टि में किसी कलाकृति की शाश्वतता की व्याख्या केवल इसी रूप में की जा सकती है कि वैसी कृति आवेगों की एकरूपता से आरंभ होती है। जहाँ ऐसे आवेग निहित रहते हैं जो उत्तेजना की उद्दीप्त स्थिति में क्षणिक सत्ता रखने के कारण आकस्मिक स्पर्श पाते हैं वहाँ शाश्वतता शायद ही होगी। जिस तरह कोई लतीफा कुछ दिनों तक जादू-सा असर करता है पर बाद में गतप्रयोग हो जाता है उसी तरह विशिष्ट सामाजिक परिस्थितियों में वैसी कलाकृतियों का भी प्रचलन बढ़ जाता है जो दूसरे समय में अत्यल्प उद्दीपना का काम करती हैं। महत्त्वपूर्ण वस्तुओं की तरह महत्त्वहीन वस्तुओं का भी फैशन चलता है। कलाकार यदि फैशन का लाभ उठाता है तो शाश्वतता को उसे छोड़ना पड़ता है। उसे सम्प्रेषण की दृष्टि से जितनी आसानी होती है, गतप्रयोग हो जाने का (ऑब्लेसेंस का) उतना ही अधिक खतरा रहता है। किन्तु, रिचर्ड्‌स गतप्रयोग हो जाने को अल्पमूल्यत्व का संकेतक नहीं मानते। उससे तो सम्प्रेषण के लिए विशिष्ट परिस्थितियों के उपयोग भर की सूचना मिलती है। कोई कृति अपने युग का आभास देती है और सारतत्त्व ग्रहण करती है इसीमें उसका मूल्य घट नहीं जाता। तथापि उसकी अपील सीमित अवश्य हो जाती है। जो कृति समय के फैशन के पीछे नहीं दौड़ती और स्थिरता की सम्भावनाओं से युक्त तत्त्वों, जैसे कला के रूपपक्ष पर भरोसा रखती है वह समय के आघात में अधिक बच पाती है। निष्कर्ष यह कि रिचर्ड्‌स के अनुसार कला की शाश्वतता काव्य के स्थिर तत्त्वों के उपयोग पर आधृत है, पर उसके आधार पर कला का मूल्य निर्धारित करना ठीक नहीं।

निष्कर्ष— सम्प्रेषण से सम्बद्ध जिन प्रासंगिक विषयों का विवेचन ऊपर रिचर्ड्‌स के आधार पर प्रस्तुत किया गया है उससे रिचर्ड्‌स की एक प्रमुख स्थापना यह सूचित होती है कि किसी कृति के सम्प्रेषण-पक्ष और मूल्य-पक्ष में स्पष्ट अन्तर रखना चाहिए। हम किसी कृति की, इनमें से किसी एक या दोनों आधारों पर, तारीफ या निन्दा कर सकते हैं। पर, रिचर्ड्‌स का मत है कि यदि

कविता सम्प्रेषण के साधन की दृष्टि से पूर्णतः विफल भी हो तब भी उसके मूल्य का निषेध करने की स्थिति में हम नहीं आते।

यदि इस बात पर कोई समीक्षक यह शंका करे कि तब ऐसी कृति का हमारे लिए क्या मूल्य है जो हममें सम्प्रेषण नहीं करा पाती तो रिचर्ड्स का उत्तर है कि समीक्षक को किसी कृति का मूल्य केवल अपनी दृष्टि से ही नहीं देखना चाहिए। उनका कथन है कि किसी समीक्षक को यह कहने की स्थिति में होना चाहिए कि वह अमुक कृति को पसंद नहीं करता, पर वह अच्छी चीज है या वह अमुक कृति को पसंद करता है, पर वह निन्द्य है। ऐसा अनैतिक नहीं माना जाना चाहिए। चूँकि प्रत्येक ईमानदार पाठक उन बिन्दुओं को जानता है जहाँ उसकी संवेदना विकृत हो जाती है और वह सामान्य समीक्षक नहीं रह जाता। उसका समीक्षक-पद पाना उसकी वैयक्तिक विलक्षणताओं से उसके ऊपर उठ पाने की योग्यता पर निर्भर है।

सप्तम अध्याय

कविता की परिभाषा

'प्रिंसिपुल्स' के तीसवें अध्याय का शीर्षक है 'द डेफिनीशन ऑफ अ पोइम'। किन्तु इसमें कविता के तत्त्वों की व्याख्या के रूप में उसका लक्षण नहीं दिया गया है जैसा हमारे यहाँ की काव्यशास्त्रीय पुस्तकों में रहता है। इसमें कविता की पहचान (आइडेंटिफिकेशन) बतायी गयी है। यानी, एक ही कृति से जिन विविध अनुभूतियों की सृष्टि होती है उनमें से किस अनुभूति को कविता मानें, इस प्रश्न का उत्तर दिया गया है। काव्यानुभूति की विशेषताओं एवं उसके तत्त्वों का विवेचन रिचर्ड्स ने अन्य अध्यायों में किया है। इस अध्याय में तो केवल कविता किसकी अनुभूति को कहें, इस प्रश्न का समाधान किया गया है। पर, इस तथ्य को न देख पाने के कारण हिन्दी के कुछ आलोचक रिचर्ड्स के उक्त प्रश्न के उत्तर में उनका काव्यलक्षण उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से मम्मट या विश्वनाथ के काव्यलक्षण को देखते हैं। वस्तुतः पहचान के लिए इंगित कर देना भी परिभाषा का एक कार्य है। रिचर्ड्स ने अपनी 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' पुस्तक में परिभाषा की परिभाषा देते हुए कहा है कि किसी प्रतीक का विवेचन करते समय हमें एक ऐसे साधन की जरूरत पड़ती है जिसके द्वारा उक्त प्रतीक की अभ्युद्दिष्ट वस्तु (रेफरेंट) को हम पहचान सकें।[1] परिभाषा से यह सभव होता है। 'कविता की परिभाषा' शीर्षक अध्याय की 'परिभाषा' यही पहचान कराती है। 'स्वरूप' और 'लक्षण' के पार्थक्य को ध्यान में रखें तो कह सकते है कि रिचर्ड्स के इस अध्याय में कविता का स्वरूप संकेतित है, उसका लक्षण-निरूपण नहीं हुआ है।

रिचर्ड्स का मत है कि यह विश्वास भ्रमपूर्ण है कि 'कविता'-जैसी कोई वास्तविक वस्तु होती है जिसतक सभी पाठकों की पहुँच होती है और जिसपर वे निर्णय देते हैं। उनका कथन है कि हम 'कविता' के विषय में इस तरह बात करते हैं कि हमारे अभिप्राय को समझ पाना कठिन हो जाता है। किसी कविता की चर्चा करते समय हम चार प्रकार की वस्तु की ओर संकेत कर सकते है: (१) हम या तो कलाकार की अनुभूति के विषय में बात कर रहे हैं या (२) उसकी अनुभूति के आवश्यक पक्ष के विषय में या योग्य पाठक की अनुभूति के

1. In any discussion or interpretation of symbols we need a means of identifying referents.—*I. A. Richards* : THE MEANING OF MEANING, P. 246

विषय मे जिसने कविता के पढने मे कोई गलती नही की है या (३) सभावित आदर्श और पूर्ण पाठक की अनुभूति के विषय मे या (४) अपनी वास्तविक अनुभूति के विषय मे। प्राय इन चारो मे गुणात्मक दृष्टि से भिन्नता होगी। सप्रेषण सभवत कभी पूर्ण नहीं होता, अत प्रथम और चतुर्थ मे अन्तर रहेगा ही। दूसरी और तीसरी मे भी अन्तर रहता है। तीसरी का अर्थ वह अनुभूति है जिसका हमे निर्बाध अनुभव करना चाहिए या वह सर्वोत्तम अनुभूति जो हमे प्राप्त हो; जबकि दूसरी का अर्थ है, वस्तु जैसी है उस रूप मे हमे उसका कैसा अनुभव करना चाहिए, यानी वह सर्वोत्तम अनुभूति जिसकी हम उम्मीद कर सकते हैं।

कविता की इन चार परिभाषाओं मे से हम किसे स्वीकार करे? इसका निर्णय करना आसान नही है। साधारणत प्रथम या चतुर्थ अनुभूति को कविता मानने का प्रचलन है या सप्रेषण के सही रूप को भुला देने पर हम दोनो के मिश्रित रूप को कविता मान लेते है। चतुर्थ को कविता मानने मे आपत्ति यह है कि वैयक्तिक निर्णयो को प्रश्रय मिलता है जिनपर आपत्ति होना स्वाभाविक है। इसमे दूसरी दिक्कत यह है कि प्रत्येक गीत के लिए उतनी कविताएँ माननी पड़ेंगी जितने उसके पाठक है। कलाकार की अनुभूति को कविता मानने से भी काम नही चलता। कारण, कवि के सिवा कोई यह नही जानता कि उसकी अनुभूति क्या थी।

इस द्वन्द्व की स्थिति में रिचर्ड्स का समाधान यह है कि हम उपर्युक्त चार अनुभूतियो मे से किसी भी एक अनुभूति को कविता मान नहीं सकते। इसकी जगह हमे कम या बेशी समान अनुभूतियो के एक वर्ग को कविता मानना पडेगा। रिचर्ड्स की मान्यता के अनुसार, वर्ड्सवर्थ की 'वेस्ट मिनिस्टर ब्रिज' कविता का अर्थ हमे वर्ड्सवर्थ की वह वास्तविक अनुभूति नही ग्रहण करना चाहिए जिसने उसे इस कविता के निर्माण मे प्रवृत्त किया अपितु इसका अर्थ हमे अनुभूतियों का वह वर्ग लेना चाहिए जो कवि की उस कविता के शब्दो के कारण घटित उन सभी वास्तविक अनुभूतियो से निर्मित होता है जो कवि की अनुभूति से एक खास सीमा से अधिक अन्तर नही रखती। ऐसी स्थिति मे, अनुभूतियो के इस वर्ग मे से किसी भी अनुभूति को जो व्यक्ति कविता पढ़कर प्राप्त करता है वह वस्तुत उस कविता को पढ चुका है, ऐसा मानना चाहिए। अन्तर की सीमा का निर्देश करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि शब्दपाठ, लय तथा सुरताल मे अन्तर नही होगा। तात्त्व (चित्र) मे भिन्नता हो सकती है पर उसका विशेष महत्त्व नही। कविता द्वारा होनेवाले मूर्तिविधान मे भी ऐन्द्रिय या सवेदी पक्ष की दृष्टि मे विविध पाठकों की अनुभूति मे भिन्नता रह सकती है। पर, अन्य पक्षों की दृष्टि से उनकी अनुभूतियो मे अन्तर नही होना चाहिए अन्यथा उनकी अनुभूति उक्त अनुभूति-वर्ग मे शामिल नही मानी जा सकती।

कविता की परिभाषा उक्त ढग से करने को पेचीदा समझते हुए भी इसे रिचर्ड्स एकमात्र सुकर ढग मानते हैं। इस तरह, उनके अनुसार, कविता अनुभूतियों का एक वर्ग या समूह है जो मानक (स्टैंडर्ड) अनभूति से प्रत्येक विशेषता मे एक खास मात्रा मे अधिक अन्तर नही रखती। इस मानक अनुभूति के रूप में कवि की अपेक्षित अनुभूति को स्वीकार किया जा सकता है।[2] इस मानक अनुभूति तक जिस व्यक्ति की अनुभूति की पहुँच होगी वह उसके मूल्यांकन की योग्यता रखेगा और उसकी टिप्पणी उस अनुभूति के विषय में होगी जो उस वर्ग मे समाविष्ट होगी।

---

2. "........ it is the only workable way of defining a poem; namely, as a class of experiences which do not differ in any character more than a certain amount, varying for each character, from a standard experience. We may take as this standard experience the relevant experience of the poet when contemplating the completed composition —PRINCIPLES, P. 226-27.

कल्पना

कल्पना के विषय में रिचर्ड्स कॉलरिज के विचारों का समर्थन करते है। सर्जनात्मक कल्पना के तात्त्विक विवेचन की दृष्टि से कॉलरिज का स्थान पाश्चात्य समीक्षा के क्षेत्र में बहुत ऊँचा है। कल्पना के स्वरूप एवं प्रक्रिया की जैसी गहन, दार्शनिक व्याख्या कॉलरिज ने की वैसी किसी दूसरे समीक्षक ने नही की थी। कॉलरिज के कल्पना-सम्बन्धी विवेचन पर कान्त तथा शेलिंग जैसे दार्शनिकों के विचारों का प्रभाव अवश्य है पर निजी अनुभूतियो की प्रेरणा का हाथ अधिक रहने के कारण उनके विचार अत्यन्त मौलिक, सारगर्भ एवं गहन प्रतीत होते हैं। उनके कल्पना-सम्बन्धी विचार उनकी प्रसिद्ध आलोचना-पुस्तक 'बियोग्रैफिया लिटरारिया' के तेरहवें अध्याय में प्रतिपादित हुए हैं, यों अन्यत्र भी उनके कुछ छिटपुट विचार कल्पना के सम्बन्ध में मिलते हैं। रिचर्ड्स ने मुक्त भाव से यह स्वीकार किया है कि कल्पना के विषय में कॉलरिज ने जो-कुछ कहा है, व्याख्या के अतिरिक्त उसमे कुछ जोडा नही जा सकता।[1] पर, रिचर्ड्स के द्वारा कॉलरिज के कल्पना-विषयक विचारों की जैसी व्याख्या की गयी है वह कम मौलिक और महत्त्वपूर्ण नहीं है। कॉलरिज ने कल्पना का विवेचन दार्शनिक धरातल पर किया था। रिचर्ड्स उस विवेचन की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते हैं। कॉलरिज के कल्पना-विषयक विचारों की व्याख्या मे रिचर्ड्स की कितनी अभिरुचि है, यह इस तथ्य से भी सूचित हो जाती है कि उन्होंने 'कॉलरिज ऑन इमैजिनेशन' नामक एक स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी है।

'प्रिंसिपुल्स' के बत्तीसवें अध्याय मे रिचर्ड्स ने 'कल्पना' शब्द के विभिन्न प्रचलित अर्थों का निर्देश करते हुए 'काव्यात्मक कल्पना' का स्वरूप कॉलरिज के आधार पर प्रतिपादित किया है। कल्पना की निर्माण-प्रक्रिया और सश्लेषण-योग्यता की व्याख्या के क्रम में रिचर्ड्स ने ट्रैजिडी की नवीन व्याख्या की है और कविता का "अन्तर्वेशी कविता" (पोयट्री ऑफ इन्क्लूजन) तथा "अपवर्जी कविता" (पोयट्री ऑफ एक्सक्लूजन) नामक वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है।

समीक्षात्मक विवेचनो मे 'कल्पना' शब्द का जिन छह विभिन्न अर्थों में प्रयोग

1. The original formulation was Coleridge's greatest contribution to critical theory, and except in the way of interpretation, it is hard to add anything to what he has said ... ."—PRINCIPLES, P. 242.

होता हैं, वे रिचर्ड्स के अनुसार इस प्रकार है—

(१) सजीव बिम्बो, सामान्यतः चाक्षुप बिम्बों की उत्पादिका के रूप मे कल्पना का प्रायः प्रयोग होता हैं। रिचर्ड्स कल्पना के इस कार्य को मूल्यविधायक काव्यात्मक कल्पना का कार्य नही समझते अत इसे विशेष महत्त्व नही देते।

(२) आलंकारिक भाषा के प्रयोग के रूप मे भी कल्पना की क्रिया देखी जाती हैं। जो लोग रूपक या उपमा का प्रयोग करते है और जब उनकी ये आलकारिक अभिव्यक्तियाँ असामान्य होती हैं तो हम कहते हैं कि वे कल्पनाशील हैं।

(३) दूसरे व्यक्तियो की मन.स्थिति, विशेषत भावात्मक मन.स्थिति के सहानुभूतिक पुनरुत्पादन को भी कल्पना का कार्य माना जाता हैं। कोई नाटककार किसी ऐसे समीक्षक को, जो उसके पात्रो मे अस्वाभाविकता देख रहा हो, जब यह कहता हैं कि आपमे पर्याप्त कल्पनाशीलता नही हैं तो वह इसी अर्थ मे कल्पना का प्रयोग करता हैं। रिचर्ड्स इस प्रकार की कल्पना को संप्रेषण के लिए आवश्यक मानते है पर इसका कल्पना के उन अर्थों से कोई सम्बन्ध नही मानते जिनका मूल्य से मतलब हैं।

(४) आविष्कृति, यानी साधारणतया असम्बद्ध तत्त्वो को एक साथ मिलाने की क्रिया कल्पना का एक अन्य अर्थ हैं। इस अर्थ मे वैज्ञानिकों को कल्पनाशील कहा जा सकता हैं।

(५) सामान्यतः मौलिक रूप से भिन्न समझी जानेवाली वस्तुओं के जिस योग्य सम्बन्ध के उदाहरण वैज्ञानिक कल्पना मे देखे जाते है वह भी कल्पना का एक अर्थ सकेतित करते हैं। निश्चित ढग से, निश्चित उद्देश्यों की सिद्धि के लिए अनुभूतियों की व्यवस्था करने मे इसके दर्शन होते है। कलाओ की प्राविधिक (टेकनिकल), सफलताएँ इस प्रकार की कल्पना के उदाहरण हैं।

(६) कल्पना का यह अन्तिम अर्थ ही हमारे लिए सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं चूँकि यही वह काव्यात्मक कल्पना हैं जो अनुभूतियों की मूल्यवत्ता का आधार-प्रस्तुत करती हैं।

कॉलरिज के अनुसार कल्पना की विशेषताएं—रिचर्ड्स का मत हैं कि कल्पना के इस रूप का प्राथमिक और मौलिक प्रतिपादन कॉलरिज ने किया हैं जिसके एतद्विषयक मुख्य विचार उसी के शब्दों में इस प्रकार हैं· "वह सश्लेपणात्मक जादुई शक्ति, जिसे हम कल्पना का नाम देते रहे हैं, विरुद्ध या विसवादी गुणो मे सन्तुलन या समाधान लाने के रूप मे अपने को प्रकट करती हैं।···· पुरानी और परिचित वस्तुओ में नयेपन और ताजगी की चेतना उत्पन्न करना, असामान्य व्यवस्था से युक्त भावों की असामान्य स्थिति लाना, सतत जागरूक निर्णय एव उल्लास तथा प्रगाढ़ एव तीव्र भावनाओ से युक्त अविचल स्थिरचित्तता, सागीतिक आनन्द की चेतना उत्पन्न करना जिसमे समूह को प्रभाव की एकता मे

घटित करने तथा अनेक विचारों को किसी एक प्रधान विचार या भावना में परिष्कृत तथा परिवर्तित करने की शक्ति हो"[2]—ये ही कल्पना के वरदान हैं। रिचर्ड्स के अनुसार, कॉलरिज के कल्पना-सम्बन्धी इस वर्णन में काव्यात्मक और मूल्यवान् अनुभूति की अनिवार्य विशेषताओं को संकेतित करने की पर्याप्त योग्यता है। पर, उनकी रिचर्ड्स ने अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के आलोक में नयी व्याख्या की है जो नीचे प्रस्तुत है।

'सांगीतिक आनन्द की चेतना' का अर्थ— कॉलरिज ने कल्पना की व्याख्या के क्रम में जिस सांगीतिक आनन्द की चेतना (द सेंस ऑफ म्यूजिकल डिलाइट) की चर्चा की है उसकी व्याख्या करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि असम्बद्ध एवं आन्दोलित आवेगों की एक व्यवस्थित अनुक्रिया के रूप में समाहित करने की क्रिया कल्पना द्वारा सपन्न होती है और इसी से वह अनुभव प्राप्त होता है जिसे कॉलरिज सांगीतिक आनन्द की चेतना कहता है। असम्बद्ध आवेगों को व्यवस्थित अनुक्रिया के रूप में समाहित कर पाने की प्रक्रिया कवि में कैसे निष्पन्न होती है और सामान्य व्यक्तियों को यह क्यों सुलभ नहीं होती, इसका स्पष्टीकरण करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि कवि में अतीत अनुभूति की सुलभता, उद्दीपन के व्यापक क्षेत्र को स्वीकार कर पाने की योग्यता एवं अनुक्रियाओं की पूर्णता लाने की क्षमता होती है जबकि साधारण व्यक्ति अपने अधिकांश आवेगों को दबा देता है चूँकि वह उन्हें संभाल पाने में असमर्थ रहता है। कवि में अनुभूतियों को व्यवस्थित करने की जो श्रेष्ठ शक्ति होती है उसके कारण उसे आवेगों को दबाने की आवश्यकता नहीं पड़ती यद्यपि उनमें वह चुनाव अवश्य करता है। परस्पर एक-दूसरे को बाधित करनेवाले, द्वन्द्वरत और स्वतंत्र आवेग कवि में स्थिर विराम की अवस्था प्राप्त करते हैं। साधारण व्यक्ति में आवेगों का परस्पर एक-दूसरे को सपरिवर्तित करना, या व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध होना कभी-कभी ही सुलभ होता है। कला के द्वारा वह इसे प्राप्त कर पाता है, इसी कारण मानव-जीवन में कला को सर्वोच्च महत्त्व प्राप्त है।

रिचर्ड्स के अनुसार, कवि अपने आवेगों का चुनाव अचेतन रूप से करता है।

2. "That synthetic and magical power, to which we have exclusively appropriated the name of imagination ... reveals itself in the balance or reconciliation of opposite or discordant qualities. . the sense of novelty and freshness, with old and familiar objects; a more than usual state of emotion, with more than usual order; judgement ever awake and steady self-possession with enthusiasm and feeling profound or vehement" "The sense of musical delight.. ... with the power of reducing multitude into unity of effect, and modifying a series of thoughts by some one predominant thought or feeling."—*Coleridge*, BIOGRAPHIA LITERARIA II, P. 12, 14 *Quoted in* 'PRINCIPLES' P. 242

उनमें उदित होनेवाले आवेग सामान्य परिस्थितियों से प्रेरित प्रतिरोधों से मुक्त होते हैं, अनावश्यक का परित्याग आप-से-आप हो जाता है और अवशिष्ट सरल किन्तु व्यापक आवेगों पर कवि ऐसी व्यवस्था आरोपित करता है जिसे वे (आवेग) स्वीकार कर लेते है। कलाकार का व्यापार मुख्यत. उन आवेगों से चलता है जो सर्वाधिक एकरूप और नियमित रूप से आनेवाले होते है। ऐसे आवेग कला के रूपात्मक तत्वों (फॉर्मल एलिमेंट्स) से जागरित होने लायक होते है। कला मे रूपपक्ष की प्रधानता का कारण यह है कि वे अनुक्रियाओं की एकरूपता में सहायक होते हैं। रूपात्मक तत्वों की पूर्ण स्वाभाविक शक्ति जब संवेदना को पुन: प्राप्त हो जाती है तो यह चेतना जगती है कि वास्तविकता से हमारा संपर्क बढ़ गया और हम नये ढंग से कुछ शुरू कर रहे हैं। किन्तु, यह पुनःप्राप्ति ही पर्याप्त नहीं होती। रूपात्मक तत्वों के हमारे ऊपर जो विविध प्रभाव पड़ते हैं उन्हें एक उच्च-शक्ति द्वारा सम्मिलित कर एक अनुक्रिया के रूप मे ढालना आवश्यक होता है। कवि यह कर पाता है। यही वह सांगीतिक चेतना उत्पन्न करने का साधन है जिसकी चर्चा कॉलरिज ने की है। एक व्यवस्थित अनुक्रिया के रूप मे ढालने की यह क्रिया कल्पना द्वारा निष्पन्न होती है जो सभी कलाओं में देखी जाती है। पर, यह क्रिया बड़ी सूक्ष्म और अदृष्ट होती है।

कल्पना की संश्लेषणात्मक शक्ति : परस्परविरुद्धों में सन्तुलन—कल्पना के कुछ दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्य भी हैं। कल्पना कुछ वैसा प्रभाव. उत्पन्न करती है जो अनुभव के आकस्मिक प्रकट जैसा प्रतीत होता है। यह कल्पना की संश्लेषणात्मक शक्ति द्वारा संभव होता है। कॉलरिज ने "परस्परविरुद्ध या विसंवादी गुणों मे सन्तुलन या समाधान" लाने के रूप मे कल्पना की जिस संश्लेषणात्मिक शक्ति का संकेत किया है उसके उदाहरण के रूप में रिचर्ड्स ने दुःखान्तत नाटक (ट्रैजिडी) को पेश किया है।

दुःखान्त नाटक में ऐसे सन्तुलन का उत्कृष्ट निदर्शन—'परस्पर विरुद्धों' में सन्तुलन का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण उन्होंने दु.खान्त नाटकों को माना है जिनमे विरोधी आवेगों में सामंजस्य प्राप्त करने की सर्वाधिक क्षमता देखी जाती है। इसका स्पष्टीकरण करते हुए रिचर्ड्स ने दुःखान्त नाटकों से प्राप्त अनुभवों का सूक्ष्म विश्लेषण किया है और उसी के क्रम में कविता का एक नया वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया है।

दुःखान्तकी के सन्तुलन की व्याख्या—रिचर्ड्स के अनुसार, दु.खान्त नाटकों मे 'करुणा' (पिटी) और 'आतंक' (टेरर) जैसे परस्पर विरुद्ध आवेगों का सामंजस्य देखा जाता है। 'करुणा' किसी वस्तु की ओर उन्मुख करनेवाला आवेग है जबकि 'आतंक' विरत करनेवाला आवेग। इस तरह ये दोनों एक-दूसरे के विरोधी है। पर दुःखान्त नाटक मे ये साथ-साथ आकर इस तरह समाहित होते हैं जिस तरह अन्यत्र नहीं हो पाते। संभव है, इन विरोधी आवेगों के साथ-साथ अन्य

आवेगों के समूह भी उपस्थित होते हो। इन विरुद्ध आवेगों का जो सम्मिलन एक व्यवस्थित अनुक्रिया के रूप में होता है उसे हम रेचन (कैथार्सिस) कहते हैं। अरस्तू ने ट्रैजिडी की व्याख्या करते हुए जो 'रेचनसिद्धान्त' प्रतिपादित किया उसकी रिचर्ड्स ने उपर्युक्त ढंग से मनोवैज्ञानिक व्याख्या दी है। उनका कथन है कि दु.खान्त नाटकों के द्वारा मानसिक दबावों के बीच से मुक्ति, शान्ति या सन्तुलन की जो चेतना अनुभूत होती है उसकी यही व्याख्या है।

दुःखान्त अनुभव की विशेषताएँ— पूर्ण दु.खान्त अनुभव में, रिचर्ड्स के अनुसार आवेगों का दमन एकदम नहीं होता। उस अनुभव में मन किसी वस्तु से संकोच नहीं करता, निर्भीक और विश्वस्त भाव से प्रस्तुत रहता है। दु.खान्त अनुभव की सफलता की कसौटी रिचर्ड्स ने यह दी है कि मन सामने आनेवाली सारी चीजों का सामना कर पाता है या नहीं और अनुभूति की पूर्णावस्था को टाल देनेवाले तरीकों की सहायता लिये बिना अपनी अनुक्रिया व्यक्त कर पाता है या नहीं। दमन या उन्नयन ऐसे ही तरीके हैं जिनके द्वारा हम उन विषयों को टाल देते हैं जो हमें विमूढ़ कर सकते हैं। ट्रैजिडी हमें बिना दमन या उन्नयन के ही एक क्षण जीने को बाध्य करती है। ट्रैजिडी के प्रभाव का विश्लेषण करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि दु.खान्त अनुभव का प्राणभूत हर्ष इसका संकेत नहीं देता कि "संसार में सब-कुछ ठीक हो है" या "कहीं, किसी प्रकार न्याय अवश्य है।" वह इसका संकेतक होता है कि स्नायुप्रणाली के साथ सब कुछ-ठीक है। ट्रैजिडी का अनुभव उसी मन को हो सकता है जो उस क्षण के लिए अज्ञेयवादी (एग्नॉस्टिक) बन सके। किसी धार्मिकता का क्षीण स्पर्श भी, जो दु.खान्त नाटक के नायक को क्षतिपूर्ति के रूप में स्वर्ग प्रदान करता है, इस अनुभव के लिए घातक सिद्ध होता है। इसीलिए 'किंग लियर' जिस अर्थ में ट्रैजिडी है उस अर्थ में 'रोमियो-जूलियट' नहीं।

दु.खान्त नाटक के अनुभव की मौलिक विशेषता रिचर्ड्स के मत में वह सतुलित विरामावस्था (बैलैंस्ड प्वाइज) है जो सभी प्रकार के आवेगों के निर्बाध प्रवेश को स्वीकार करती है। यह असाधारण, स्थिर अनुभव 'करुणा' और 'आतंक' के विरोधी आवेगों के सन्तुलन से ही निष्पन्न होता है। इसके स्थान पर यदि 'करुणा' और 'भयानकता' (हॉरर) को डाल दें तो इस अनुभव का रूप ही परिवर्तित हो जायगा। कारण, 'करुणा' और 'आतंक' (टेरर) में जो विरोध है वह 'करुणा' और 'भयानकता' (हॉरर) में नहीं। 'हॉरर' में किंचित् उन्मुखता भी रह सकती है पर 'आतंक' में एकदम नहीं। इसी कारण 'करुणा' (पिटी) का 'आतंक' में जैसा आत्यन्तिक विरोधभाव है वैसा 'भयानकता' से नहीं। इस आत्यन्तिक विरोध का जो सन्तुलन और समाधान दु.खान्त नाटक में होता है उसके कारण उसके अनुभव में असाधारण वैशिष्ट्य आ जाता है। रिचर्ड्स ट्रैजिडी को सर्वाधिक सामान्य, सर्वस्वीकर्त्री और सर्वव्यवस्थापिकी अनुभूति मानते हैं। अपनी व्यवस्था में यह किसी को भी

परिवर्तित करके स्वीकार कर लेती हैं। जिस दुःखान्त अनुभव को पैरोडी या व्यंग्य का ममावेश नष्ट कर दे वह सच्चे अर्थ में दुःखान्त अनुभव नहीं है। चूँकि उसमे अन्तर्वेशन (इन्क्लूजन) की अपरिमित क्षमता होती है।

आवेगों का अपवर्जन और अन्तर्वेशन—ट्रैजिडी में उपलब्ध सतुलित विरामावस्था, जो अपवर्जन के द्वारा नहीं, अन्तर्वेशन की शक्ति द्वारा स्थिर रहती हैं, रिचर्ड्स के अनुसार, केवल ट्रैजिडी की ही विशेषता नहीं है, वह मूल्यवान् अनुभूतियों की सामान्य विशेषता है। ऐसी अनुभूति किसी भी वस्तु से, किसी सॉनेट या लघु कविता से भी प्राप्त हो सकती हैं। इसका कारण वस्तु की विरोधी विशेषताओं में नहीं ढूंढना चाहिए, चूँकि यह सतुलन उद्दीपक वस्तु के ढाँचे में न होकर अनुक्रिया में निहित रहता है। यह सतुलनात्मक अनुभूति अधिकांश व्यक्तियों के जीवन में कम आती है। इसके लिए मानसिक स्वास्थ्य, उच्च स्तर की सतर्कता तथा अतीत में इसकी आवृत्ति आवश्यक हैं। कला के द्वारा यह सतुलन या साम्यावस्था (इक्वीलिब्रियम) सक्रमित होती है।

सौन्दर्यानुभूति की विशेषताओं के दो वर्ग : (१) निर्वैयक्तिकता, तटस्थता, निरभिरोचन या निःस्वार्थता—उपर्युक्त पूर्ण और सुन्दर मनोव्यवस्था की सभी स्थितियों में कुछ समानताएँ है यद्यपि आवेगो की दृष्टि से उनमें भिन्नता रहती है। इन समानताओं के आधार पर कलावादी या सौन्दर्यवादी समीक्षकों ने एक विशिष्ट 'सौन्दर्यात्मक अवस्थिति' (इस्थेटिक स्टेट) या 'सौन्दर्यात्मक भाव' (इस्थेटिक इमोशन) की कल्पना की हैं। ये लोग उक्त समानताओ को 'सौन्दर्य' की विशेषताएँ मानते हैं। रिचर्ड्स सौन्दर्यानुभूति की इन विशेषताओ को दो वर्गों में बाँटते हैं। उनका कथन है कि इन विशेषताओ का एक वर्ग वह है जो भावसचार की आवश्यक शर्त्त भर है और मूल्य से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ये विशेषताएँ मूल्यवान् और मूल्यहीन भावों के सप्रेषण में समानत पायी जाती है, निर्वैयक्तिकता (इम्पर्सनैलिटी), निलिप्तता (डिटैचमेंट) तथा निःस्वार्थता (डिस्इन्टरेस्टेडनेस्) सौन्दर्यानुभूति की ऐसी ही विशेषताएँ है जिनका काव्यानुभूति के मूल्य से रिचर्ड्स सम्बन्ध नहीं मानते, उन्हें सप्रेषण के लिए आवश्यक शर्त्त भर मानते हैं। तथापि मूल्यवान् भावो के सप्रेषण के लिए ये विशेषताएँ विशेष उपयोगी प्रमाणित होती हैं।

(२) अपवर्जन एवं अन्तर्वेशन : इनके आधार पर दो प्रकार की कविताएँ—सौन्दर्यानुभूति की विशेषताओं का दूसरा समूह वह है जो अनुभवों के मूल्य के विशिष्ट क्षेत्र की व्याख्या कर सकता है पर जिसे प्राय सप्रेषण की शर्त्त समझा जाता है। इन विशेषताओ की व्याख्या करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि आवेगो को दो प्रकार से व्यवस्थित किया जा सकता है—अपवर्जन (एक्सक्लूजन) द्वारा और अन्तर्वेशन (इन्क्लूजन) द्वारा, यानी उनमें से कुछ को मिटाकर या उनका सश्लेषण कर के। यद्यपि मन की सलग्न स्थिति दोनों पर निर्भर है

पर दोनों ढग मे अन्तर यह है कि एक (प्रथम) अनुक्रियाओं को सीमित करता है जबकि दूसरा उन्हे व्यापक बनाता है। कविता और कला का अधिकाश हिस्सा शोक, हर्ष या अह जैसे निश्चित भावो या प्रेम, रोष, प्रसन्नता, आशा जैसी निश्चित अभिवृत्तियां या अवसाद, आशावादिता या कामना जैसी विशिष्ट मनोदशाओ मे युक्त अपेक्षाकृत विशिष्ट और सीमित अनुभूतियों के पूर्ण एव व्यवस्थित विकास से सतोष कर लेता है। ऐसी कला का अपना मूल्य है और मानवीय व्यापारों मे उसका स्थान भी है। 'ब्रेक, ब्रेक, ब्रेक' जैसी कविता इसी प्रकार की सीमित और अपवर्जी कविता (पोयट्री ऑफ एक्सक्लूजन) का उदाहरण है। रिचर्ड्स ऐसी कविताओ को सर्वाधिक उत्कृष्ट कोटि की वैसी रचना नहीं मानते जिस तरह की रचना का उदाहरण 'ओड टु द नाइटिंगेल' या 'द डेफिनीशन ऑफ लव' है। इन दो प्रकार की कविताओ मे अनुभूति का ढाँचा भिन्न रहता है और यह भिन्नता केवल विषय की नहीं होती, अनुभूति मे सक्रिय आवेगो के सम्बन्ध की होती है। प्रथम प्रकार की कविताएँ ऐसे आवेगों से निर्मित होती हैं जो एक ही दिशा मे समानान्तर गतिशील होते हैं जबकि दूसरे वर्ग की कविताओ के आवेगो मे असाधारण विजातीयता (हेटरोजिनिटी) होती है। उनके आवेग विजातीय ही नहीं, विरुद्ध भी होते हैं। वे ऐसे होते हैं जिनमे से एक समूह को काव्येतर अनुभूति मे दूसरे के मुक्त विकास के लिए दबना पड़ता है। रिचर्ड्स ने इन दो प्रकार की कविताओं का अन्तर अन्य ढग से भी दिखाया है। उनका कहना है कि ऐकान्तिक कविताएँ अस्थिर होती हैं और व्यग्यपूर्ण भावन (आयरोनिक कटेम्प्लेशन) को नहीं सह पाती। रिचर्ड्स का मत है कि जो कविताएँ व्यग्य को बर्दाश्त कर पाती हैं वे उच्च कोटि की होती हैं। व्यग्य को वे उच्चकोटि की कविता को विशेषता मानते हैं। अन्तर्वेशनवाली कविता (पोयट्री ऑफ इन्क्लूजन) को इसीलिए उच्चकोटि की कविता रिचर्ड्स मानते हैं कि वह व्यग्य को बर्दाश्त करने की क्षमता रखती है।

निरभिरोचन या निःस्वार्थता की व्याख्या—आवेगो के सतुलन या समाधान तथा उनकी प्रतिद्वन्द्विता या सघर्ष का एक अन्तर रिचर्ड्स यह बताते है कि सतुलन एक मन.स्थिति को धारण करता है जबकि सघर्ष दो को। परस्परविरुद्ध आवेगो के सतुलन की, जिसे रिचर्ड्स सर्वाधिक मूल्यवान् सौन्दर्यात्मक अनुक्रियाओ का आधार मानते हैं, विशेषता यह होती है कि वह निश्चित भावो से युक्त अनुभवों की अपेक्षा हमारे व्यक्तित्व के अधिक अग को सक्रिय बनाता है। हम किसी एक निश्चित दिशा मे प्रवृत्त नहीं होते अपितु मन के अधिकाधिक पक्ष हमारे सामने स्पष्ट हो जाते है जिसका अर्थ है कि वस्तुओं के अधिक-से-अधिक पक्ष हमे प्रभावित करते हैं। 'निरभिरोची' या नि स्वार्थ (डिस्इण्टरेस्टेड) होने का एकमात्र अर्थ किसी एक सकीर्ण मार्ग के द्वारा अपनी अनुक्रियाओं को व्यक्त न करके एक साथ और सलग्नतापूर्वक अनेक मार्गों पर उन्हे व्यक्त करना है। जो मन.स्थिति

निरभिरोची नही है वह वस्तुओं को एक ही दृष्टिकोण से या उनके एक ही पक्ष को देखती है। निरभिरोची मन.स्थिति मे हमारे व्यक्तित्व का अधिक अग व्यापृत (इगेज्ड) होता है अत अन्य वस्तुओ की वैयक्तिकता और स्वतंत्रता बढ़ जाती है। ऐसी मन.स्थिति मे हम वस्तुओ को सर्वांगीणतः और उनके तद्गत रूप मे देखते हैं। वस्तुओ को बिना किसी अभिरुचि के देख पाने को निरभिरोचन नही कहते। किसी एक अभिरुचि मे उन्हे न देखने को निरभिरोचन कहते हैं। यानी, एक विशिष्ट अभिरुचि की दृष्टि से वस्तुओं को अपने उपयोग की समझने की मन.स्थिति से भिन्न मन.स्थिति निरभिरोचन है पर उसमे अभिरुचिशून्यता नही है। एक विशिष्ट अभिरुचि जितनी कम हमारे लिए अनिवार्य होगी, हमारी अभिवृत्ति उसके प्रति उतनी ही अधिक तटस्थ या नि.सग (डिटैच्ड) होगी। रिचर्ड्स के अनुमार, इसीलिए यह कहना कि हम निर्वैयक्तिक है, यह कहने का कि हमारा व्यक्तित्व अधिक पूर्णता से सलग्न है, एक विचित्र ढग है। इस प्रकार निरभिरोचन, तटस्थता या नि सगता तथा निर्वैयक्तिकता के रूप मे सौन्दर्यानुभूति की जो विशेषताएँ बतायी जाती हैं उन्हे रिचर्ड्स अनुभूति के सघटको की विविधता का स्वाभाविक परिणाम बताते हैं। चूँकि सौन्दर्यानुभूति की विशेषता है परस्पर-विरुद्धो का सतुलन, फलतः ऐसे सतुलन मे अनेक प्रकार के अनेक आवेगों का प्रवेश होगा ही। रिचर्ड्स ने उक्त सतुलन की स्थिति को असकल्प (इरिजॉल्यूजन) की स्थिति से भिन्न बताया है। असकल्प की स्थिति मे आन्दोलित आवेगों की घूर्णावस्था या सभ्रममयी स्थिति रहती है, पर सतुलन की स्थिति मे यह अवरुद्धता नही होती।

सतुलित अनुभूतियो के क्षण मे जो चेतना उत्पन्न होती है वह अनिवार्यतः सर्वातिशायी (ट्रान्सेंडेटल) वर्णन को प्रेरित करती है। हम विमूढता से मुक्त होकर वस्तुओ को जिस रूप मे देखते हैं उससे दुर्बोध्य ससार का बोझ हल्का हो जाता है। वर्ड्सवर्थ ने 'टिंटर्न ऐबी' मे कविता की काल्पनिक अनुभूति की जो सर्वात्मवादी व्याख्या दी है वह भिन्न रूपो मे अनेक कवियो और समीक्षको द्वारा दी गयी है। रिचर्ड्स का दावा है कि उन्होने काल्पनिक अनुभूति की जो व्याख्या दी है और जिसे ऊपर प्रस्तुत किया गया है वह सर्वातिशायी व्याख्याओ से भिन्न वैज्ञानिक व्याख्या है। इन विभिन्न व्याख्याओं (सर्वातिशायी और वैज्ञानिक) का अन्तर रिचर्ड्स के अनुसार भाषा के दो भिन्न-भिन्न प्रयोगो का अन्तर है। भाषा के इन द्विविध प्रयोगों के अन्तर को रिचर्ड्स के आधार पर आगे उपस्थित किया जायगा।

कला, क्रीड़ा और सभ्यता

कला का मानव-जीवन में क्या महत्त्व है तथा मानवीय सभ्यता के विकास में उसका क्या सम्बन्ध है, इस विषय पर समीक्षकों में मतैक्य नहीं देखा जाता। कुछ लोग कला के शैक्षणिक पक्ष पर अधिक बल देते हुए स्थूल नैतिक उपदेशों या संदेशों को कला में ढूंढ़ते हैं और उन्हीं के आधार पर उसका मूल्यांकन करते हैं। दूसरी तरफ वे समीक्षक हैं जो कला को क्रीडावृत्ति से सम्बद्ध करते हुए उसके प्रयोजन को हल्का समझे जाने का भ्रम पैदा करते हैं। रिचर्ड्स ने इन प्रश्नों पर विचार करते हुए कला का मानवीय सभ्यता में क्या स्थान और महत्त्व है, इसे स्पष्ट किया है। 'प्रिंसिपुल्स' के इकतीसवें अध्याय का यही प्रतिपाद्य है। प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं विषयों से सम्बद्ध रिचर्ड्स के विचारों का परिचय दिया गया है।

रिचर्ड्स के अनुसार, कला वह साधन है जिससे कलाकार को दो प्रकार से अत्यधिक शक्ति मिलती है : (१) सामान्य जीवन-क्रम में सचय और केन्द्रण का वह रूप उसे सुलभ होना कठिन है जिसके लिए कला उसे अवसर प्रदान करती है; (२) कला वह साधन प्रस्तुत करती है जिसके द्वारा मानवीय प्रयत्नों को विज्ञान की तरह का ही, किन्तु उससे अधिक सूक्ष्म ढग का, नैरन्तर्य प्राप्त होता है। कला का महत्त्व यहीं तक सीमित नहीं है। वह और भी अधिक व्यापक है।

कला के शैक्षिक पक्ष पर प्राय: बल दिया जाता है। किन्तु, इसका स्थूल रूप स्थूल संदेशों के अनुसधान में देखा जाता है। जो लोग 'मैकबेथ' का संदेश 'ईमानदारी सबसे अच्छी नीति है', 'ऑथेलो' का 'कुछ भी करने के पहले अच्छी तरह सोच लो', 'किंग लियर' का 'पापी अन्तत: प्रकट होता ही है' जैसे नैतिक सूत्रों को मानते हैं वे कला को जीवन की आलोचना माननेवाले सूत्र का ऐसा उपहासास्पद विनियोग प्रस्तुत करते हैं जिससे कलावादी सिद्धान्त से भी ज्यादा नुकसान पहुँचता है। रिचर्ड्स यह नहीं कहते कि कला का कोई शैक्षिक प्रभाव होता ही नहीं। उनके अनुसार, सूक्ष्म रूप से कला का शैक्षिक प्रभाव सर्वव्यापी होता है। अच्छी कलाओं का ही नहीं, बुरी कलाओं का भी शैक्षिक प्रभाव पड़ता है। कला के प्रत्यक्ष शैक्षिक प्रभाव के विषय में रिचर्ड्स ने उन्नीसवीं सदी के एक उपन्यासकार का मत उद्धृत किया है जो इस प्रकार है : "उच्च तथा मध्य वर्ग के युवकों का बहुत बड़ा हिस्सा अपनी नैतिक शिक्षा उन उपन्यासों से प्राप्त करता है जिन्हें वह पढ़ता है। माताएँ समझती हैं कि उनकी मधुर शिक्षा का असर हो रहा है,

पिता समझते हैं कि जिन आदर्शों को वे अपने चरित्र के द्वारा सामने रख रहे हैं उनका अनुकरण हो रहा है और स्कूल के शिक्षक समझते हैं कि उनके उपदेशों का लाजवाब असर हो रहा है। ऐसा देश सुखी है जहाँ ऐसी माताएँ, ऐसे पिता और ऐसे स्कूल के शिक्षक विद्यमान हैं; लेकिन हकीकत यह है कि इन सबों में ज्यादा उपन्यासकार इन युवकों के घनिष्ठ सपर्क मे रहता है। उसे ही निर्देशक के रूप में चुना जाता है। नौजवान उसे ही अपना शिक्षक मानता है। नवयुवतियाँ उससे (उपन्यासकार से) प्रेम की शिक्षा लेती हैं।"

पर, रिचर्ड्‌स कला का प्रभाव इससे अधिक अप्रत्यक्ष ढग का मानते हैं। उनका कथन है कि यह कोई जरूरी नहीं है कि कला से प्राप्त अनुभूति तथा उस अनुभूति के द्वारा परिष्कृत हुए व्यवहार में कोई लक्ष्य सम्बन्ध हो ही। ऐसे सम्बन्ध या समानता के अभाव में भी कला के प्रभाव को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। जो लोग अभिवृत्तियों के विकास के ढग से परिचित हैं वे कला के प्रत्यक्ष प्रभाव को ही सब-कुछ नहीं समझ सकते। उनकी नजर में कला का अप्रत्यक्ष प्रभाव अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। अच्छी या बुरी कला का प्रत्यक्ष अनुकरण के रूप में ही सुप्रभाव या दुष्प्रभाव नहीं होता। असल में अभिवृत्तियों के निर्माण के रूप में कलाओं का ज्यादा गहरा असर होता है।

कला के प्रत्यक्ष प्रभावों को महत्त्व देनेवालों के अलावा एक वह वर्ग है जो उसे क्रीड़ा से सम्बद्ध मानता है। कला के क्रीडासिद्धान्त (प्ले थियरी) के प्रतिष्ठापक ग्रूस तथा हर्बर्ट स्पेन्सर हैं। रिचर्ड्‌स का मत है कि अन्य सौन्दर्यसिद्धान्तों की तरह कला को क्रीड़ा का रूप मानने वाला सिद्धान्त भी या तो बहुत गहरा या बहुत उथला मत है। मुख्य बात यह है कि क्रीड़ा का अर्थ क्या लिया जाता है। मूलतः कला को क्रीड़ा माननेवाला मत अतिजीवितापरक मूल्यों (सरवाइवल वैल्यू) के सम्बन्ध मे उत्पन्न हुआ। ऐसा सोचा गया कि कला का व्यावहारिक मूल्य तो बहुत थोड़ा है अतः कोई ऐसा अप्रत्यक्ष तरीका ढूँढ़ा जाय जिसके द्वारा इसकी उपयोगिता स्पष्ट हो। क्रीड़ा की तरह कला भी अतिरिक्त ऊर्जा (एनर्जी) को खर्च करने का गैरनुकसानदेह साधन है, ऐसा माना गया।

ऐसी अनेक मानवीय क्रियाएँ हैं जिनकी सभ्य मनुष्य से न तो अपेक्षा है और न जो उसके लिये सभव ही हैं। तथापि उनका पूर्ण परित्याग बड़ी गड़बड़ी पैदा कर सकता है। ऐसी क्रियाओं के लिए क्रीड़ा अवसर प्रदान करती है। कला स्थानापन्न अनुभूतियों के द्वारा कुछ इसी तरह का निकास प्रस्तुत करती है, ऐसा हैवलॉक एलिस का मत है। उनका कथन है कि हम मादक, विलासपूर्ण रंगोत्सवों को छोड़ चुके हैं पर उनकी जगह हमें कला प्राप्त है। रिचर्ड्‌स का कथन है कि यदि फ्रायड के उदात्तीकरण के सिद्धान्त को दूर तक न खींच ले जायें तो कुछ स्थितियों में एलिस की व्याख्या सगत है। पर, इस व्याख्या के विस्तार का प्रलोभन और पूरी बात को गलत समझ लेने का भी खतरा कम नहीं है। जबतक सावधान

दशम अध्याय

कला और सत्य

स्वदेश-विदेश की समीक्षा में इस मान्यता का बहुत प्रचलन रहा है कि कला का महत्त्व सत्य के साक्षात्कार या सत्य के उद्‌घाटन की दृष्टि से है। कला सत्य, शिव, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति है, ऐसे वाक्य प्रायः हमारे यहाँ आधुनिक समीक्षा मे सुने जाते हैं। पश्चिम में भी अरस्तू से लेकर आधुनिक युग तक के अनेक समीक्षकों के द्वारा कला की सत्योद्‌घाटन-क्षमता पर अनेक भावपूर्ण उद्‌गार व्यक्त किये गये हैं। प्रथम अध्याय में कहा जा चुका है कि रिचर्ड्स कला का मूल्य ज्ञान-प्राप्ति की दृष्टि से न देखकर उसकी रागपरकता में देखते हैं। उनकी आलोचना को इसीलिए 'रागपरक आलोचना' (एफेक्टिव क्रिटिसिज्म) कहते हैं। कला को वे सत्य के उद्‌घाटन के साधन के रूप में महत्त्व नहीं देते। आवेगों की सामंजस्यमयी व्यवस्था से उनको जो अधिकतम संतुष्टि मिल सकती है उसे ही वे कला के मूल्य का आधार मानते हैं। उनका पक्ष है कि कला के द्वारा हमारी व्यवस्थित अनुक्रियाओं के स्तर का जो उन्नयन होता है, इसमें मूल्यवान् अभिवृत्तियों का जो निर्माण होता है उससे अस्तित्व की अनेकविध सभावनाओं के स्पष्ट और निर्भ्रान्त दर्शन होते हैं तथा उसकी सार्थकता और मूल्य का व्यापक बोध प्राप्त होता है। कलात्मक अनुभव की इन विशेषताओं के कारण ही, जिन्हें मानसिक व्यापारों की सूक्ष्मता का पूर्ण ज्ञान नहीं है उन्हें, ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य के किसी विशिष्ट रूप का उद्‌घाटन (रेभिलीशन) कलाओं के द्वारा होता है। समीक्षा में भाषा के वैज्ञानिक प्रयोग तक ही सीमित न रहने के कारण ऐसी मिथ्याप्रतीतियों का भावुकतापूर्ण प्रतिपादन होता है और उनका प्रभाव भी देखा जाता है। ऐसे प्रतिपादनों में भारी-भरकम शब्दों का ऐसा आडम्बर देखने को मिलता है कि साधारण व्यक्ति पर उनका जादू असर कर जाता है। परिणामत. विचारों के क्षेत्र में गड्डलिका-प्रवाह चल पड़ता है।

'प्रिंसिपुल्स' के अन्तिम तीन अध्यायों में रिचर्ड्स ने कला के सत्योद्‌घाटन-सिद्धान्तों की परीक्षा करते हुए भाषा के द्विविध प्रयोगों का, सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक व्यापारों के विश्लेषण के आधार पर, अन्तर स्पष्ट किया है तथा काव्य के सदर्भ में 'सत्य' शब्द की अर्थवत्ता क्या है, इसपर प्रकाश डाला है। कविता में विश्वासों की अभिव्यक्ति के विषय में भी उन्होंने अपने मन्तव्य प्रकट किये हैं।

कला के सत्योद्‌घाटन-सिद्धान्तों की उत्पत्तिप्रक्रिया की व्याख्या करते हुए रिचर्ड्स

का कथन है कि जीवन में हम ज्ञान को अच्छी वस्तु मानते हैं, अत. यह स्वाभाविक है कि काव्यानुभूति से ज्ञान की प्राप्ति होती है, ऐसी मान्यता चल पड़े। इस मान्यता के आधार पर काव्यालोचन मे एक परपरा चल पडी है जो ज्ञान के मूल्य के आधार पर काव्यानुभूति के मूल्य का निर्धारण करती है। चूंकि सभी प्रकार के ज्ञान समानतः मूल्यवान् नही होते, अत. एक विशिष्ट प्रकार के ज्ञान की कल्पना की गयी है। सत्यविषयक सिद्धान्तो मे 'यथार्थ', 'आदर्श', 'अनिवार्य', 'परम', 'निरपेक्ष', 'मौलिक' जैसे शब्दों का प्रयोग इस बात का सूचक है कि आलोचना मे कुछ लोगों की ज्ञानविषयक अभिरुचि कितनी ज्यादा रहती है। रिचर्ड्स इन शब्दों की सार्थकता आलोचना मे केवल इस दृष्टि से मानते हैं कि ये वक्ता के द्वारा अपनी बात पर बल देने के साधन है, जिस तरह लेखन मे इटैलिक्स बल देने के साधन होते हैं। इन शब्दो से सकेत यह दिया जाता है कि पाठक या श्रोता को गंभीर और सावधान होना चाहिए। कार्लाइल, पेटर, अरस्तू, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज तथा मिड्लटन मरी के सत्यविषयक सिद्धान्तवाक्यो को उद्धृत करते हुए रिचर्ड्स ने यह दिखाया है कि उनमे कितनी अस्पष्टता भरी पड़ी है। उनमे सत्यसम्बन्धी धारणाओं के इतिवृत्तात्मक रूप से लेकर रहस्यात्मक रूप तक के दर्शन होते हैं। रिचर्ड्स के अनुसार, श्रेष्ठ कलाओं के अनुभवों से जो तात्कालिक उद्बोध प्राप्त होता है उसे आलोचक वह मौलिक तत्त्व मान लेता है जिससे साहित्य का निर्माण होता है। वह ऐसे दृष्टिसपन्न (विजनरी) क्षणो के आधार पर उस दर्शन का निर्माण कर लेता है जिसमे उसकी अविचल आस्था रहती है। ऐसे दर्शन से उसे भावात्मक सतोष प्राप्त होता है। पर, रिचर्ड्स का मत है कि बौद्धिक बन्धन की कीमत पर प्राप्त होनेवाला भावना का सतोष अस्थिर होता है।[1] इसीलिए आस्था टूट जाती है और मुक्त, जिज्ञासात्मक मन ऐसी रहस्यात्मक सहजानुभूतियो को फेंक देता है। रिचर्ड्स का मत है कि सत्य-सम्बन्धी जो कथन सत्योद्घाटन-सिद्धान्तो मे मिलता है उसका अभिप्राय वही नही होता जो ऊपर से प्रतीत होता है। असल मे ऐसे वाक्य कलाओ के मूल्य की व्याख्या करते हैं पर उन्हें वैज्ञानिक प्रतिपादन के रूप मे अनूदित करना आसान नही होता। उन वाक्यों की व्याख्या करते समय भाषा के विभिन्न प्रयोगों पर ध्यान रखना होता है चूँकि उनमे भाषा के एक खास ढग का प्रयोग हुआ है, जिसे भावात्मक प्रयोग कहेंगे।

भाषा के द्विविध प्रयोग— रिचर्ड्स के अनुसार, भाषा के दो पूर्णतया स्पष्ट विभिन्न प्रयोग हैं जिनके अन्तर को समझना काव्यसिद्धान्तो के सम्यक् बोध के लिए वे आवश्यक मानते हैं। अपनी पुस्तक 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' मे ही भाषा के द्विविध प्रयोगों का अन्तर रिचर्ड्स सकेतित कर चुके थे। वहाँ उन्होने इन द्विविध

1. But emotional satisfaction gained at the cost of intellectual bondage is unstable —PRINCIPLES, P. 259.

प्रयोगों के नाम 'प्रतीकात्मक (सिम्बॉलिक) प्रयोग' तथा 'रागात्मक या भावात्मक (इमोटिव) प्रयोग' दिये हैं। 'प्रिंसिपुल्स' में प्रथम को 'वैज्ञानिक या अभ्युद्देशनात्मक (साइंटिफिक ऑर रेफरेंसियल) प्रयोग' के नाम से अभिहित किया गया है और 'सिम्बॉलिक' अभिधान को छोड़ दिया गया है। दूसरे प्रयोग का नाम यहाँ भी 'रागात्मक' (इमोटिव) ही है। 'प्रिंसिपुल्स' में रिचर्ड्स ने भाषा के इन द्विविध प्रयोगों के अन्तर को इनसे सम्बद्ध विभिन्न मानसिक क्रियाओं के अन्तर के आधार पर स्पष्ट किया है। इस तरह 'प्रिंसिपुल्स' भाषा के द्विविध प्रयोगों के मूलभूत मानसिक व्यापारों के विश्लेषण की दृष्टि से 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' से आगे है।

मानसिक व्यापारों का जो खाका 'प्रिंसिपुल्स' के ग्यारहवें अध्याय में रिचर्ड्स ने खींचा है और जिसे प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम अध्याय में समाविष्ट किया गया है उसमें मन के विषय में प्रचलित आम धारणाओं से रिचर्ड्स की प्रमुख असहमति इस बात को लेकर व्यक्त हुई है कि उन्होंने ज्ञान, भावना और इच्छा नामक मन के विविध पक्षों को मानसिक घटनाओं के कारण, विशेषता और परिणाम के द्वारा स्थानापन्न किया है। रिचर्ड्स ने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने ऐसा भाषा-सम्बन्धी प्रस्तुत प्रकरण के विश्लेषण की दृष्टि से किया है। उद्दीपन के स्वरूप की जो व्याख्या 'प्रिंसिपुल्स' के ग्यारहवें अध्याय में की गयी है और जिसे प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है उसका औचित्य और सार्थकता भाषाविवेचन के प्रकरण की दृष्टि से है, यह स्पष्ट है। वहाँ यह देखा जा चुका है कि रिचर्ड्स मानसिक घटनाओं के कारणों में दो विभिन्न समूह देखते हैं जिनमें अन्तर देखना वे आवश्यक मानते हैं। कारणों के इन दो अलग-अलग समूहों में एक तरफ तो वे वर्तमान उद्दीपन हैं जो ऐन्द्रिय स्नायुओं के द्वारा मन तक पहुँचते हैं जिनसे सम्बद्ध व्यतीत उद्दीपनों का प्रभाव भी साथ-साथ पहुँचता है और दूसरी तरफ जीव की अपनी स्थिति, उसकी आवश्यकताएँ, इस या उस उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया प्रकट करने की उसकी तत्परता जैसे कारण रहते हैं। उत्पन्न होनेवाले आवेग इन दोनों कारणसमूहों के आपसी घात-प्रतिघात से अपनी विशेषताएँ प्राप्त करते हैं। इन मानसिक कारणसमूहों के अन्तर को ध्यान में रखना जरूरी है। दोनों प्रकार के कारणसमूहों के आपेक्षिक महत्त्व में बहुत बड़ा अन्तर है। पूरा भूखा आदमी सामने जो-कुछ आयेगा, निगल जायेगा। खाद्य पदार्थ की प्रकृति उसके व्यवहार पर बहुत कम असर डालेगी। किन्तु, कोई तृप्त व्यक्ति वही खायगा जो उसके लिए सुस्वादु होगा या बहुत लाभप्रद होगा, जैसे दवा। इस तरह, इस दूसरे व्यक्ति का व्यवहार पूर्णतः उसके चाक्षुष या घ्राणीय उद्दीपनों की विशेषताओं पर निर्भर करेगा जबकि प्रथम व्यक्ति का व्यवहार उसकी अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुसार होगा।

जिस सीमा तक कोई आवेग अपनी विशेषता के लिए अपने उद्दीपन के प्रति ऋणी है, वहाँ तक वह 'अभ्युद्देशन' (रैफरेंस) है। 'विचार' या 'सज्ञान' के

स्थान पर मानसिक घटना के जिस तत्त्व को रिचर्ड्स ने स्वीकार किया है उसी के लिए वे 'अभ्युद्देशन' शब्द को वाचक मानते हैं। जीव की आन्तरिक स्थिति सामान्यतः 'अभ्युद्देशन' को कुछ मात्रा तक अदल-बदल डालने के लिए हस्तक्षेप करती है, किन्तु हमारी बहुत सारी आवश्यकताएँ आवेगों को अविकृत छोड़कर भी संतुष्ट की जा सकती हैं। कटु अनुभवों के कारण हम आवेगों को अपनी आन्तरिक स्थिति, आवश्यकता और इच्छाओं से यथासंभव अप्रभावित रखने और उन्हें बाह्य परिस्थितियों के अनुरूप होने देने के लिए छोड़ देना सीख जाते हैं।

उद्दीपन और उनके उपयोग के हमारे ढंग में कैसे अन्तर रहता है, यह हमारे सभी व्यवहारों में देखा जा सकता है। हम किसी भी प्रकार का उद्दीपन प्राप्त कर सकते हैं पर जब हम उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं और वह प्रतिक्रिया उद्दीपन की प्रकृति से समानता रखती है, तभी 'अभ्युद्देशन' घटित होता है। आवश्यकताओं और इच्छाओं के द्वारा अभ्युद्देशन किस मात्रा तक प्रभावित होता है, यह बहुत लोगों द्वारा ठीक से नहीं समझा जाता है। अत्यन्त सामान्य और परिचित वस्तुओं का प्रत्यक्षण भी हम इस रूप में करते हैं जिससे हमें प्रसन्नता मिले, न कि उनके यथावत् रूप में। इसीलिए, किसी भी व्यक्ति के लिए अपने विषय में या उस व्यक्ति के विषय में जिसमें उसकी अभिरुचि है, सही धारणा बना पाना प्रायः असंभव होता है। रिचर्ड्स इसे वांछनीय भी नहीं मानते। कारण, यह आसान नहीं है कि इन दो क्षेत्रों को एक-दूसरे से अलग रखा जाय : (१) जिसमें आवेग बाह्य परिस्थितियों पर पूर्णतः निर्भर हो और 'अभ्युद्देशन' को प्राथमिकता प्राप्त हो और (२) जिसमें 'अभ्युद्देशन' एषणाओं के अधीनस्थ हो। इसीलिए 'प्रेम' की ऐसी बहुत-सी धारणाओं के विषय में कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता जो अभ्युद्देशन को भावनात्मक संतुष्टि के अधीन बना देती हैं। इसके विरुद्ध सत्य के उपासकों की यह दलील हो सकती है कि सत्य सभी अन्य बातों की अपेक्षा जीवन में मुख्य वस्तु है अतः जो वस्तु सत्य का आधार न रखे उसे हमें उपेक्षा की दृष्टि से देखना चाहिए। ऐसे लोगों के अनुसार, जिस प्रेम को ज्ञान का आधार प्राप्त न हो उसे मूल्यहीन समझना चाहिए। जो वस्तुतः सुन्दर न हो, वह हमारी बीवी ही क्यों न हो, उसकी तारीफ नहीं करनी चाहिए, कारण, यह सत्य के विरुद्ध जाना है। बीवी की तारीफ ही करनी हो तो तारीफ के लायक अन्य सच्ची बातों के आधार पर तारीफ करनी चाहिए। रिचर्ड्स ऐसे विचारों को भ्रममूलक मानते हैं। उनका कथन है कि ऐसे मतों के पीछे यह भ्रान्त धारणा है कि सौन्दर्य वस्तु की आन्तरिक योग्यता है और 'शिव' या 'हित' अव्याख्येय विचार। रिचर्ड्स 'सुन्दर' को वस्तु का धर्म न मानकर मन का धर्म मानते हैं जो आवेग-सामंजस्य से प्रतिफलित होता है। उपर्युक्त मतों को मानने का कारण रिचर्ड्स यह बताते हैं कि वे ऐसे भावनात्मक दृष्टिकोण होते हैं जिनसे भावात्मक संतोष प्राप्त होता है। किसी वस्तु को अच्छी या सुन्दर समझने से हमें तात्कालिक रूप

प्रयोगों के नाम 'प्रतीकात्मक (सिम्बॉलिक) प्रयोग' तथा 'रागात्मक या भावात्मक (इमोटिव) प्रयोग' दिये हैं। 'प्रिंसिपुल्स' में प्रथम को 'वैज्ञानिक या अभ्युद्देशनात्मक (साइंटिफिक ऑर रेफरेंशियल) प्रयोग' के नाम से अभिहित किया गया है और 'सिम्बॉलिक' अभिधान को छोड़ दिया गया है। दूसरे प्रयोग का नाम यहाँ भी 'रागात्मक' (इमोटिव) ही है। 'प्रिंसिपुल्स' में रिचर्ड्स ने भाषा के इन विविध प्रयोगों के अन्तर को इनसे सम्बद्ध विभिन्न मानसिक क्रियाओं के अन्तर के आधार पर स्पष्ट किया है। इस तरह 'प्रिंसिपुल्स' भाषा के द्विविध प्रयोगों के मूलभूत मानसिक व्यापारों के विश्लेषण की दृष्टि से 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' से आगे है।

मानसिक व्यापारों का जो खाका 'प्रिंसिपुल्स' के ग्यारहवें अध्याय में रिचर्ड्स ने खींचा है और जिसे प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम अध्याय में समाविष्ट किया गया है उसमें मन के विषय में प्रचलित आम धारणाओं से रिचर्ड्स की प्रमुख असहमति इस बात को लेकर व्यक्त हुई है कि उन्होंने ज्ञान, भावना और इच्छा नामक मन के त्रिविध पक्षों को मानसिक घटनाओं के कारण, विशेषता और परिणाम के द्वारा स्थानापन्न किया है। रिचर्ड्स ने यह स्वीकार किया है कि उन्होंने ऐसा भाषा-सम्बन्धी प्रस्तुत प्रकरण के विश्लेषण की दृष्टि से किया है। उद्दीपन के स्वरूप की जो व्याख्या 'प्रिंसिपुल्स' के ग्यारहवें अध्याय में की गयी है और जिसे प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम अध्याय में प्रस्तुत किया गया है उसका औचित्य और सार्थकता भाषाविवेचन के प्रकरण की दृष्टि से है, यह स्पष्ट है। वहाँ यह देखा जा चुका है कि रिचर्ड्स मानसिक घटनाओं के कारणों में दो विभिन्न समूह देखते हैं जिनमें अन्तर देखना वे आवश्यक मानते हैं। कारणों के इन दो अलग-अलग समूहों में एक तरफ तो वे वर्तमान उद्दीपन हैं जो ऐन्द्रिय स्नायुओं के द्वारा मन तक पहुँचते हैं जिनसे सम्बद्ध व्यतीत उद्दीपनों का प्रभाव भी साथ-साथ पहुँचता है और दूसरी तरफ जीव की अपनी स्थिति, उसकी आवश्यकताएँ, इस या उस उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया प्रकट करने की उसकी तत्परता जैसे कारण रहते हैं। उत्पन्न होनेवाले आवेग इन दोनों कारणसमूहों के आपसी घात-प्रतिघात से अपनी विशेषताएँ प्राप्त करते हैं। इन मानसिक कारणसमूहों के अन्तर को ध्यान में रखना जरूरी है। दोनों प्रकार के कारणसमूहों के आपेक्षिक महत्त्व में बहुत बड़ा अन्तर है। भूखा आदमी सामने जो-कुछ आयेगा, निगल जायेगा। खाद्य पदार्थ की प्रकृति उसके व्यवहार पर बहुत कम असर डालेगी। किन्तु, कोई तृप्त व्यक्ति वही खायगा जो उसके लिए सुस्वादु होगा या बहुत लाभप्रद होगा, जैसे दवा। इस तरह, इस दूसरे व्यक्ति का व्यवहार पूर्णतः उसके चाक्षुष या घ्राणीय उद्दीपनों की विशेषताओं पर निर्भर करेगा जबकि प्रथम व्यक्ति का व्यवहार उसकी अपनी स्थिति और आवश्यकता के अनुसार होगा।

जिस सीमा तक कोई आवेग अपनी विशेषता के लिए अपने उद्दीपन के प्रति ऋणी है, वहीं तक वह 'अभ्युद्देशन' (रेफरेंस) है। 'विचार' या 'संज्ञान' के

स्थान पर मानसिक घटना के जिस तत्त्व को रिचर्ड्स ने स्वीकार किया है उसी के लिए वे 'अभ्युद्देशन' शब्द को वाचक मानते हैं। जीव की आन्तरिक स्थिति सामान्यतः 'अभ्युद्देशन' को कुछ मात्रा तक अदल-बदल डालने के लिए हस्तक्षेप करती है, किन्तु हमारी बहुत सारी आवश्यकताएँ आवेगों को अविकृत छोड़कर भी संतुष्ट की जा सकती हैं। कटु अनुभवों के कारण हम आवेगों को अपनी आन्तरिक स्थिति, आवश्यकता और इच्छाओं से यथासंभव अप्रभावित रखने और उन्हें बाह्य परिस्थितियों के अनुरूप होने देने के लिए छोड़ देना सीख जाते हैं।

उद्दीपन और उनके उपयोग के हमारे ढंग में कैसे अन्तर रहता है, यह हमारे सभी व्यवहारों में देखा जा सकता है। हम किसी भी प्रकार का उद्दीपन प्राप्त कर सकते हैं पर जब हम उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं और वह प्रतिक्रिया उद्दीपन की प्रकृति से समानता रखती है, तभी 'अभ्युद्देशन' घटित होता है। आवश्यकताओं और इच्छाओं के द्वारा अभ्युद्देशन किस मात्रा तक प्रभावित होता है, यह बहुत लोगों द्वारा ठीक से नहीं समझा जाता है। अत्यन्त सामान्य और परिचित वस्तुओं का प्रत्यक्षण भी हम इस रूप में करते हैं जिससे हमें प्रसन्नता मिले, न कि उनके यथावत् रूप में। इसीलिए, किसी भी व्यक्ति के लिए अपने विषय में या उस व्यक्ति के विषय में जिसमें उसकी अभिरुचि है, सही धारणा बना पाना प्रायः असंभव होता है। रिचर्ड्स इसे वांछनीय भी नहीं मानते। कारण, यह आसान नहीं है कि इन दो क्षेत्रों को एक-दूसरे से अलग रखा जाय : (१) जिसमें आवेग बाह्य परिस्थितियों पर पूर्णतः निर्भर हों और 'अभ्युद्देशन' को प्राथमिकता प्राप्त हो और (२) जिसमें 'अभ्युद्देशन' एषणाओं के अधीनस्थ हों। इसीलिए 'श्रेय' की ऐसी बहुत-सी धारणाओं के विषय में कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता जो अभ्युद्देशन को भावनात्मक संतुष्टि के अधीन बना देती हैं। इसके विरुद्ध सत्य के उपासकों की यह दलील हो सकती है कि सत्य सभी अन्य बातों की अपेक्षा जीवन में मुख्य वस्तु है अतः जो वस्तु सत्य का आधार न रखे उसे हमें उपेक्षा की दृष्टि से देखना चाहिए। ऐसे लोगों के अनुसार, जिस प्रेम को ज्ञान का आधार प्राप्त न हो उसे मूल्यहीन समझना चाहिए। जो वस्तुतः सुन्दर न हो, वह हमारी बीवी ही क्यों न हो, उसकी तारीफ नहीं करनी चाहिए, कारण, यह सत्य के विरुद्ध जाना है। बीवी की तारीफ ही करनी हो तो तारीफ के लायक अन्य सच्ची बातों के आधार पर तारीफ करनी चाहिए। रिचर्ड्स ऐसे विचारों को भ्रममूलक मानते हैं। उनका कथन है कि ऐसे मतों के पीछे यह भ्रान्त धारणा है कि सौन्दर्य वस्तु की आन्तरिक योग्यता है और 'शिव' या 'हित' अव्याख्येय विचार। रिचर्ड्स 'सुन्दर' को वस्तु का धर्म न मानकर मन का धर्म मानते हैं जो आवेग-सामंजस्य से प्रतिफलित होता है। उपर्युक्त मतों को मानने का कारण रिचर्ड्स यह बताते हैं कि वे ऐसे भावनात्मक दृष्टिकोण होते हैं जिनसे भावानात्मक संतोष प्राप्त होता है। किसी वस्तु को अच्छी या सुन्दर समझने से हमें तात्कालिक रूप

ने अधिक भावनात्मक सन्तोष मिलता है इसकी अपेक्षा कि हम उसे एक विशिष्ट रूप से अपने आवेगों के सन्तुष्टिकारक के रूप में अभ्युद्दिष्ट (रेफर) करें।

रिचर्ड्स के अनुसार, 'शिव' या 'सौन्दर्य' के विषय में सोचने का अर्थ आवश्यक रूप से किसी वस्तु की ओर अभ्युद्देशन नहीं है। कारण, सोचने (थिंकिंग) के अन्तर्गत वे सारी क्रियाएँ भी आती हैं जिनमें आवेग आन्तरिक आवश्यकताओं और परिस्थितियों के द्वारा इस सीमा तक नियंत्रित होते हैं और बाह्य उद्दीपनों से इतने स्वतंत्र होते हैं कि उनमें 'अभ्युद्देशन' नाम की कोई चीज घटित होती ही नहीं। अधिकांश चिन्तनों में अभ्युद्देशन कुछ मात्रा में रहता है, पर 'चिन्तन' पूर्णतः 'अभ्युद्देशन' नहीं होता। इसी तरह, 'अभ्युद्देशन' का अधिकांश 'चिन्तन' नहीं माना जा सकता। 'चिन्तन' और 'अभ्युद्देशन' ये दो ऐसे शब्द हैं जो एक-दूसरे के क्षेत्र को आक्रान्त करते हैं और उनकी परिभाषाएँ भिन्न ढंग की हैं। इसीलिए रिचर्ड्स ने 'विचार' को मनोव्यापारों का भेदक तत्त्व नहीं माना है।

अभ्युद्देशन की शक्ति का इधर अत्यधिक विस्तार हुआ है। विज्ञान ने विस्मय-जनक द्रुति से एक के बाद एक अभ्युद्देशन के क्षेत्रों का उद्घाटन किया है। विज्ञान अभ्युद्देशन की व्यवस्यामात्र है जिसका उद्देश्य अभ्युद्देशन को सुविधा प्रदान करना है। विज्ञान का विकास मुख्यतः इस कारण हुआ है कि अन्य विषयों के अधिकार, मुख्यतः धार्मिक इच्छाओं के अधिकार, अलग हटा दिये गये हैं। विज्ञान और धर्म में संघर्ष स्वाभाविक है। कारण, आवेगों की व्यवस्था के दो विभिन्न सिद्धान्तों को वे दोनों उदाहृत करते हैं। दोनों की विसंगति और भी अधिक स्पष्ट होती जायगी और दोनों में सामंजस्य असंभव है।

विज्ञान को किसी एक सहज वृत्ति या संवेग या इच्छा का (उदाहरणार्थ, 'उत्सुकता' का) विषय मानकर उसके स्वतंत्र अस्तित्व को मर्यादित करने के प्रयास किये गये हैं। 'ज्ञान के लिए ज्ञान' नामक एक खास वासना या राग का भी आविष्कार किया गया है। रिचर्ड्स के अनुसार, मनुष्य की सभी सहजवृत्तियाँ, आवश्यकताएँ और इच्छाएँ किसी-न-किसी अवसर पर विज्ञान की मुख्य प्रेरक शक्ति बन सकती हैं। कोई भी ऐसी मानसिक क्रिया नहीं है जो अवसरविशेष पर अविकृत अभ्युद्देशन की अपेक्षा नहीं रखती हो। मुख्य कथ्य यह है कि विज्ञान सर्वतंत्रस्वतंत्र या पूर्ण स्वायत्तप्राप्त है। इसके अन्दर आवेगों का विकास आपस में ही एक-दूसरे को परिवर्तित करते हुए होता है और उद्देश्य रहता है अधिकतम पूर्णता, व्यवस्था तथा आगामी अभ्युद्देशनों को सुविधा देना।

विज्ञान को स्वायत्तशासी (ऑटोनोमस) घोषित करने का अर्थ बाकी सारी क्रियाओं को उसके अधीनस्थ या उससे गौण बना देना नहीं है। उद्देश्य केवल यह जोर देकर कहना है कि जहाँ तक अभ्युद्देशनों का कोई समूह अविकृत रहता है, वह विज्ञान के अन्तर्गत आता है। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई अभ्युद्देशन विकृत हो ही नहीं सकता। किसी लाभ के लिए अभ्युद्देशन विकृत किये जा सकते हैं और

किये जाते भी हैं। जिस तरह ऐसी अनेक मानवीय क्रियाएँ हैं जिनमें अविकृत अभ्युद्देशनों की अपेक्षा रहती है, उसी तरह विकृत अभ्युद्देशनों की अपेक्षा रखनेवाली क्रियाओं की संख्या भी बहुत अधिक है। मनःकल्पनाएँ (फिक्शन्स) ऐसी ही क्रियाएँ हैं। इन्हें यह समझकर निन्दनीय नहीं मानना चाहिए कि इनके द्वारा हम वास्तविकता से आँखें मूँद लेते हैं। वास्तविकता की मथन चेतना के साथ-साथ 'फिक्शन' को पाला जा सकता है। उनका सही रूप और प्रयोजन यदि हमारे सामने स्पष्ट रहे तो उन्हें पालना बुरा नहीं। वे बुरे तब हो जाते हैं जब उनका हम दुरुपयोग करते हैं। अवास्तविक मनःकल्पनाओं को वास्तविक समझते हुए जब हम वास्तविक वस्तुओं का उनके द्वारा निषेध कराने लगते हैं तो दयनीय स्थिति उत्पन्न होती है। परियों के अस्तित्व में विश्वास करने की येट्स की हताश चेष्टा या सौरभौतिकी के औचित्य में सदेह करने की लारेंस की चेष्टा ऐसी ही दयनीय स्थितियाँ हैं।

यह बिलकुल संभव है कि यदि हमारा ज्ञान पर्याप्त हो तो हमारे लिए सभी आवश्यक अभिवृत्तियाँ केवल वैज्ञानिक अभ्युद्देशन से प्राप्त हो सकती है। पर, ऐसी स्थिति से हम अभी बहुत दूर हैं चूँकि अभी हमारा ज्ञान बहुत ही अपर्याप्त है।

भाषा के द्विविध प्रयोगों के आधारभूत मानसिक व्यापारों का जो विश्लेषण रिचर्ड्स ने किया है और जिसे ऊपर प्रस्तुत किया गया है उसके मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं—

(१) मानसिक व्यापारों को ज्ञान, भावना और इच्छा में बाँटने की अपेक्षा कारण, वैशिष्ट्य और परिणाम में विविक्त करना अधिक वैज्ञानिक है।

(२) मानसिक घटनाओं के कारणों को बाह्य उद्दीपन प्रस्तुत करते हैं पर उद्दीपनों का ग्रहण और उपयोग हमारी आन्तरिक स्थिति और आवश्यकता के आधार पर होता है।

(३) इस प्रकार, मानसिक घटनाओं के कारणों के दो वर्ग हो जाते हैं: (क) वर्तमान बाह्य उद्दीपन एवं उनसे सम्बद्ध अतीत उद्दीपनों का प्रभाव तथा (ख) जीव की अपनी स्थिति और आवश्यकताएँ। मनुष्य का व्यवहार इन दोनों पर आधृत होता है। दोनों के कारण उसके व्यवहार में फर्क पड़ जाता है।

(४) आवेग की विशेषताएँ जहाँ बाह्य उद्दीपनों पर आधृत रहती हैं वहाँ 'अभ्युद्देशन' (रेफरेंस) संपन्न होता है। 'अभ्युद्देशन' का अर्थ है, वस्तु आन्तरिक परिस्थितियों से अप्रभावित रहकर हमारे समक्ष जिस रूप में प्रस्तुत होती है उसके उसी रूप का निर्देश करना। ऐसा तभी संभव होता है जब हमारे आवेगों को बाह्य उद्दीपनों की प्रकृति की अनुरूपता प्राप्त हो और आन्तरिक आवश्यकताएँ उन्हें प्रभावित और परिवर्तित नहीं करें।

(५) किन्तु, आन्तरिक आवश्यकताएँ और इच्छाएँ भी आवेगों की विशेषताओं का निर्धारण करती हैं जिसके परिणामस्वरूप अभ्युद्देशन में विकार आ जाता है और वह हमारी इच्छाओं के अधीन हो जाता है।

(६) दोनों प्रकार की क्रियाओं को जीवन में देखा जा सकता है। दोनों का अपना अलग-अलग महत्त्व है। मन:कल्पनाएँ ऐसी क्रियाएँ हैं जिनमें आन्तरिक आवश्यकताओं से प्रभावित अभ्युद्देशनों की अपेक्षा रहती है। विज्ञान, दूसरी तरफ, अविकृत अभ्युद्देशनों की व्यवस्था है। उसमें वस्तु के तद्गत रूप पर ध्यान दिया जाता है। हमारे आवेग वहाँ बाह्य उद्दीपनों की प्रकृति का अनुसरण करते हैं, आन्तरिक आवश्यकताओं से प्रेरित और प्रभावित नहीं होते। विज्ञान ने अभ्युद्देशन की शक्ति का अत्यधिक विस्तार किया है। वह पूर्ण स्वायत्तशासी है। उसे किसी विशिष्ट इच्छा या मवेग का विषय मानकर किसी के अधीन कर देना गलत है।

उपर्युक्त दो क्रियाओं के आधार पर भाषा के जो द्विविध प्रयोग देखने में आते हैं उनका स्पष्टीकरण करते हुए रिचर्ड्स का कथन है कि कोई कथन अपने द्वारा घटित सच्चे या झूठे अभ्युद्देशन (रेफरेंस) के लिए प्रयुक्त हो सकता है। यह भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग है। किन्तु, कोई कथन अपने द्वारा घटित अभ्युद्देशन द्वारा आवेगों और अभिवृत्तियों में उत्पन्न होनेवाले प्रभावों के लिए भी प्रयुक्त हो सकता है। यह भाषा का रागात्मक (इमोटिव) प्रयोग है।[2] यानी, हम शब्दों को उन अभ्युद्देशनों के लिए प्रयुक्त कर सकते हैं जिन्हें वे प्रेरित करते हैं या उन अभिवृत्तियों या आवेगों के लिए प्रयुक्त कर सकते हैं जो सम्भव होते हैं। बहुत-सी शाब्दिक व्यवस्थाएँ अपने मार्ग पर अभ्युद्देशन को बिना आवश्यक बनाये अभिवृत्तियाँ प्रेरित करती हैं, पर सामान्यत अभ्युद्देशन अभिवृत्तियों के विकास के लिए शर्तों के रूप में या उनके विकास की विविध स्थितियों के रूप में निहित होते हैं। तथापि इनमें महत्त्व अभिवृत्तियों का होता है न कि अभ्युद्देशनों का। यहाँ अभ्युद्देशनों का एकमात्र कार्य अभिवृत्तियों को सम्भव बनाना और उन्हें सहारा देना रहता है। ये अभिवृत्तियाँ परवर्ती अनुक्रियाएँ होती हैं। इस प्रकार के भाषा-प्रयोग में यह बात महत्त्वहीन होती है कि अभ्युद्देशन सही हैं या झूठे। इसीलिए उनकी सत्यता, असत्यता का प्रश्न उठाना अनपेक्षित है। कविता में भाषा का ऐसा ही रागात्मक प्रयोग होता है जिसमें अभ्युद्देशन अभिवृत्तियों के सहायक के रूप में गौण महत्त्व रखते हैं। इसीलिए कविता का योग्य पाठक उसके अभ्युद्देशनों की सचाई या झुठाई की जाँच करने का अनपेक्षित प्रयत्न नहीं करता। अभ्युद्देशनों की सत्यता-असत्यता की जाँच के लिए प्रवृत्त होने पर अनुपयुक्त प्रतिक्रिया उत्पन्न होने का खतरा रहता है जो काव्यास्वाद के लिए घातक हो सकता है।

भाषा के उपर्युक्त द्विविध प्रयोगों के स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण

2. A statement may be used for the sake of reference, true or false, which it causes. This is the scientific use of language. But it may also be used for the sake of the effects in emotion and attitude produced by the reference it occasions. This is the emotive use of language.—PRINCIPLES P. 267.

दिये जा रहे हैं। 'माउंट एवरेस्ट उन्तीस हजार एक सौ दो फीट ऊँचा है', 'गंगा नदी बंगाल की खाड़ी में गिरती है', 'पानीपत की पहली लड़ाई १५२६ ई० में हुई थी', 'श्रीमती इन्दिरा गाँधी भारत की प्रधानमंत्री है' जैसे वाक्य भाषा के वैज्ञानिक प्रयोग के उदाहरण है, चूँकि इनमे अभ्युद्देशन ही उद्दिष्ट है, किसी संवेग या अभिवृत्ति को जगाना नही। ये कथन सच्चे अभ्युद्देशन माने जायेंगे। यदि कोई यह कहे कि 'गंगा नदी अरब सागर मे गिरती है' तो यह झूठा अभ्युद्देशन होगा। पर, है यह भी अभ्युद्देशात्मक प्रयोग ही, भावात्मक या रागात्मक प्रयोग नही। किन्तु, कभी-कभी तथ्यों का अभ्युद्देशन संवेग या अभिवृत्ति जगाने के लिए होता है; अत. वहाँ अभ्युद्देश गौण हो जाता है, अभिवृत्ति या दृष्टिकोण मुख्य हो जाता है। कुछ वर्ष पूर्व केरल की विधिवत् चुनी हुई साम्यवादी सरकार को भंग कर के राष्ट्रपति का शासन लागू किया गया था। इस घटना की सूचना तीन सूत्रो से तीन ढंग से मिली। रेडियो पर सुना कि केरल की साम्यवादी सरकार को भंग कर राष्ट्रपति का शासन लागू कर दिया गया। यह तथ्य का अभ्युद्देशन था जिसमे भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग किया गया था। एक साम्यवाद-विरोधी मित्र ने सुनाया—"केरल की जनता को राहत मिली, वहाँ राष्ट्रपति का शासन लागू कर दिया गया।" उनकी इस टिप्पणी मे उनकी अभिवृत्ति का स्पष्टीकरण था और सूचना, सूचना के लिए नही दी गयी थी। मनोनुकूल अभिवृत्ति को जगाना उद्देश्य था। पुन. शाम को एक साम्यवादसमर्थक मित्र की प्रतिक्रिया सुनने को मिली—"केरल में *जनतंत्र का गला घोंट दिया गया*। राष्ट्रपति का शासन लागू किया जाना जनतंत्र का जनाजा निकालना है।" पिछली दो प्रतिक्रियाओं में *भाषा के रागात्मक प्रयोग के उदाहरण देखे जा सकते* है।

बर्नार्ड शॉ के एक नाटक का एक प्रसंग भाषा के उपर्युक्त दो प्रयोगो पर *प्रकाश डालता है*। चार्ल्स प्रथम की एक नवोढ़ा पत्नी उसके सामने आकर *शिकायत* करती है : आपने मुझे सौ बार धोखा दिया है, हजार बार ठगा है, हजारो-हजार बार ठगा है। पास बैठा वैज्ञानिक न्यूटन उसे टोकता है : मैडम, आपकी उम्र क्या है और शादी कब हुई? मालूम होने पर हिसाब करता है और बोल उठता है—"मान लिया जाय कि सम्राट् ने प्रतिदिन एक बार आपको धोखा दिया, यों कहे कि प्रति रात आपको धोखा दिया, आपसे भेंट नही करके। तब भी हजारो-हजार बार धोखा देने की बात बिलकुल गलत है चूँकि यह गणित के आधार पर एकदम असंभव है।" यहाँ चार्ल्स की नवोढ़ा भाषा का रागात्मक प्रयोग कर रही थी जिसमें अभ्युद्देशन की सच्चाई-झुठाई का कोई महत्त्व नही था, महत्त्व संवेग और अभिवृत्तियों का था जिनसे प्रेरित होकर वह शिकायत कर रही थी और जिन्हे अपने पति मे जगाना उद्देश्य था। पर, वैज्ञानिक न्यूटन उसके कथन की परीक्षा भाषा के वैज्ञानिक प्रयोग की दृष्टि से कर रहा था, जो अनुपयुक्त था।

भाषा के द्विविध प्रयोगो मे निहित मानसिक क्रियाओं का अन्तर बहुत बड़ा है

पर इस अन्तर की प्राय उपेक्षा की जाती है। रिचर्ड्स ने इनके अन्तर के महत्त्व को इन प्रयोगों की विफलता पर विचार करते हुए स्पष्ट किया है। उनका कथन है कि भाषा के वैज्ञानिक प्रयोग में अभ्युद्देशन में थोड़ा अन्तर आते ही आप-से-आप विफलता आ जाती है, चूंकि वहाँ उद्देश्य पूर्ण नहीं होता। किन्तु, भाषा के रागात्मक प्रयोग में अभ्युद्देशनों के व्यापक अन्तर का भी कोई महत्त्व नहीं होता यदि अभिवृत्तियों और संवेगों के प्रभाव अपेक्षित ढंग के बने रहे। इसके अलावा, भाषा के वैज्ञानिक प्रयोग में सफलता के लिए अभ्युद्देशनों का सही होना ही अनिवार्य नहीं है अपितु उनके सम्बन्ध का तार्किक होना अनिवार्य है। उनमें व्याघात, या असंगति जैसे तार्किक दोष नहीं रहने चाहिए। उन्हें इस तरह व्यवस्थित होना चाहिए जिसमें आगामी अभ्युद्देशन प्रतिबद्ध न हो। किन्तु, रागात्मक उद्देश्यों के लिए तार्किक व्यवस्था अनावश्यक होती है। तार्किक व्यवस्था उनके लिए बाधा हो जा सकती है और प्राय होती भी है। भाषा के रागात्मक प्रयोगों में महत्त्व अभ्युद्देशनों के कारण घटित होनेवाली अनेक क्रमबद्ध अभिवृत्तियों की अपनी उचित व्यवस्था का होता है, उनकी संवेगात्मक सम्बन्धमूलता का होता है। ये चीजें उन अभ्युद्देशनों के तार्किक सम्बन्धों पर निर्भर नहीं करती जो अभिवृत्तियों को उत्पन्न करते हैं।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि तब काव्य के संदर्भ में 'सत्य' शब्द के जो प्रयोग मिलते हैं उनकी सार्थकता क्या है। रिचर्ड्स ने भ्रान्तिनिवारण के लिए आलोचना में प्रयुक्त 'सत्य' शब्द के मुख्य अर्थों पर अपनी टिप्पणी दी है जो नीचे प्रस्तुत है।

(१) 'सत्य' शब्द का एक वैज्ञानिक अर्थ होता है जिसमें अभ्युद्देशन और अभ्युद्देशनों को संकेतित करनेवाले कथन सच होते हैं। कोई भी कथन सच होता है यदि उसके द्वारा अभ्युद्दिष्ट वस्तुएँ वास्तविक रूप से उसी ढंग से एक साथ रहती हैं जिस ढंग से उन्हें अभ्युद्दिष्ट किया जाता है, अन्यथा वह झूठा होता है। सत्य के इस अर्थ से किसी भी कला का बहुत कम सरोकार रिचर्ड्स मानते हैं। उनका मत है कि अच्छा होता कि 'सत्य' शब्द का प्रयोग इसी वैज्ञानिक अर्थ में सीमित कर दिया जाता। 'सत्य' को शुद्ध वैज्ञानिक प्रतिपादनों में ही आना चाहिए था। पर, ऐसे वैज्ञानिक प्रतिपादन बहुत कम उपलब्ध होते हैं। वक्ता जिन संवेगों को प्रेरित करना चाहता है या जिन अभिवृत्तियों को जगाना चाहता है उनका प्रलोभन उसे इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वह 'सत्य' के प्रयोग को वैज्ञानिक प्रतिपादनों के लिए ही नहीं छोड़े। कारण, 'सत्य' शब्द के साथ बहुत अधिक रागात्मक प्रभाव संलग्न हैं। इसीलिए यह महत्त्वहीन हो जाता है कि 'सत्य' का किस अर्थ में प्रयोग किया जा रहा है। कभी-कभी तो इसका कोई अर्थ नहीं होता, फिर भी, अभिवृत्तियों को प्रेरित करने की दृष्टि से इसका जो प्रभाव है, वह इसे अनिवार्य बना देता है।

(२) 'सत्य' का दूसरा बहुत सामान्य अर्थ है स्वीकार्यता (एक्सेप्टिबिलिटी)।

'रॉविन्सन क्रूसो' पुस्तक का सत्य उन बातों की स्वीकार्यता है जो हमें कही जाती हैं। प्रकथन (नैरेटिव) के प्रभावों के उद्देश्य से जो स्वीकार्यता अपेक्षित है, वह उसका सत्य है, नकि 'अलेक्जेंडर सेल्कर्क' से सम्बद्ध वास्तविकताओं के साथ उन कथनों की सगति। 'कामायनी' के सत्य का अर्थ वास्तविक पात्र मनु के जीवन की वास्तविक घटनाओं से 'कामायनी' मे वर्णित घटनाओ की सगति नही है। यह भी सभव है कि ऐसा कोई पात्र हुआ ही नहीं हो या हुआ भी हो तो 'इडा' से उसका कोई सपर्क न हुआ हो या सारस्वत प्रदेश जैसे किसी प्रदेश का कोई अस्तित्व ही नही हो। इसी प्रकार 'किंग लियर' या 'डॉन क्विक्जोट' के सुखद अन्त के झूठेपन का अर्थ उनलोगो के लिए उनकी स्वीकार्यता की विफलता है जो उन कृतियों के अवशिष्ट अंशो के प्रति पूर्णतया अपनी अनुक्रिया दिखा चुके हैं। 'स्वीकार्यता' के अर्थ मे सत्य आन्तरिक आवश्यकता या सहीपन के बराबर है। वह बात 'सच' या आन्तरिक दृष्टि से 'आवश्यक' होती है जो शेष अनुभूति के साथ पूर्णतया अनुकूल पडती है। रिचर्ड्स के आशय को अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि ऐसे 'सत्य' या 'आन्तरिक आवश्यकता' के तकाजे से ही हम कहते हैं कि 'गोदान' की मिसेज खन्ना आरभ मे 'कामिनी खन्ना' हैं तो बाद मे 'गोविन्दी खन्ना' कैसे बन गयी? दोनों को एक ही व्यक्ति के रूप में वर्णित करना तभी संभव हो सकता है जब एक व्यक्ति के दो नाम हो, दुलार का या पुकार का एक नाम और दूसरा बाहरी व्यवहार का। 'गोदान' मे इसकी सूचना नही है कि कामिनी और गोविन्दी दोनो नाम मिसेज खन्ना के थे। इस आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति मे प्रेमचद से जो त्रुटि हुई है उसे हम आलोच्य मानते हैं। आन्तरिक आवश्यकता के रूप मे सत्य की जो स्वीकार्यता प्रसाद के 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे उपलब्ध होती है उसी के कारण हम उसके नायक और नायिका के प्रणय-व्यापार और परिणय को स्वीकार कर लेते हैं अन्यथा सिकन्दर के प्रथम आक्रमण और सिल्यूकस के आक्रमण के बीच समय का जो लम्बा व्यवधान है उसका ज्ञान रखने पर चन्द्रगुप्त और कार्नेलिया का या तो सिकन्दर के आक्रमण के समय प्रणयव्यापार मे सलग्न होना हमारे लिए अग्राह्य हो या बाद मे सिल्यूकस के आक्रमण के बाद दोनों का परिणय। द्वितीय के ग्राह्य होने मे आपत्ति इसलिए नही होती कि इसका कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य भी मिलता है पर, प्रथम को तो अग्राह्य ही मानेंगे। किन्तु, 'चन्द्रगुप्त' नाटक पढते समय इस दोष पर इसलिए ध्यान नही जाता कि 'चन्द्रगुप्त' नाटक के सत्य का अर्थ वास्तविक चन्द्रगुप्त के जीवन की वास्तविक घटनाओ से संगति नही है, 'चन्द्रगुप्त' नाटक की आन्तरिक आवश्यकता है जिसकी पूर्ति हो जाने पर कोई बात खटकती नही है। यदि 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे ही इसका सकेत रहता कि सिकन्दर और सिल्यूकस के आक्रमण के बीच काल की दूरी बहुत ज्यादा है तो हम नाटककार से इस बात की अपेक्षा रखते कि वे चन्द्रगुप्त एवं कार्नेलिया के परिणय के समय उनकी प्रौढ़ वय का सकेत करें।

कुछ लोग ऐसा मानते है कि काव्य मे जो-कुछ फिजूल है, वह झूठ है; भले ही वह आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति मे प्रतिरोधक न हो। पेटर का कथन है कि "कलाकार फिजूलपने से अवश्य ही डरेगा।" पर, रिचर्ड्स इस धारणा से सहमत नही है। उनके अनुसार, अतिशय आधिक्य श्रेष्ठ कला की सामान्य विशेषता है। अत्यन्त सक्षिप्तता कला के लिए ज्यादा खतरा उत्पन्न करती है। अतः विचारणीय बात यह है कि काव्य मे जो-कुछ अनावश्यक है वह शेष अनुक्रियाओ मे बाधा डालता है कि नही। यदि बाधा नही डालता तो बुरा नही है।

ऊपर जिस आन्तरिक स्वीकार्यता या आश्वस्तता की बात कही गयी है वह अन्य प्रकार की स्वीकार्यताओ से क्या अन्तर रखती है, इसे भी रिचर्ड्स ने स्पष्ट किया है। काव्य के कुछ विषयो को कभी-कभी बाह्य आधारो पर अस्वीकृत कर दिया जाता है। उदाहरणार्थ, टॉमस राइमर ने बाह्य कारणो से 'ऑथेलो' नाटक के खलपात्र 'इयागो' को ग्रहण करना अस्वीकृत किया है। उनके अनुसार, 'इयागो' सामान्य खलपात्रो की प्रकृति से भिन्न प्रकृति के रूप मे दिखाया गया है, जो ठीक नही है। रिचर्ड्स के अनुसार, इस प्रकार बाह्य आधारो पर काव्य के सत्य-असत्य की धारणा बनाना अनुचित है। जब राइमर यह कहते है कि मूरिस जनरल नाम का कोई व्यक्ति वेनिस गणराज्य की सेवा मे कभी नही था तो वे पुनः दूसरे बाह्य आधार का यानी ऐतिहासिक सचाई का उपयोग करते है। इस तरह के बाह्य आधारो को काव्य मे महत्त्व देने की प्रवृत्ति स्वय कवियो मे देखी जाती है। प्रसादजी के नाटको की भूमिकाओ मे नाटक मे वर्णित पात्र एव उनसे सम्बद्ध घटनाओ की सचाई के ऐतिहासिक आधार के लिए जो विस्तृत छानबीन मिलती है उसके पीछे यही मनोवृत्ति काम कर रही है कि उनका वर्णन बाह्य आधार की दृष्टि से सच समझा जाय। रिचर्ड्स इसे भ्रान्त दृष्टिकोण मानते है।

(३) सत्य का एक अन्य अर्थ ईमानदारी (सिन्सियरिटी) भी है। कलाकृति की इस विशेषता पर तत्सतोय की सप्रेषण-सम्बन्धी धारणा पर विचार करते समय रिचर्ड्स अपने विचार व्यक्त कर चुके है। आलोचक के दृष्टिकोण से 'ईमानदारी' की निषेधात्मक प्रक्रिया से परिभाषा की जा सकती है। यानी 'ईमानदारी' का अर्थ कलाकार द्वारा पाठक पर ऐसा प्रभाव उत्पन्न करने की चेष्टा का अभाव है जो खुद उसके लिए कारगर नही होते। प्रसिद्ध है कि बर्न्स 'ए फौंड किस्' लिखते समय 'नान्सी' के ध्यान से बचने के लिए बहुत सतर्क था। यहाँ कलाकार की हैसियत से बर्न्स की 'ईमानदारी' का प्रश्न निहित है। बाह्य परिस्थितियो के द्वारा निर्मित आवेगो के दोषो के अन्तःसाक्ष्य कविता मे मिल जाते है।

रिचर्ड्स सत्य के उपर्युक्त अर्थों मे से प्रथम का कविता से सम्बन्ध नही मानते। द्वितीय अर्थ को ही वे कविता के सदर्भ मे ग्राह्य मानते है। अधिकाश कविताएँ ऐसे कथनो से बनी होती है जिनके सत्यापन (वेरिफिकेशन) का प्रयास मूर्खों को छोड़कर और कोई नही कर सकता। उन कथनो की यथार्थता परीक्ष्य नहीं होती।

यदि कविता के कथन झूठे भी प्रमाणित हों और यदि इस झूठ के बोध से पाठक मे कोई ऐसी प्रतिक्रिया न हो जो कविता के लिए असंगत और बाधक हो तो इस झूठ को दोषस्वरूप नही माना जा सकता। इसी तरह, कविता के कथनो की सचाई उसका कोई महत्त्वपूर्ण गुण नही।

रिचर्ड्स का मत है कि असल मे कविता रागात्मक भाषा का उच्चतम रूप प्रस्तुत करती है जिसमे अभ्युद्देशन को अभिवृत्तियों के अधीनस्थ और गौण बना दिया जाता है। आरंभिक भाषाएँ रागात्मक थी। भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग परवर्ती वस्तु है। पर, अब इस परवर्ती विकास को ही भाषा का स्वाभाविक रूप समझने की भूल की जाती है और रागात्मक प्रयोग की परीक्षा वैज्ञानिक प्रयोग की कसौटी पर की जाती है। कविता मे ही नही, कुछ आलोचनात्मक कथनो मे भी भाषा के रागात्मक रूप के दर्शन होते हैं। आलोचना के रूप मे घटिया किस्म की कविता आलोचनासाहित्य मे प्रचुरता से उपलब्ध होती है। ऐसी आलोचनाओ को पढते समय भाषा के उक्त द्विविध प्रयोगो पर ध्यान देना आवश्यक है अन्यथा उन्हें ठीक से समझा नही जा सकता। यदि भाषा के इन द्विविध प्रयोगों के अन्तर को हमेशा ध्यान मे रखा जाय तो मानवीय व्यवहारों मे क्रान्तिकारी परिवर्तन आने की संभावना है चूँकि ऐसी स्थिति मे हम लोगों के कथनो को ठीक से समझ पायेगें।

कविता और विश्वास—भाषा के उक्त द्विविध प्रयोगो के अन्तर पर ध्यान नही देने से कैसे विकृत दृष्टिकोण उत्पन्न होते हैं इसे उदाहृत करते हुए रिचर्ड्स ने कविता और विश्वास के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि बहुत-सी अभिवृत्तियाँ, जो किसी अभ्युद्देशन पर निर्भर किये बिना केवल अन्यथा जगाये हुए आवेगो के सामजस्य के द्वारा उदित होती है, वैज्ञानिक विश्वासो की तरह के उपयुक्त विश्वासो के द्वारा सामयिक रूप से प्रोत्साहित की जाती हैं। जहाँ तक ऐसे विश्वासो के द्वारा अभिवृत्तियों के प्रोत्साहन का प्रश्न है, इसमे कोई आपत्ति नही। इन विश्वासो की सत्यता-असत्यता का कोई महत्त्व नही होता। किन्तु, जब अभिवृत्ति बहुत महत्त्वपूर्ण होती है तो उसका आधार किसी ऐसे अभ्युद्देशन को बनाने का प्रलोभन प्रबल हो उठता है जो उसी रूप मे ग्रहण किया जाता है जिस रूप मे वैज्ञानिक सत्य गृहीत होते हैं। ऐसा होने से कवि अपनी कृति के नाश का आमत्रण देता है। वर्ड्सवर्थ ने 'सर्वात्मवाद' को अपनी कविता मे वैज्ञानिक विश्वास की तरह के विश्वास के रूप मे ग्रहण किया है। बहुत-से अन्य लोगो ने 'प्रेरणा', 'आदर्शवाद' आदि को इसी रूप मे प्रस्तुत किया है। महादेवी ने अपने काव्यसग्रह की भूमिका मे अपने काव्यात्मक दृष्टिकोण को इसी प्रकार सर्वात्मवाद के दार्शनिक आधार से पुष्ट किया है और उसमे वैसा ही विश्वास व्यक्त किया है जैसा वैज्ञानिक सत्यों मे रखा जाता है। आलोचना मे ऐसे विकृत दृष्टिकोण को प्रायः प्रश्रय मिलता है। अपने यहाँ प्रसादजी के 'काव्य, कला तथा

अन्य निबन्ध' में काव्यात्मक विश्वास, जो अभिवृत्ति के पोषक होते हैं, को अभ्युद्देशन के रूप में समझने का भ्रम मिलता है।

ऐसे विश्वासों के द्विविध प्रभाव होते हैं। प्रथमतः उनसे अभिवृत्ति को सुरक्षा और स्थिरता मिलती प्रतीत होती है और द्वितीयतः उन कठिन साधनों पर, जैसे रूपतत्त्व पर, ध्यान देने की जरूरत नहीं पड़ती। इनमें से कोई भी प्रभाव वांछनीय नहीं है। कारण, इनमें अभिवृत्ति और अस्थिर बन जाती है। 'विश्वास' को हटाते ही अभिवृत्ति गायब। विश्वासों के मिट जाने की आशंका इसलिए रहती है कि उनमें आपसी तार्किक सम्बन्ध बहुत थोड़ा होता है। विश्वास जैसे आसान साधनों के द्वारा उत्पन्न अभिवृत्तियाँ स्वस्थ, शक्तिपूर्ण एवं सजीव नहीं होतीं। सामान्य रूप से अपनायी गयी अभिवृत्तियों की अपेक्षा विश्वास पर आधृत अभिवृत्तियों के लिए हर बार बढ़े हुए उद्दीपन की जरूरत पड़ती है और विश्वास को अधिकाधिक दृढ़ करने की जरूरत होती है। उसी अभिवृत्ति को उत्पन्न करने के लिए विश्वास में और अधिक विश्वसनीयता लानी पड़ती है। इस तरह, विश्वासी को आस्था के एक आवेश से दूसरे आवेश तक बढ़ना पड़ता है और हर बार कुछ दबाव (स्ट्रेन) सहना पड़ता है।

श्रेष्ठ कविता में निश्चयात्मक कथनों (एसर्शन्स) का प्रायः अभाव रहता है। कोई भी निश्चयात्मक कथन अनिश्चित मात्रा तक दमन लाता है जो अनुभव की पूर्णता और अखंडता के लिए घातक होता है। इसीलिए, प्रायः कविता के लिए निश्चयात्मक कथन अनावश्यक होते हैं। श्रेष्ठ कवियों की निश्चयात्मक कथनों में विरक्ति का यही कारण है। किन्तु, सामान्यतः विश्वास का निर्माण आसान प्रतीत होता है और उससे कवि को कोई खतरा नहीं मालूम पड़ता है। धीरे-धीरे सम्पूर्ण अनुक्रिया विश्वासाधित हो जाती है। विश्वास सच भी हो तब भी अनुभव के लिए कम खतरा वह नहीं रखता, कारण, विश्वासी के विश्वास के कारण अपर्याप्त हो सकते हैं।

किसी वैज्ञानिक स्थापना में जिस तरह हम विश्वास करते हैं उस तरह किसी रागात्मक कथन में विश्वास नहीं करते, चाहे वे कथन राजनीतिक हों या काव्यात्मक। वैज्ञानिक विश्वास और रागात्मक विश्वास को प्रायः एक मान लिया जाता है। किसी वैज्ञानिक स्थापना के द्वारा जो अभ्युद्देशन सकेतित होता है उसे सच मानकर कर्म के लिए प्रस्तुत रहना वैज्ञानिक विश्वास का मूल तत्त्व है। किन्तु, विश्वास की परिभाषा में एक तत्त्व 'स्वीकरण' की भावना है। यह स्वीकरण की भावना वैज्ञानिक विश्वास के लिए अनिवार्य नहीं है। रागात्मक विश्वास (इमोटिव बिलीफ) वैज्ञानिक विश्वास से बहुत भिन्न होता है। कुछ अभ्युद्देशनों को सच मानकर कर्म के लिए प्रस्तुत रहने की प्रवृत्ति इसमें भी रहती है पर जिन परिस्थितियों और सम्बन्धों में यह कर्मतत्परता स्थित रहती है वे सीमित कर दिये जाते हैं। वैज्ञानिक विश्वास में ऐसी बात नहीं होती। वहाँ उन सभी परिस्थितियों और सम्बन्धों में

कर्मतत्परता निर्बाध रहती हैं जिनमें उसकी गति हो। रागात्मक विश्वास मे कर्म की मात्रा भी सीमित रहती हैं। कला मे रागात्मक विश्वास निहित होते है। कलाओ के अधिकाश विश्वास इस दृष्टि से भी वैज्ञानिक विश्वासो से भिन्न होते हैं कि वे 'अस्थायी स्वीकरण' (प्रॉविजनल एक्सेप्टेन्सेज) होते हैं। यानी वे इस तरह के विश्वास होते है कि ऐसा रहने पर ऐसा होगा। नाटक देखते समय हमारे विश्वास इसी प्रकार के 'स्वीकरण' होते है। काव्यानुभूति मे ऐसे विश्वासों का, अस्थायी स्वीकरणों का विशिष्ट स्थितियो मे ही ग्रहण होता हैं। वे अगले प्रभावो, हमारी अभिवृत्तियो और सवेगात्मक अनुक्रियाओं के लिए शर्त के रूप मे ग्रहण किये जाते हैं, प्राकृतिक नियमों मे हमारे विश्वासो की तरह गृहीत नही होते जिनकी यथार्थता की परीक्षा सभी अवसरो पर को जा सकती हैं। इस तरह कला के रागात्मक विश्वासो और वैज्ञानिक विश्वासो मे मात्रा का नही, प्रकार का भेद है। भावना के रूप में दोनो समान हैं पर अभिवृत्ति के रूप मे उनके ढाँचे का अन्तर व्यापक परिणामवाला होता हैं।

रागात्मक विश्वासों का एक अन्य रूप रिचर्ड्स ने वह सकेतित किया हैं जो अनुभूति का कारण न होकर उसका परिणाम होता हैं इसीलिए आरभ मे न आकर अत मे आता हैं। कविता के अध्ययन से जो सपूर्ण मनःस्थिति उत्पन्न होती है वह 'विश्वास' को तरह होती है। जब सभी 'अस्थायी स्वीकरण' समाप्त हो जाते हैं, अन्तिम अनुक्रिया को सभव बनानेवाले अभ्युद्देशन और उनके सम्बन्ध विस्मृत हो जाते है तो जो सवेग और अभिवृत्तियाँ बच जाती है उनमे विश्वास की सारी विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं। ऐसे विश्वासो के कारण ही आलोचना के उन सिद्धान्तों का जन्म होता हैं जिनमे सत्योद्घाटन का दम भरा जाता हैं। वैज्ञानिक विश्वासो को ठीक से कहा जा सकता हैं पर ऐसे रागात्मक विश्वासों का वर्णन कठिन होता हैं।

ऐसे रागात्मक विश्वासो का जीवन मे कोई स्थान और मूल्य नहीं हैं, ऐसा रिचर्ड्स नही मानते। उनका कथन हैं कि वर्तमान पीढ़ी के मानसिक तनाव और दबाव का एक कारण रागात्मक विश्वासो से अपने को अलग रखने की चेष्टा हैं। विश्व की परम्परागत धार्मिक व्याख्या पर विज्ञान की जबर्दस्त चोट पड़ी हैं जिससे वह छिन्न-भिन्न हो गयी हैं। फलत. मन को एकमात्र वैज्ञानिक विश्वासों के द्वारा ही पुनर्निर्मित करने का असफल प्रयत्न किया जाता हैं। आधुनिक युग का सदेहवादी (स्केप्टिक) भी विश्वासी हैं, पर वैज्ञानिक सत्यो का। मन के ऐसे अभ्यास की आवश्यकता हैं जो अभ्युद्देशन और अभिवृत्तियो के विश्वास को उचित स्वतत्रता प्रदान करे। पर यह अभ्यास कठिन पड़ता हैं। हम अपनी अभिवृत्तियो को वैज्ञानिक सत्यों के विश्वास का सहारा देने का निष्फल प्रयत्न करते हैं और अपने व्यक्तित्व के रागात्मक पक्ष को दुर्बल बनाते हैं। अभिवृत्ति की सार्थकता उसकी सफलता मे हैं। जीव को इसकी आवश्यकता पड़ती हैं। अत, अभिवृत्ति का औचित्य मत या

विचार के सही होने पर आधृत नहीं है। अभिवृत्तियों का उद्गमस्रोत अनुभव होना चाहिए। हमारी किसी अभिवृत्ति में हमारे ससारसम्बन्धी मत या ज्ञान निहित नहीं है। यदि उन्हें हम अभिवृत्तियों के निर्माण में स्थान देने का प्रयत्न करेंगे तो कहीं अन्यत्र अव्यवस्था प्राप्त होने का खतरा रहेगा। किन्तु कुछ लोग 'स्वीकृत तथ्यों' को अभिवृत्ति का आधार मानने के इतने अभ्यस्त रहते हैं कि उपर्युक्त बात को समझ पाना उनके लिए कठिन पड़ता है। कठोर बुद्धिवाले आधिभौतिकतावादी या भाववादी (पॉजिटिविस्ट) तथा धर्म में कट्टर आस्था रखनेवाले सनातनी—दोनो को विरुद्ध दिशाओं में एक ही प्रकार की कठिनता प्राप्त होती है। पहली कोटि के लोग अपनी अभिवृत्ति के निर्माण के लिए अपर्याप्त उपादान पाने की पीड़ा भुगतते हैं, दूसरी कोटि के व्यक्ति बौद्धिक बन्धन से पीड़ित रहते हैं।

निष्कर्ष के रूप में रिचर्ड्स का कथन है कि विश्व की प्रकृति की स्पष्ट तथा निष्पक्ष, पूर्वग्रहरहित जानकारी पाना तथा ऐसी अभिवृत्तियों का विकास करना जो हमें अच्छे ढंग से जीने के लिए समर्थ बनायें—दोनों ऐसी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ हैं कि किसी को एक-दूसरे से गौण नहीं बनाया जा सकता। अत, ज्ञान और विश्वास का अन्तर्मिश्रण एक प्रकार की विकृति है जिससे इन दोनों का अधःपतन होता है।

अत, द्वितीय प्रकार के रागात्मक विश्वास, जो अनुभूति के परिणाम होते हैं और इसीलिए अभिवृत्तिस्वरूप होते हैं, जीवन और काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। रिचर्ड्स ने ऐसे विश्वासों को 'वस्तुहीन विश्वास' (आब्जेक्टलेस् बिलीफ्स) कहा है और उनकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या दी है। कुछ आवेगजाल, जो साधारणत. अपने में या ससार के साथ समायोजित नहीं होते, कुछ ऐसी चीज पाते हैं जो उन्हें व्यवस्था प्रदान करती है और उपयुक्त कार्यशीलता प्रदान करती है। तब एक मुक्त और निर्बाध क्रियाशीलता की आरामदेह चेतना उत्पन्न होती है और कुछ भावात्मक वस्तु के स्वीकरण की भावना उत्पन्न होती है। इस भावना के कारण ही ऐसी स्थितियों को विश्वास कहा जा सकता है। अभिवृत्ति का सफल समायोजन ऐसी स्थिति को रखता ही है जिसे विश्वास कहते हैं। ऐसे अभिवृत्ति-समायोजनमूलक विश्वासों में युक्त कलाएँ अस्तित्व का बोझ उठाती मालूम पड़ती हैं और हमें ऐसा लगता है कि हम वस्तु की आत्मा में प्रवेश कर रहे हैं। इस सार्थकता-उद्घाटन की भावना को, स्वीकरण और सबोध की इस अभिवृत्ति को हमें ज्ञानदायक न मानना चाहिए, उसे जीवन के प्रति हमारे सफल अभियोजन का चेतन सहचर मानना चाहिए, यह रिचर्ड्स का पक्ष है। उपर्युक्त मनःस्थिति में जिस सार्थकता का बोध होता है उसे प्रायः सत्य का उद्घाटन समझा जाता है। इस सत्य को 'सौन्दर्य' जैसे शब्द से अभिहित करने की परंपरा रही है। पर, यह बात को रागात्मक ढंग से कहने का तरीका है। किसी गंभीर अभिवृत्ति को उद्दीप्त करना एक बात है और उसकी व्याख्या देना दूसरी बात। दोनों को मिला देना

और अभिवृत्ति के उद्दीपन को तथ्यकथन का रूप देना भ्रममूलक है और बौद्धिक ईमानदारी का सूचक नहीं है।

निष्कर्ष यह कि काव्यानुभूति के अवशिष्ट प्रभाव के रूप में जिस अभिवृत्ति-मूलक 'वस्तुहीन' रागात्मक विश्वास की प्राप्ति होती है उसे सत्य का उद्घाटक मानकर ज्ञानपरक समझना रिचर्ड्स के अनुसार भूल है। उसके आधार पर आलोचना में जो सत्यसम्बन्धी सिद्धान्त निर्मित होते हैं और जिनमें वैज्ञानिक सत्यों की तरह विश्वास किया जाता है वे एक भारी भ्रम पर आधृत हैं।

अर्थ-विवेचन

पिछले अध्याय मे देखा जा चुका है कि रिचर्ड्स भाषा के दो स्पष्टतया विभिन्न प्रयोग मानते हैं वैज्ञानिक या अभ्युद्देशनात्मक तथा रागात्मक। प्रथम मे शब्दो का प्रयोग अभ्युद्देशन या तथ्यसूचन के लिए होता है, द्वितीय मे अभ्युद्देशन गौण रहता है, उसके द्वारा सवेग या अभिवृत्तियो को जगाना प्रधान उद्देश्य रहता है। कविता मे भाषा का रागात्मक प्रयोग होता है जबकि विज्ञान या विविध शास्त्रो मे भाषा के वैज्ञानिक या प्रतीकात्मक (सिम्बॉलिक) प्रयोग के दर्शन होते हैं। रिचर्ड्स ने इन दोनो प्रयोगो को दो विभिन्न मानसिक क्रियाओ पर आधृत माना है जिनका विवेचन पिछले अध्याय मे हो चुका है। भाषा-प्रयोग के इस विच्छेद के आधार पर स्वाभावत अर्थ के भी दो प्रकार हो जाते हैं: प्रतीकात्मक या अभ्युद्देशनात्मक अर्थ तथा रागात्मक अर्थ (इमोटिव मीनिंग)। प्रथम प्रकार के अर्थ का वैज्ञानिक प्रतिपादन रिचर्ड्स और उनके सहयोगी सी० के० आग्डेन द्वारा लिखित 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' नामक पुस्तक मे हुआ है जो 'अर्थविज्ञान' (सिमैंटिक्स) की पुस्तक है, हालाँकि लेखको ने 'अर्थविज्ञान' की जगह 'प्रतीक-विज्ञान' (सायस ऑफ सिम्बॉलिज्म) शब्द को स्वीकार किया है। द्वितीय प्रकार के अर्थ यानी रागात्मक अर्थ का समीक्षात्मक आधार 'प्रिंसिपुल्स' मे प्रतिष्ठित किया गया है। 'द मीनिंग ऑफ मीनिंग' के द्वितीय सस्करण की भूमिका मे स्वय लेखक ने इसका सकेत किया है।

अर्थतत्त्व के विवेचन मे रिचर्ड्स की गभीर अभिरुचि रही। उनकी अन्य पुस्तको मे भी उनके अर्थसम्बन्धी विचार उपलब्ध होते हैं। उनकी व्यावहारिक आलोचना की पुस्तक 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' मे अर्थ के चार प्रकारों का विवेचन किया गया है जिसका परिचय आगे दिया जायगा। 'कॉलरिज ऑन इमैजिनेशन' नामक उनकी पुस्तक मे भी कॉलरिज के कल्पनासम्बन्धी विचारो की व्याख्या और विश्लेषण के क्रम मे उनके अर्थसम्बन्धी विचारों की झाँकी मिलती है। कॉलरिज को रिचर्ड्स ने अर्थतत्त्व के दार्शनिक विवेचक (सिमैसियॉलॉजिस्ट) के रूप मे देखा है।[1] इसीलिए उनके कल्पनासम्बन्धी विचारो की व्याख्या अर्थमीमासा के दृष्टिकोण से की है। उक्त पुस्तक मे उनकी प्रमुख जिज्ञासा कविता मे शब्दो के व्यवहार मे

1. He was a semasiologist.—*I. A. Richards* : COLERIDGE ON IMAGINATION, P. XI.

रही है।[१] रिचर्ड्स की व्यावहारिक आलोचनाओ मे अर्थविश्लेषण का प्रमुख हाथ रहा है। 'द फिलॉसोफी ऑफ रेटोरिक' नामक अपने ग्रन्थ मे, जो उनके वाग्मिताशास्त्र (रेटोरिक) पर दिये गये भाषणो का सग्रह है, 'अर्थ के प्रसग-सिद्धान्त' (कण्टेक्स्टुअल थियरी ऑफ मीनिग) की स्थापना की गयी है। १९५५ ई० मे प्रथम बार प्रकाशित उनकी 'स्पेकुलेटिव इन्स्ट्रूमेंट्स' नामक पुस्तक मे भी एक निबन्ध 'रागात्मक अर्थ' पर है जिसका शीर्षक है 'इमोटिव मीनिग एगेन'। इस निबन्ध मे उन्होने मैक्स ब्लैक के द्वारा अपने भाषाविवेचन पर किये गये आक्षेपों का उत्तर दिया और 'रागात्मक अर्थ' मे अपनी आस्था को दुहराया है। काव्य के अर्थ के विषय मे इन समग्र स्थलो पर रिचर्ड्स के जो मुख्य विचार प्रकट हुए हैं उनका सक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

अपनी 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' नामक पुस्तक मे रिचर्ड्स ने कविता के अर्थ पर विचार करते हुए चार प्रकार के अर्थों का निर्देश किया है। वे इस प्रकार हैं : (१) अभिधेयार्थ (सेन्स), (२) भावना (फीलिग), (३) पाठक के प्रति वक्ता की अभिवृत्ति (टोन) तथा (४) उद्देश्य (इन्टेन्शन)। प्रथम का स्पष्टीकरण करते हुए उनका कथन है कि हम जब भी कुछ बोलते हैं तो कोई बात कहते हैं और जब सुनते हैं तो किसी बात की अपेक्षा रखते हैं। किसी वस्तु या व्यापार का यह निर्देश या सूचन हमारे कथन का मुख्यार्थ या 'सेन्स' है। किन्तु हम जिन वस्तुओं या व्यापारों का सूचन या अभ्युद्देशन करते हैं उनके प्रति हमारी विशिष्ट अभिवृत्ति (ऐट्टीट्यूड) होती है, *उनके प्रति कुछ भावनाएँ होती हैं। हम भाषा* का प्रयोग करते समय वस्तुनिर्देश के साथ-साथ अपनी भावना को भी व्यक्त करते है। इसलिए अर्थ का एक अग है भावना। इसके अलावा वक्ता या लेखक श्रोता या पाठक के प्रति सामान्यत. एक विशिष्ट अभिवृत्ति भी रखता है। इसी को रिचर्ड्स ने 'टोन' कहा है। इन तीनो के अतिरिक्त वक्ता या लेखक के कुछ चेतन-अचेतन उद्देश्य होते हैं। वह कुछ खास प्रभाव उत्पन्न करना चाहता है। उसका यह उद्देश्य ही 'इन्टेन्शन' कहा गया है।

रिचर्ड्स का मत है कि अलग-अलग स्थितियो मे उपर्युक्त चार अर्थो मे से *कुछ को प्रधानता और कुछ को गौणता प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ, वैज्ञानिक* प्रतिपादनों मे प्रथम प्रकार के अर्थ 'सेन्स' को सर्वाधिक प्रमुखता मिलती है। किन्तु जैसे ही कोई विज्ञान की पूर्वकल्पनाओ और परिणामो को लोकप्रिय बनाना *चाहेगा और इसके लिए प्रचार करेगा, उसकी भाषा मे अर्थ के दूसरे रूपों का* प्रवेश हो जायगा। कविता मे कथन अपना उद्देश्य आप नही होते। उनकी सत्ता भावना पर प्रभाव डालने की दृष्टि से रहती है। इसीलिए उन कथनों की सचाई मे सन्देह करना या उनकी सच्चे कथन के रूप मे ही परीक्षा करना कविता की भाषा को

ठीक से नहीं समझता है। कविता के अधिकांश कथन भावनाओं और अभिवृत्तियों के जगाने के लिए व्यवहृत होते हैं न कि किसी सिद्धान्त की स्थापना के लिए। इस तरह कविता में रागात्मक उद्देश्य प्रधान होते हैं, अभ्युद्देशनात्मक गौण। 'सेन्स' की प्रधानता वहाँ नहीं रहती, वह तो साधन होता है।

रिचर्ड्‌स के काव्यगत अर्थसम्बन्धी विचार इतने व्यापक हैं कि उनमें लय का भी समावेश हो जाता है। 'प्रिंसिपुल्स' के 'लय एवं छन्द' शीर्षक अध्याय में उन्होंने काव्य में प्रयुक्त ध्वनियों का महत्त्व केवल ध्वनि की दृष्टि से मानना अस्वीकृत कर दिया था, यह देखा जा चुका है। शब्दों में उन्होंने कोई आन्तरिक साहित्यिक मूल्य की सत्ता न मानी और बताया कि शब्दों का प्रभाव प्रकरण और उसके अर्थ के साथ हुए समझौते पर निर्भर करता है। अपने इन विचारों को और भी स्पष्ट करते हुए अपनी 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' नामक पुस्तक में उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि काव्य की लय अर्थ को प्रभावित करती है और अर्थ काव्य की लय को प्रभावित करता है। उनका कथन है कि अच्छी लय और बुरी लय का अन्तर केवल ध्वनिक्रम का अन्तर नहीं है, वह अर्थ से भी सम्बन्ध रखता है।[3] रिचर्ड्‌स लय को ध्वनियोजना का ही विषय नहीं मानते, वे उसे अर्थ से सम्बद्ध मानते हैं। ध्वनि का कोई महत्त्व नहीं है, ऐसी बात नहीं। वे आरंभिक उपादान हैं, ठीक उसी तरह जैसे कोषगत अर्थ कवि के लिए आरंभिक उपादान होते हैं। किन्तु, लय के निर्माण में केवल ध्वनियों का ही हाथ नहीं होता। 'कॉलरिज ऑन इमैजिनेशन' नामक अपनी पुस्तक में रिचर्ड्‌स की स्थापना है कि कविता में छन्द की गति अर्थ की गति बन जाती है और छन्द को अर्थ से अलग माननेवाला छन्दःशास्त्र असावधान विचारों की सृष्टि होता है।[4]

'द फिलॉसोफी ऑफ़ रेटोरिक' में संकलित द्वितीय भाषण में, जिसका शीर्षक 'एम्स ऑफ डिस्कोर्स ऐंड टाइप्स ऑफ कण्टेक्स्ट' है, रिचर्ड्‌स ने जिन समस्याओं पर विचार किया है उन्हें दो भागों में इस प्रकार बाँटा है : (१) हमारे लिखने या बोलने के कौन-से उद्देश्य है? यानी भाषा के कार्य क्या हैं? (२) मन और संसार के बीच कौन-सा ऐसा सम्बन्ध है जिसके द्वारा मन की घटनाएँ संसार की अन्य घटनाओं का अर्थद्योतन करती हैं? या किसी वस्तु का 'विचार' उस वस्तु से कैसे सम्बद्ध हो जाता है? या वस्तु का उनके वाचकों या अभिधानों से क्या सम्बन्ध है?[5] रिचर्ड्‌स का मत है कि इन प्रश्नों पर विचार करने से भाषा के कार्य की रूपरेखा और अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगी।

उपर्युक्त प्रश्नों पर विचार करते हुए रिचर्ड्‌स की स्थापना है कि हमलोग ऐसी वस्तुएँ हैं जो दूसरी वस्तुओं के प्रति विलक्षण अनुक्रिया रखते हैं। वस्तुओं

3 PRACTICAL CRITICISM, P. 227.
4. COLERIDGE ON IMAGINATION, P. 119
5 THE PHILOSOPHY OF RHETORIC, P. 2

के प्रति हमारी अनुक्रिया (रेस्पांन्स) की यह विशेषता है कि किसी भी उद्दीपन के प्रति वह उन अन्य वस्तुओं से हमेशा प्रभावित होती है जो अतीत में प्रायः समान उद्दीपन के कारण घटित हुई थी। अतीत की समान घटनाओं से सम्बद्ध प्रभाव हमारी अनुक्रियाओं की विशेषता के निर्माण में हाथ रखते हैं और यह अर्थ है। हमारा अर्थबोध इसीलिए वस्तुओं के वर्तमान उद्दीपनमात्र से सम्बद्ध नहीं होता, वह अतीत की ओर भी प्रयाण करता है। वस्तु के प्रत्यक्षण (पर्सेप्शन) से हमारी जो अनुक्रियाएँ उत्पन्न होती हैं उनकी विशेषताएँ वर्तमान अवसर के साथ-साथ अतीत से भी प्राप्त होती हैं। इसीलिए सभी प्रकार के चिन्तन एक प्रकार के पृथक्करण (सॉर्टिंग) होते हैं।[6] इसके मानी यह है कि अर्थ आरंभ से ही सामान्य, सूक्ष्म और भावात्मक होते हैं। आरंभ में हम सामान्य भावात्मकता को ग्रहण करते हैं, फिर जगत् के प्रभाव से उस सामान्य भावात्मकता को अलग-अलग प्रकारों में बाँटने हैं और तब उन प्रकारों के सामान्य तत्व के आधार पर स्थूल विशेषों पर पहुँचते है। इस तरह हम सामान्य या जाति से विशिष्ट या व्यक्ति की ओर बढ़ते हैं। रिचर्ड्स ने अपनी व्याख्या साहचर्यवादी मनोविज्ञान के अनुरूप की है जिसका प्रमाण यह है कि इस विश्लेषण के क्रम में उन्होंने साहचर्यवादी मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स के कथन को अपने मत के समर्थन में प्रमाण-स्वरूप उद्धृत किया है।

उपर्युक्त प्रक्रिया के आधार पर रिचर्ड्स शब्द के अर्थ की व्याख्या 'प्रत्यायुक्त प्रभावोत्पादकता' (डेलिगेटेड एफिकेसी) के रूप में करते हैं।[7] शब्द के अर्थ में उन तत्वों की स्थिति भी रहती है जो तत्काल मौजूद नहीं रहते है। इस तरह, शब्द कुछ अनुपस्थित तत्वों की स्थापानन्नता की भी विशेषता रखते है। इसीलिए उनमें अनुपस्थित तत्वों की प्रभावोत्पादकता प्रत्यायुक्त (डेलिगेटेड) रहती है। वे कुछ वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। शब्द यह प्रतिनिधित्व प्रकरण या प्रसंग (कॉण्टेक्स्ट) के द्वारा करते है। इसीलिए अर्थ में प्रकरण या प्रसंग का महत्व-पूर्ण हाथ है।

'प्रसंग' को रिचर्ड्स ने पारिभाषिक रूप में ग्रहण किया है और उसकी परिभाषा भी दी है। उनके 'प्रसंग' का अभिप्राय न तो 'साहित्यिक प्रसंग' है जिसमें किसी शब्द की व्याख्या करते समय हम उसके पूर्ववर्ती या परवर्ती शब्दों पर विचार करते है और न इसका अर्थ वे परिस्थितियाँ हैं जिनमें किसी शब्द का प्रयोग होता है। उन्होंने प्रकृति के उन आवर्तनों पर विचार करते हुए 'प्रसंग' का अर्थ

6. All thinking from the lowest to the highest—whatever else it may be—is sorting.—*Ibid, P. 30.*

7. If we sum up thus far by saying that meaning is delegated efficacy, that description applies above all to the meaning of words, whose virtue is to be substitutes exerting the powers of wh

स्पष्ट किया है जिनके विषय में कार्यकारणसिद्धान्त कथित होते हैं। 'अर्थ' की भी कार्यकारणसिद्धान्त के रूप में उन्होंने व्याख्या की है। कारणसिद्धान्त (कॉजल लॉ) का अर्थ यह है कि कुछ परिस्थितियों में यदि ऐसा हुआ तो ऐसा होगा। पहली घटना कारण मानी जाती है और दूसरी कार्य। सामान्यतः कारण पहले और कार्य बाद में होता है पर कभी-कभी दोनों साथ भी होते हैं। अन्तिम कारण की चर्चा करते समय कभी-कभी हम दोनों को उलट भी देते हैं। विविध उद्देश्यों से हम घटनाओं के कारणकार्यसम्बन्ध का क्रम ग्रहण करते हैं और इसमें मनमानी करते हैं। साथ-साथ घटित होनेवाली पूर्ववर्ती और परवर्ती घटनाओं के संपूर्ण वर्ग या प्रसंग में से किसी एक को 'कारण' के रूप में मनमाने ढंग से चुन लेते हैं। जैसे, किसी हत्या के मामले की छानबीन करनेवाला यह कहता है कि हत्या किसी हत्यारे के कारण हुई। वह यह नहीं कहता कि जिसकी हत्या हुई वह हत्यारे से मिला इसीलिए उसकी हत्या हुई या कि छाती की धड़कन बन्द होने से हत्या हुई। उसकी एक विशिष्ट कारण में दिलचस्पी होती है, इसीलिए वह उसी को चुन लेता है। रिचर्ड्स का कथन है कि 'अर्थ के कारणसिद्धान्त' में भी उन्होंने इसी प्रकार कुछ खास नियमों में ही अभिरुचि रखी है, अन्यों में नहीं। 'प्रसंग' का अर्थ स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि सामान्यतः 'प्रसंग' का मतलब घटनाओं का वह समग्र पुंज है जो साथ-साथ घटित होता है। किन्तु, इन प्रसंगों में से कोई एक चीज, खासकर कोई एक शब्द उन अन्य अंगों का कार्य कर देता है जिन्हें घटनाओं के आवर्तन से हटाया जा सकता है। इस तरह प्रसंगों का संक्षेपण हो जाता है। जब यह संक्षेपण घटित होता है तो दूसरों की शक्ति को ले लेनेवाले उस शब्द का अर्थ प्रसंग का लुप्त अंग होता है। मतलब यह कि प्रसंग कार्यकारणरूप से सम्बद्ध जिन घटनाओं का पुंज होता है उनमें से कुछ कड़ियों का लोप हो जाता है। लुप्त हुए अंग का प्रभाव कोई शब्द ग्रहण कर लेता है। इसीलिए उस शब्द का अर्थ प्रसंग का लुप्त अंग होता है जिसकी प्रभावशालिता का वह प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार रिचर्ड्स ने 'प्रसंग' के पारिभाषिक अर्थ की स्थापना करते हुए अर्थ को 'प्रसंग का लुप्त अंग' (मिसिंग पार्ट ऑफ द कण्टेक्स्ट) कहा है।[8]

अर्थ को 'प्रसंग का लुप्त अंग' मानने का यह स्वाभाविक परिणाम है कि अस्पष्टता (ऐम्बिगिटी) को दोषस्वरूप न माना जाय। प्राचीन लोग इसे दोष मानते आये हैं पर रिचर्ड्स इसे भाषा की शक्ति मानते हैं, खासकर कविता और धर्म में।[9] रिचर्ड्स यह मानते हैं कि अस्पष्टता कोई निरपेक्ष वस्तु नहीं है। संप्रेषण की आवश्यक शर्त है कि शब्दों के अर्थ के विषय में प्रयोक्ताओं के बीच सामान्य सहमति हो। भाषा एक सामाजिक तथ्य है अतः अर्थ में

8. It is enough for our purposes to say that what a word means is the missing parts of the contexts from which it draws its delegated efficacy —*Ibid, P. 35*

9 *Ibid, P. 40.*

स्थिरता आवश्यक है। स्थिर प्रसंगों से स्थिर अर्थ उत्पन्न होते हैं। छुरी, कलम, दावात जैसे शब्दों के अर्थ स्थिर होते हैं चूँकि इन शब्दों का जिन स्थितियों मे प्रयोग होता है वे प्रायः स्थिर होती हैं। अर्थ की स्थिरता कभी-कभी कृत्रिम ढग से भी आरोपित की जा सकती है। वैज्ञानिक, पारिभाषिक शब्दों की स्थिरता ऐसी ही होती है। रूढ़िबद्ध होकर विज्ञान के पारिभाषिक शब्द अर्थ की स्थिरता प्राप्त करते हैं। किन्तु, पारिभाषिक शब्दों मे युक्त भाषा के अतिरिक्त जो भाषा प्रयुक्त होती है उसमे शब्द अनिवार्यतः अपना अर्थ बदलते चलते हैं। यदि भाषा मे अर्थ की यह अस्थिरता और लोच (सप्लनेस्) न रहे तो उसकी सूक्ष्मता समाप्त हो जायगी और वह हमारे उपयोग की वस्तु न रह जायगी।[10] इस तरह रिचर्ड्स अस्पष्टता को न केवल सामान्य वस्तु मानते है, बल्कि उसे ऐसा गुण मानते हैं जिससे भाषा की सूक्ष्मता सूचित होती है। अस्पष्टता को अर्थ के अनेक स्तरो का सूचक मानते हुए उसे रिचर्ड्स ने विशेषतः काव्य में महत्त्वपूर्ण वस्तु माना है। रिचर्ड्स के शिष्य एम्पसन ने अस्पष्टता के सात प्रकारों का विवेचन अपनी 'सेव्न टाइप्स ऑफ ऐंबिग्विटी' नामक पुस्तक मे किया है।

'द फिलॉसफी ऑफ रेटोरिक' के तीसरे भाषण मे, जिसका शीर्षक 'द इण्टर-इनैनिमेशन ऑफ वर्ड्ज' है, रिचर्ड्स की स्थापना यह है कि शब्द एक-दूसरे मे विच्छिन्न और स्वतंत्र नहीं होते। वे परस्पर एक-दूसरे को अनुप्राणित करते है। जिस प्रसंग मे शब्दो का प्रयोग होता है उस सपूर्ण प्रसग के कारण उनकी विशेषताएँ निर्धारित होती हैं। अतीत मे जिन प्रसंगो से वे शब्द सम्बद्ध रहे हैं उनका प्रभाव और शक्ति भी वे वर्तमान प्रसंग को प्रदान करते हैं। इस तरह शब्दो का पारस्परिक अनुप्राणन घटित होता है। एम्पसन आदि नवीन समीक्षकों की समीक्षा ने स्पष्ट कर दिया है कि किसी सूक्ष्म काव्यसंदर्भ में अर्थ की कैसी सकुल समृद्धि रहती है।

'द फिलॉसफी ऑफ रेटोरिक' के अन्तिम दो भाषणो मे रिचर्ड्स ने रूपक (मेटाफर) पर अपने 'अर्थ के प्रसंगसिद्धान्त' के आलोक मे विचार किया है। उनके अनुसार, 'रूपक' मे केवल सादृश्य या तुलना-भर विवक्षित नहीं रहती। रिचर्ड्स ने रूपक की तुलना अक्षकील (लिन्चपिन) से की है जो दो प्रसंगों को मिलाता है। सामान्य भाषा मे जो प्रकरण या प्रसग असम्बद्ध रहते हैं, रूपक के द्वारा वे सम्बद्ध हो जाते है। इसीलिए रूपक किसी पूर्वकथित कथन की सुन्दर आवृत्तिमात्र नही होता, वह नया अर्थ प्रदान करता है। रूपक की परिभाषा रिचर्ड्स ने 'प्रसग के आदान-प्रदान' (ट्रान्जेंक्शन बिटविन कांण्टेक्स्ट्स) के रूप मे दी है। रूपक वह बिन्दु है जिसपर अनेक प्रसंग मिलकर अर्थ की अनेकता को

10. Language, losing its subtlety with its suppleness, would lose also its power to serve us—*Ibid*, P. 73

घटित करते हैं। अतः रूपक भाषा की उत्कृष्ट शक्ति का, अर्थ की सघनता का सूचक है। काव्य में उसका इसी दृष्टि से मूल्य है।

निष्कर्ष यह कि रिचर्ड्स का जो 'अर्थ का प्रकरणसिद्धान्त' 'द फिलॉसफी ऑफ रेटोरिक' में प्रतिपादित हुआ है, वह काव्य में सरलता की अपेक्षा अर्थ की अस्पष्टता को अधिक महत्त्व देनेवाला है। यह अस्पष्टता दोष न होकर गुण है इसे रिचर्ड्स एवं उनके शिष्यों ने 'ऐम्बिगुइटी' माना है।

'प्रिंसिपुल्स' में 'अपवर्जी काव्य' (पोइट्री ऑफ एक्सक्लूजन) तथा 'अन्तर्वेशी काव्य' (पोइट्री ऑफ इन्क्लूजन) के वर्गीकरण के पीछे जो मान्यता है उसका सम्बन्ध रिचर्ड्स की अर्थसम्बन्धी उपर्युक्त धारणाओं में है। अर्थ की सघनता और अनेकस्तरीयता को महत्त्व देनेवाला 'अन्तर्वेशी काव्य' को उत्तम मानेगा ही।

(ग) समीक्षा

द्वादश अध्याय

सिद्धान्त-मीमांसा

प्रथम अध्याय मे रिचर्ड्स के आलोचनात्मक दृष्टिकोण के स्पष्टीकरण के क्रम में कहा गया है कि उन्होंने वैज्ञानिकता को प्रश्रय दिया है। देखना यह है कि उन्होंने वैज्ञानिकता को किस रूप में और किस सीमा तक ग्रहण किया है।

इस सम्बन्ध में सबसे पहली ध्यान देने योग्य बात यह है कि रिचर्ड्स ने आलोचना को 'कला' न मानकर उसे शास्त्र के रूप मे प्रतिष्ठित किया। वे उन-लोगों की कोटि मे नही आते जो आलोचना को भी अन्य कलात्मक सृष्टि जैसी एक सृष्टि मानते हैं। आलोचना की भाषा का आदर्श उन्होंने वैज्ञानिक प्रतिपादनों मे प्रयुक्त भाषा मे देखा है जिसमे स्पष्टता, तथ्यपरकता तथा तार्किक सम्बन्धों की प्रधानता रहती है। काव्यात्मकता, रहस्यात्मकता और अस्पष्टता को वे आलो-चना के गंभीर दोष मानते हैं। उन्ही की शब्दावली का प्रयोग करे तो कहेंगे कि उनकी आलोचना की भाषा रागात्मक (इमोटिव) न होकर अभ्युद्देशनात्मक (रेफरेंशियल) है।

अपनी आलोचना को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए उन्होंने मनोविज्ञान का सहारा लिया है। वे अपने समीक्षासिद्धान्तों के स्पष्टीकरण के लिए एक व्यवस्थित मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं और उसी के आधार पर समीक्षा के प्रत्येक प्रश्न पर प्रकाश डालते हैं। मनोविज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली मे ही वे अपने सिद्धान्तो का कथन करते हैं। काव्यानुभूति को जीवन की अन्य अनु-भूतियों से अभिन्न मानते हुए उसकी मनोवैज्ञानिक विवृति करते हैं तथा उसके मूल्य का भी मनोवैज्ञानिक स्वरूप ही उद्घाटित करते हैं। निष्कर्ष यह कि समीक्षासिद्धान्तों के लिए मनोविज्ञान को वे आधार और प्रमाण मानते हैं।

आलोचना का मनोविज्ञान से जैसा सम्बन्ध रिचर्ड्स ने स्थापित किया है उसे स्वीकार करने का अर्थ यह है कि आलोचक के लिए मनोविज्ञान की गहरी जान-कारी ही अपेक्षित नहीं है, उसे अपने समीक्षासिद्धान्तो की यथार्थता प्रमाणित करने से पहले अपने मनोविज्ञानविषयक विचारो की यथार्थता प्रमाणित करनी होगी। मनोविज्ञान के क्षेत्र मे होनेवाले नवीन अनुसधानों के आलोक मे उसे अपने समीक्षा-सिद्धान्तो के संशोधन के लिए हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए। निष्कर्ष यह कि समीक्षा के सैद्धान्तिक विवाद मनोवैज्ञानिक विवादो के निर्णयों के आधार पर निर्णीत होने चाहिए तथा सौन्दर्यशास्त्र को कला का दर्शन न मानकर मनोविज्ञान का विनि-

योगात्मक शास्त्र मानना चाहिए। रिचर्ड्स के समीक्षासम्बन्धी दृष्टिकोण को स्वीकार करने के ये स्वाभाविक, तार्किक निष्कर्ष हैं।

रिचर्ड्स की आलोचना के रूप में यह कहा जा सकता है कि जिस मनोविज्ञान का सहारा उन्होंने लिया है, वह अपनी प्रयोगावस्था में है। मानसिक व्यापारों का जो खाका उन्होंने खींचा है, वह सर्वस्वीकृत नहीं है। मनोविज्ञान के सिद्धान्तों की सत्यता भौतिक विज्ञानों के स्तर की नहीं है चूँकि उसकी पद्धति भौतिक विज्ञानों में अपनायी जानेवाली पद्धति का पूर्णतः अवलम्बन नहीं करती। प्रायोगिक मनोविज्ञान भी अन्तर्दृष्टि (इण्ट्रास्पेक्शन) को पद्धति के रूप में सर्वथा अस्वीकृत नहीं करता जबकि उस पद्धति को पूर्णतः निर्भ्रान्त मानना कठिन है। व्यवहारवादियों (बिहेवियरिस्ट्स) ने अन्तर्दृष्टि को पद्धति के रूप में अस्वीकृत कर मनोविज्ञान को भौतिक विज्ञान के स्तर तक ले जाने की चेष्टा जरूर की, पर शीघ्र ही उनकी सीमाएँ स्पष्ट हो गयीं। मनोविज्ञान के विविध सम्प्रदायों के दावे अलग-अलग हैं। प्रत्येक अपने को सत्य के सर्वाधिक समीप घोषित करता है। मनोविश्लेषण के जन्मदाता फ्रायड मनोविश्लेषण को भौतिक विज्ञान के अतिरिक्त एकमात्र विज्ञान मानते हैं जिनके सिद्धान्तों का सीमित उपयोग ही रिचर्ड्स ने किया है। दूसरी तरफ मार्क्सवादी पैवलोव के 'अनुबन्धित प्रतिवर्त' (कण्डीशण्ड रिफ्लेक्स) के सिद्धान्त को मनोविज्ञान का सही सिद्धान्त मानते हैं और फ्रायड के मनोविश्लेषण को 'बुर्जुआ मनोविज्ञान' की संज्ञा देते हैं। 'परा मनोविज्ञान' अलग अभी प्रयोग में संलग्न है। इस तरह विविध मतवादों और सिद्धान्तों के बीच से जिस शास्त्र का अभी सर्वस्वीकृत स्वरूप ही स्पष्ट नहीं हो सका है और जो अपने 'विज्ञान' माने जाने का दावा ही सिद्ध नहीं कर सका है उसके थोड़े-से सिद्धान्तों को लेकर और अधिकांश की यथार्थता की परीक्षा किये बिना ही उन्हें परित्यक्त कर समीक्षा-सिद्धान्तों की स्थापना करना तथा उनकी मनोवैज्ञानिकता या वैज्ञानिकता का दावा करना कितना उचित है, यह स्पष्ट है।

किन्तु, उक्त आलोचनाओं का उत्तर रिचर्ड्स के वैज्ञानिक दृष्टिकोण में ही निहित है। उन्होंने स्वयं अनेक स्थलों पर यह स्वीकार किया है कि मनोविज्ञान अभी मानसिक व्यापारों की पूर्ण व्याख्या कर पाने में समर्थ नहीं हुआ है और अभी अनेक महत्त्वपूर्ण विषय रहस्यमय बने हुए हैं। उनका तो इतना ही दावा है कि मनोविज्ञान के नवीनतम अनुसंधानों से मन के विषय में एक सामान्य रूपरेखा बँध चली है और उसके आधार पर समीक्षा के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश डाला जा सकता है। उनका पक्ष है कि अबतक की प्राप्त जानकारी के आधार पर जो-कुछ स्थिर किया जा सकता है, उन्होंने स्थिर किया है। 'प्रिंसिपुल्स' की भूमिका का यह वाक्य प्रथम अध्याय में उद्धृत किया जा चुका है कि ३००० ई० के मनुष्य के पास मनोविज्ञान की जो जानकारी रहेगी उसकी तुलना में हमारा आधुनिक मनोविज्ञान एवं सौन्दर्यशास्त्र दयनीय प्रतीत होगा। आशय यह कि रिचर्ड्स

अपने सिद्धान्तों की सामयिकता (प्रॉविजनैलिटी) की सम्भावना को अस्वीकृत नहीं करते। उन्हें तो स्नायुविज्ञान के भविष्य में पूरी आस्था है जिसकी उपलब्धियों से समीक्षा के सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान हो जायगा, ऐसा उनका विश्वास है।

वस्तुतः रिचर्ड्स की आलोचना के रूप में ऊपर जो-कुछ कहा गया है वह सामान्यतः विज्ञान की आलोचना का ही दूसरा रूप है। धर्म, दर्शन और कविता के हिमायती वैज्ञानिक सत्यों की सीमा का निर्देश करते हुए प्रायः यह कहा करते हैं कि विज्ञान ने अबतक खण्डात्मक ज्ञान ही प्रदान किये हैं। ब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण व्याख्या का तो प्रश्न ही अलग है, वह अभी उसके अत्यल्प अंश की भी पूरी व्याख्या नहीं दे पाया है। इतना ही नहीं, उसके नियम प्रायः बदल जाया करते हैं। जिस नियम को आज हम पूर्ण सत्य मानकर चलते हैं, कल वही गलत प्रमाणित हो जाता है। इस तरह विज्ञान हमें सामयिक सत्य (प्रॉविजनल ट्रूथ) ही देता है। उसकी सबसे अन्तिम भूल सत्य की तरह मान्य होती है। वैज्ञानिक मनोवृत्ति और दृष्टिकोण रखनेवाले के पास ऐसी आलोचनाओं का उत्तर मौजूद रहता है। अज्ञेयवाद को वह स्वीकार करके नहीं चलता, उसे तो बुद्धि की सर्वशक्तिमत्ता पर भरोसा है। अपने सत्यों को वह तात्कालिक मानकर चलता है और अगले अनुसन्धानों से उन्हें संशोधित करने से हिचकता नहीं। उसके पास सबसे बड़ा अस्त्र यह है कि सत्य को निर्भ्रान्त रूप से जानने का फिर दूसरा साधन या ढंग भी क्या है? अतः उपर्युक्त ढंग की आलोचना से सही वैज्ञानिक दृष्टिकोण का व्यक्ति अविचलित रहता है और उसे निरर्थक मानता है।

अतः, रिचर्ड्स के सिद्धान्तों की आलोचना के संदर्भ में मूल प्रश्न यह है कि समीक्षा को हम कला का दर्शन मानते हैं या विज्ञान। यदि हम उसे विज्ञान मानते हैं तभी वैज्ञानिक दृष्टि और पद्धति को स्वीकार कर सकते हैं तथा किसी सिद्धान्तविशेष के बचाव के लिए वैज्ञानिकतावाद की शक्तियों का उपयोग कर सकते हैं। इसके साथ ही दूसरा प्रश्न यह है कि रिचर्ड्स ने वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि और वैज्ञानिकतावाद (साइंटिज्म) को कहाँ तक अपनाया है।

पहले हम दूसरे प्रश्न पर ही विचार करें। मैक्स ब्लैक ने रिचर्ड्स के समीक्षा-सिद्धान्तों पर वैज्ञानिकतावाद का आरोप लगाया है जिसका उत्तर रिचर्ड्स ने अपने नवीन ग्रन्थ 'स्पेकुलेटिव इन्स्ट्रुमेंट्स' के 'इमोटिव मीनिंग एगेन' शीर्षक निबन्ध में दिया है। उक्त निबन्ध में रिचर्ड्स ने यह अस्वीकार किया है कि वे वैज्ञानिकतावाद (साइंटिज्म) के समर्थक हैं। वैज्ञानिकतावाद वैज्ञानिक पद्धति के सार्वभौमत्व (यूनिवर्सैलिटी) में आस्था का नाम है। रिचर्ड्स में इस प्रकार की आस्था नहीं है, ऐसा उनका कथन है। उन्होंने इसे स्वीकार किया है कि उनकी आरम्भिक रचनाओं को 'वैज्ञानिकतावाद' का समर्थक समझा गया, पर वे 'प्रिंसिपुल्स' के उस वाक्य को उद्धृत करते हुए इस धारणा की गलती संकेतित करते हैं जिसमें उन्होंने केवल वैज्ञानिक विश्वासों के आधार पर ही मन को नवीन रूप में ढालने के प्रयत्न की

व्यंजना का जिक्र किया है।[1]

वस्तुतः रिचर्ड्स 'प्रिंसिपुल्स' में 'वैज्ञानिकतावाद' के पूर्ण समर्थक के रूप में सामने नहीं आये हैं यद्यपि पुस्तक जिस पुस्तकमाला (इण्टरनैशनल लाइब्रेरी ऑफ साइकॉलोजी, फिलॉसफी ऐंड साइंटिफिक मेथड) के अन्तर्गत प्रकाशित हुई उसके नाम से तथा पुस्तक मे अनेक स्थानो पर अपनायी गयी युक्तियों से यह धारणा बँधती है कि लेखक 'वैज्ञानिकतावाद' का समर्थक है। मूल्य को निरपेक्ष, अतीन्द्रिय एवं अव्याख्येय माननेवाले विचार का खण्डन, मूल्यप्रक्रिया के रूप मे मूल्य की मनोवैज्ञानिक व्याख्या, सम्प्रेषणप्रक्रिया मे आत्मवाद (एनीमिज्म) या ऐसी ही किसी अनुभवातिक्रमणवादी (ट्रान्सेंडेंटल) विचार की अस्वीकृति, कला के सत्योद्घाटनसिद्धान्तों का खण्डन तथा भाषा के द्विविध प्रयोगों के आत्यन्तिक विच्छेद के समर्थन के विषय में रिचर्ड्स ने जो-कुछ लिखा है उससे किसी को भी यह धारणा स्वाभाविक रूप मे बँध सकती है कि लेखक 'वैज्ञानिकतावाद' का अनुयायी है। किन्तु, 'प्रिंसिपुल्स' में 'वैज्ञानिकतावाद' के विरोध मे पड़नेवाली बातों की कमी नहीं है।

रिचर्ड्स ने 'प्रिंसिपुल्स' के प्रथम अध्याय मे यह दिखाया है कि प्रयोगशाला की विधि मे विश्वास करनेवाला 'प्रायोगिक सौन्दर्यशास्त्र' काव्यानुभूति जैसी संकुल वस्तु के प्रभाव की व्याख्या एवं मूल्यांकन कर पाने मे असमर्थ रहा है। इस स्वीकृति से 'वैज्ञानिकतावाद' में रिचर्ड्स को अनास्था प्रकट होती है। प्रायोगिक सौन्दर्यशास्त्र वैज्ञानिक पद्धति को अपनाता है। उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों में अनास्था व्यक्त करने का अर्थ वैज्ञानिक पद्धति के सार्वभौमत्व मे अनास्था व्यक्त करना है। अनेक स्थलों पर रिचर्ड्स की युक्तियाँ ऐसी हैं जो वैज्ञानिकतावाद की विरोधी हैं। उदाहरणार्थ, मूल्य के निरपेक्ष सिद्धान्त के विषय मे उनका कथन है कि यदि इस सिद्धान्त का खण्डन करने के लिए साधन न भी मिले तब भी 'शिव' का कोई वैसा सिद्धान्त स्थापित करना चाहिए जिसकी सत्यता जाँचने लायक तथ्यों के अनुरूप हो।[2]

रिचर्ड्स को वैज्ञानिक जीवनदृष्टि (साइंटिफिक वेल्तास्चौग) का भी पूर्ण समर्थक नहीं माना जा सकता। इस जीवनदृष्टि का तकाजा है कि न केवल विश्व की व्याख्या केवल वैज्ञानिक रीति से प्राप्त सत्यों के आधार पर की जाय अपितु उन्हीं सत्यों के आधार पर जीवन के सम्बन्ध मे उपयुक्त अभिवृत्तियो या दृष्टिकोणों का भी निर्माण किया जाय। किन्तु रिचर्ड्स ने इससे अपनी असहमति प्रकट की है। वे ऐसा मानते है कि जिन अभिवृत्तियो के निर्माण से जीवन अधिक बढ़िया ढंग

1 "I would like to defend my early writings from the charge of scientism, but there are more important things to do. That they have been read as supporting scientism I admit. But in sum their burden is sufficiently against 'the vain attempt to orient the mind by beliefs of the scientific kind alone'. (PRINCIPLES, P.280)"—SPECULATIVE INSTRUMENTS, *I. A. Richards. Foot note No. I, P. 41.*

2. PRINCIPLES P. 41.

बुद्धिमत्ता का तकाजा है कि हम अधिक-से-अधिक आवेगों की अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करें। इसके लिए उनमें सामजस्य और क्रमबन्धन की अपेक्षा होती है। इसीलिए मनुष्य का सपूर्ण जीवन आवेगों के समायोजन और सघटन के द्वारा उनमें व्यवस्था लाने का प्रयास है। यह प्रयास कभी पूर्ण नहीं होता। मनोव्यवस्था भी गतिशील वस्तु है। अलग-अलग व्यक्तियों मे अलग-अलग मनोव्यवस्थाएँ संभव हैं और एक व्यक्ति के जीवन मे भी अनेक अवसरो पर अनेक प्रकार की मनोव्यवस्थाएँ सभव होती हैं। परिस्थितियों के परिवर्त्तन से मनोव्यवस्था में परिवर्त्तन की अपेक्षा होती है। परिस्थिति के अनुरूप मनोव्यवस्था का निर्माण करने से कष्ट नहीं होता। अत, नैतिकता गतिशील होनी चाहिए। रिचर्ड्स के अनुसार, सर्वोत्तम मनोव्यवस्था वह है जिसमे मानवीय संभावनाओं की कम-से-कम व्यर्थता प्रमाणित हो। यह भी बुद्धिमत्ता के आधार पर ही तय किया गया है। वैयक्तिक नैतिकता ही सामाजिक नैतिकता का रूप ले लेती है। सक्षेप मे, यही रिचर्ड्स के जीवन-सम्बन्धी मूल्यविचार का सार है।

रिचर्ड्स के मूल्यविचारो पर दृष्टि डालते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्राकृतवाद (नैचुरलिज्म) और उपयोगितावाद (युटिलिटेरियनिज्म) का मिला-जुला रूप है। कहा जा चुका है कि मूल्य की व्याख्या रिचर्ड्स ने प्रक्रिया के रूप में की है। मनुष्य की मूल्यधारणा किस तरह क्रियाशील होती है, इसकी व्याख्या के रूप मे ही वे मूल्य का विवेचन करते हैं। अलग से वे कोई ऐसा नैतिक आदर्श प्रतिष्ठित नहीं करते जिसके लिए मनुष्य को प्रेरित होना चाहिए। क्या होना चाहिए, इसका सकेत रिचर्ड्स बहुत थोड़ा और वह भी बहुत सूक्ष्म ढग से देते हैं। ज्यादातर वे यह कहते हैं कि क्या होता है और कैसे होता है। 'यह शिव है' का अनुवाद 'यह अभीप्सित है या किसी आवेग के लिए काम्य है' के रूप मे कर वे अपने मूल्यसिद्धान्त को प्राकृतवादी बना देते हैं। प्राकृतवाद साहित्य में मनुष्य के यथावत् चित्रण को सर्वस्व मानता है। इसकी प्रेरणा कैमरे का आविष्कार है। कैमरा मनुष्य के यथार्थ रूप को चित्रित कर देता है। जोला जैसे फ्रासीसी साहित्यकारों ने साहित्य का कार्य भी कैमरे जैसा ही माना। रिचर्ड्स ने मनुष्य की मूल्याकनप्रक्रिया को भी बहुत-कुछ कैमरे की प्रक्रिया से ही उपस्थित किया है।

पर, रिचर्ड्स का दृष्टिकोण पूर्णत प्राकृतवादी भी नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि मनोविश्लेषण के आधार पर बच्चों की एषणाओं और पसन्दों का जो चित्र सामने आता है उससे रिचर्ड्स निराश होने का कोई कारण नहीं देखते चूँकि उनके अनुसार रीति-रिवाज, अन्धविश्वास, जनमत आदि के नियंत्रण में मनुष्य अपने भीतर नयी सहजप्रवृत्तियों का विकास कर लेता है जिसके परिणामस्वरूप आदिम मानवपशु धर्मात्मा पादरी के रूप मे परिणत हो सकता है। इस विश्वास में आदर्शवादिता की गंध मिलती है। किन्तु, यह आदर्शवादिता बड़े सूक्ष्म और बुद्धिवादी

ढंग से निरूपित की गयी हैं। नैतिक प्रवृत्तियों को भी सहजप्रवृत्ति का रूप दिया गया है यद्यपि इनकी सहजता जन्मजात न होकर बाहरी प्रभावों से आयत्तीकृत मानी गयी है। दूसरी बात यह है कि रिचर्ड्स ने अनेक स्थलों पर 'विशुद्धिवादी' (प्यूरिटन) और भ्रष्टाचारी (डिबॉच)—दोनों प्रकार के व्यक्तियों की निन्दा की है। उनकी निन्दा का आधार यह है कि ये दोनों ऐसी अतिवादी मनोव्यवस्था के होते हैं कि उनके कुछ आवेगों की तो संतुष्टि पूरी तरह होती है पर अधिकांश आवेगों की संतुष्टि से वे वंचित रह जाते हैं। इस बात को वे केवल बुद्धिमत्ता के आधार पर ठीक नहीं मानते हैं। वे उनलोगों की प्रशंसा भी अनुचित मानते हैं जो जीवन में सफल और व्यावहारिक समझे जाते हैं। कारण, ऐसे व्यक्ति भी जीवन के कुछ मूल्यवान् अनुभवों से वंचित रह जाते हैं। प्राकृतवादी दृष्टिकोण की साहित्य में जो परिणति हुई है उसमें मनुष्य की कुछ प्रबल एषणाओं को अधिक महत्त्व प्राप्त है और उनकी संतुष्टि के लिए होनेवाले प्रयत्नों की उपासना-सी की गयी है। रिचर्ड्स के मूल्यदृष्टिकोण के साथ ऐसी बात नहीं है। वे मानते हैं कि सद्भावना और बुद्धिमत्ता के द्वारा हर कोई सामान्यतः प्राप्य मूल्यों का अनुभव कर सकता है। ऐसी स्थिति में बुद्धिमत्ता तो यही है कि अधिक-से-अधिक मूल्यवान् अनुभवों को प्राप्त किया जाय। इस प्रकार रिचर्ड्स बुद्धिमत्ता को प्रधान निर्देशक तत्त्व मानते हैं जबकि प्राकृतवादी कुछ प्रबल एषणाओं को महत्त्व देते हैं।

रिचर्ड्स नैतिकता के विषय में आध्यात्मिक या आधिदैविक दृष्टिकोण को बिलकुल ही स्वीकार नहीं करते। उनका नैतिक दृष्टिकोण आधिभौतिक है। वे न तो 'अंत:करण के देवता' की सत्ता मानते हैं और न नैतिक आचरणों की प्रेरणा के लिए आत्मा, ईश्वर, पुनर्जन्म तथा कर्मफलवाद का आधार लेते हैं। नैतिक आचरणों का पुरस्कार अगले जन्म में मिलता है या स्वर्ग का साम्राज्य इसी धरती पर प्राप्त हो जाता है जैसे अवैज्ञानिक विश्वासों को उन्होंने बिलकुल ही प्रश्रय नहीं दिया है। उनके आधिभौतिक नैतिक दृष्टिकोण के विकास में विज्ञान की उन्नति का और उसके परिणामस्वरूप विकसित होनेवाले आधिभौतिक दर्शनों का मुख्य हाथ है। ऑगस्टस कोम्ते के भाववाद (पाजिटिविज्म) का इस दृष्टिकोण के प्रचार में विशेष योगदान रहा है। रिचर्ड्स यद्यपि पूर्णतः वैज्ञानिकतावाद के अनुयायी नहीं रहे हैं पर उनका दृष्टिकोण बहुत दूर तक वैज्ञानिक है, यह देखा जा चुका है। इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के निर्माण में 'पाजिटिविज्म' का योगदान बहुत है। नैतिकता के प्रति आधिभौतिक दृष्टिकोण अपनाने पर 'स्वभाव', 'बुद्धिमत्ता' या 'उपयोगिता' को आप-से-आप स्वीकार करना पड़ता है। हम नैतिक आचरण क्यों करें, इस प्रश्न का उत्तर आधिभौतिकवादी के पास इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता कि 'यह मनुष्य का सामान्य स्वभाव है।' इस तरह आधिभौतिक नैतिक दृष्टिकोण 'स्वभाववाद' को ग्रहण करके चलता ही है। इस नैतिक दृष्टिकोण के समर्थक रिचर्ड्स इसी

कारण 'स्वभाववाद' को ग्रहण करते हैं। दूसरे, मनोविज्ञान पर पूर्ण आस्था रखने के कारण भी उन्हे 'स्वभाववाद' को नैतिकता में स्थान देना पड़ा।

पर, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, नैतिकता में रिचर्ड्स बुद्धिमत्ता और उपयोगिता को अधिक महत्त्व देते हैं। इसी कारण उनके मूल्यविचार पर हमने उपयोगितावाद का प्रभाव माना है। प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय अध्याय में रिचर्ड्स की वह उक्ति उद्धृत की जा चुकी है जिसमे उन्होंने नैतिकता को बुद्धिमत्तापरक (प्रुडेंशियल) तथा आचारसंहिताओं को कामचलाऊपन की योजना (जेनरल स्कीम ऑफ़ एक्सपेडियंसी) माना है।[3] यह उक्ति रिचर्ड्स के मूल्यदृष्टिकोण को बहुत दूर तक स्पष्ट करती है। किसी इच्छा को संतुष्ट न करने का एकमात्र औचित्य मनुष्य के लिए यही रहता है कि दूसरी महत्त्वपूर्ण इच्छा बाधित हो जायगी। यदि इसकी आशंका न रहे तो मनुष्य उस इच्छा की संतुष्टि के लिए क्रियाशील होगा। यह केवल बुद्धिमत्ता का ही तकाजा है कि कोई अधिक या समान महत्त्व की एषणा को बाधित करके किसी एषणा की संतुष्टि न करे। दूसरी तरफ, अधिकांश आवेगों की अधिकतम संतुष्टि भी बुद्धिमत्ता के लिहाज से ही काम्य है। अतः नैतिकता रिचर्ड्स के अनुसार बुद्धिमत्तापरक सिद्ध होती है।

आचारशास्त्र के विधिनिषेधवाक्यों को रिचर्ड्स कामचलाऊपन की योजना-मात्र मानते हैं। उनके अनुसार, व्यक्ति अथवा समाज जिन नीति-नियमों को परिस्थिति के अनुरूप सुविधाजनक पाता है, अपने लिए ग्रहण कर लेता है। इन नियमों में परिवर्त्तन की आवश्यकता तब पड़ती है जब परिस्थितियाँ बदल जाती हैं और परिणामस्वरूप विगत नीति-नियम असुविधाजनक हो जाते हैं। एक उदाहरण लिया जाय। जिस युग में जनबल सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था और उसी के द्वारा प्रकृति पर अधिक-से-अधिक अधिकार कर अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण किया जा सकता था उस युग का नीतिवाक्य था—'पुत्रोत्पत्ति पितृ-ऋण से उद्धार पाने के लिए आवश्यक कर्तव्य है।' 'पुत्र' शब्द की व्याख्या थी—'पु नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः'। इस युग में भी कभी 'क्रेमलिन' पर उस महिला का फोटो टँगा रहना जिसने संपूर्ण रूस में सबसे अधिक बच्चे पैदा किये हैं, इस बात का सूचक है कि रूस की राष्ट्रिय आवश्यकता क्या थी। जिस राष्ट्र के दुश्मनों की संख्या कभी सबसे ज्यादा रही हो, जिसकी आबादी क्षेत्र के अनुपात में बहुत कम हो और जिसे अनेक आक्रमणों और गृहयुद्धों का सामना करना पड़ा हो उसके लिए यह आदर्श स्वाभाविक है। पर, जनसंख्यावृद्धि के जो खतरे अब महसूस होने लगे हैं उनके कारण जनसंख्यानियंत्रण के किसी भी ऐसे तरीके को स्वीकार्य समझा जा रहा है जो कम-से-कम नुकसानदेह हो। व्यक्ति या समाज परिस्थिति की परिवर्त्तन-शीलता के आधार पर इसी तरह अपने नीति-नियमों में परिवर्त्तन कर अपना

3. देखिए द्वितीय अध्याय की पाद-टिप्पणी-संख्या ७।

काम सुविधापूर्वक चलाने की योजनाएँ बनाता है। ये ही योजनाएँ उसकी नैतिकता कही जाती हैं। जिस युग मे धर्म प्रधान प्रेरक तत्त्व था और आप्तवाक्यो या धर्मग्रन्थों की प्रभुता (ऑथोरिटी) मे पूरी आस्था थी, उसमे 'कामचलाऊपन की योजनाओं' को स्वर्ग-नरक, पुनर्जन्म, जन्मान्तरीण पुरस्कार, सामाजिक रूढि और विश्वासों के साथ सम्बद्ध करके मनुष्य ने अधिक प्रभावकारी और सशक्त बनाया। जिस युग मे इन विषयों मे आस्था मिटती जा रही हो उसमे नैतिकता की वैज्ञानिक व्याख्या बुद्धिमत्ता के रूप मे ग्राह्य हो सकती है। रिचर्ड्स ने यही किया है।

ऊपर जिस 'बुद्धिमत्ता' की चर्चा की गयी है, उसके पीछे 'उपयोगितावाद' की प्रेरणा है, यह स्पष्ट है। हमें जो प्रवृत्तियाँ और आवेग मिले हैं उनकी सक्रियता और सतुष्टि मे जीवन की वास्तविक सार्थकता और उपयोग है। जीवन की सभावनाओ की कम-से-कम व्यर्थता जिस मनोव्यवस्था मे लाजिमी हो, उसे सर्वोत्तम मानने के पीछे भी यही उपयोगितावादी दृष्टिकोण है। रिचर्ड्स की मान्यताएँ ऐसी ही हैं, यह देखा जा चुका है। वस्तुतः बेन्थम और मिल जैसे उपयोगितावादी विचारको का रिचर्ड्स के मूल्यविचार पर प्रभूत प्रभाव है। इसके प्रमाण मे दो बातो को निर्दिष्ट करना पर्याप्त होगा। वैयक्तिक और सामाजिक नैतिकता को बेन्थम ने जिन तीन सूत्रों मे आबद्ध किया है उन्हें रिचर्ड्स ने उद्धृत ही नही किया है, उनसे अपनी सहमति भी प्रकट की है, यह द्वितीय अध्याय मे देखा जा चुका है। वे बेन्थम के सूत्रों मे एक ही परिवर्तन चाहते है; वह यह कि 'हैप्पीनेस' का अर्थ 'सुख' न समझा जाकर 'आवेगो की संतुष्टि' के रूप मे ग्रहण किया जाय। ऐसा परिवर्तन वे इसलिए करते हैं कि बेन्थम तथा मिल जैसे विचारक 'सुखवाद' (हेडोनिज्म) को मान्यता देते है जबकि रिचर्ड्स इसके विरोधी मनोवैज्ञानिक मत प्रयोजनवादी या प्रोर्जावादी (हॉर्मिक साइकॉलोजी) मनोविज्ञान को। दूसरी बात यह है कि बेन्थम तथा मिल जैसे उपयोगितावादी विचारको ने 'अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख' (ग्रेटेस्ट गुड ऑफ द ग्रेटेस्ट नम्बर) का जो आदर्श अपने सामने रखा उसी को सार्थकतावादी या प्रयोजनवादी मनोविज्ञान का अनुसरण करते हुए रिचर्ड्स ने 'अधिकतम आवेगो की अधिकतम सतुष्टि' के रूप में परिवर्तित करके ग्रहण किया है।

मिल का उपयोगितावाद सकीर्ण स्वार्थों या निम्न कोटि के सुखों को महत्त्व देनेवाला सिद्धान्त नही है। सचाई, ईमानदारी या इसी तरह की अन्य मूल्यवान् मनःस्थितियो की उपयोगिता मे वह संदेह नही करता। इसका प्रमाण मिल का वह कथन है जिसमे वह सतुष्ट सूअर और मूर्ख की अपेक्षा असंतुष्ट मनुष्य और सोक्रेतेज को बेहतर मानता है।[4] रिचर्ड्स का रागपरकतावाद (एफेक्टिविज्म) यद्यपि

4. It is better to be a human being dissatisfied than a pig satisfied; better to be socrates dissatisfied than a fool satisfied. *And if the fool, or the pig, is of a different opinion, it is because they only know their own side of the question*

—*J. S Mill* : UTILITARIANISM, P. 14.

'सुखवाद' नहीं है पर अधिकतम आवेगों की अधिकतम सतुष्टि को बल देने की दृष्टि से वह उपयोगितावाद के समीप आ जाता है। रिचर्ड्स ने अपराधकर्मियों का घाटा प्रतिष्ठा की हानि से या पकड़े जाने पर मिलनेवाले दण्ड में न देखकर महत्त्वपूर्ण अनुभवों से वंचित हो जाने मे देखा है। इसी सार्थकतावादी और उपयोगितावादी दृष्टिकोण के कारण रिचर्ड्स ने वैसे लोगों की प्रशंसा नहीं की है जिनकी सफलता की अट्टालिका कुछ उत्कृष्ट मूल्यवान् अनुभवों के भूगर्भस्थ हो जाने के आधार पर खड़ी होती है।

रिचर्ड्स का नैतिक दृष्टिकोण मध्यममार्गी है। उन्होंने व्यवस्था और सामंजस्य को मूल्य का आधार माना है। सामंजस्य का आधार परस्परविरुद्धों का समझौता है। समझौता अतिवाद को परित्यक्त करता है। इसीलिए वह मध्यममार्ग है। रिचर्ड्स ने भ्रष्टाचारियों और 'अन्तःकरण के शिकार' और विशुद्धिवादियों की समान ढंग से निन्दा की है वह इसी कारण कि दोनों ढंग के व्यक्तियों की मनोव्यवस्था अतिवादिनी होती है जिसमे जीवन के अधिकतर आवेगों को कुण्ठित कर दिया जाता है और थोड़े-से आवेगों की अधिकतम सतुष्टि की चेष्टा की जाती है। रिचर्ड्स के बुद्धिमत्तावाद में अधिक-से-अधिक को साथ लेकर चलने की स्वीकृति है। रिचर्ड्स ने स्वीकार किया है कि कुछ व्यक्तियों के लिए कुछ आवेग इतने प्रबल होते हैं कि वे उनकी सतुष्टि के लिए बड़ा त्याग, यहाँ तक कि जीवन भी न्योछावर कर सकते हैं। ऐसे लोगों की मनोव्यवस्था की प्रशंसा रिचर्ड्स नहीं करते। वे तो उस मनोव्यवस्था को सर्वोत्तम मानते हैं जिसमे मानवीय संभावनाओं की कम-से-कम व्यर्थता लाजिमी हो। रिचर्ड्स के इस दृष्टिकोण के विरोध में कहा जा सकता है कि जिन अतिवादियों की उन्होंने निन्दा की है उनमें से कई को दुनिया महात्मा, क्रान्तिकारी, ऋषि और धर्मगुरु मानती आयी है; जिनकी स्मृति पर भी वह जीवन में बड़ी-से-बड़ी कुर्बानी करने को तैयार रहती है। बुद्धिमत्ता की अपेक्षा आवेश पर काम करनेवालों से दुनिया का अधिक उपकार हुआ है। अधिक-से-अधिक को साधने की अपेक्षा किसी प्रबल और महत्त्वपूर्ण 'एक' को साधनेवालों ने ज्यादा ख्याति पायी है। रिचर्ड्स के मूल्यसिद्धान्त का मध्यममार्गी पक्ष उक्त अतिवादी मनोव्यवस्था के मूल्य का सम्यक् अकन कर पाने मे असमर्थ है। कला जिन असाधारण व्यक्तियों के असाधारण जीवनमूल्यों को उद्घाटित करती है उनका मूल्यांकन रिचर्ड्स की कसौटी पर नहीं किया जा सकता।

रिचर्ड्स के मूल्यविचार की कुछ अन्य विशेषताएँ ये हैं : (१) यह सापेक्षवादी मूल्यदृष्टि है, (२) यह गतिशील नैतिकता का समर्थक है, (३) यह 'सुखवाद' (हेडोनिज्म) का विरोधी है, (४) यह व्यक्ति को आधार मानकर नैतिकता का निरूपण करता है।

रिचर्ड्स ने अनेक प्रकार की अच्छी मनोव्यवस्थाएँ मानी हैं। उनका कहना है कि किसी प्रोफेसर, गणितज्ञ या नाविक की मनोव्यवस्थाएँ समान नहीं हो सकतीं।

इतना ही नहीं, परिस्थिति भी, जिसमें देश, काल और पात्र के कारण अनेक-विधता रहती है, मनोव्यवस्थाओं की विविधता के लिए उत्तरदायी है। किसी विशिष्ट मनोव्यवस्था को सर्वोत्तम बताने की अपेक्षा रिचर्ड्स ने सर्वोत्तम मनोव्यवस्था का लक्षण यह दिया है कि जिसमें मानवीय संभावनाओं की कम-से-कम निरर्थकता लाजिमी हो वह सर्वोत्तम है। यह एक ऐसी आदर्श स्थिति है जिसके लिए व्यक्ति और समाज को अपने सामने हमेशा नवीन नीतिव्यवस्था की आवश्यकता पड़ेगी और उत्तरोत्तर एक की अपेक्षा दूसरी मनोव्यवस्था श्रेयसी प्रमाणित होगी। इस तरह, रिचर्ड्स का मूल्यसिद्धान्त सापेक्ष हो जाता है।

रिचर्ड्स का मूल्यसिद्धान्त गतिशीलता को प्रश्रय देता है। आचारशास्त्र का विरोध इसी कारण रिचर्ड्स ने किया है कि उसमे विहित नियमों को जड माना जाता है। वे आचारशास्त्र की अपेक्षा कला को नैतिकता का अधिक विश्वस-नीय प्रतिफलन इसीलिए मानते हैं कि आचारशास्त्र जहाँ स्थूल और सामान्य नीति-नियमों के रूप मे नैतिकता को सूत्रबद्ध करता है वहाँ कला उसके सूक्ष्म विशेषों को उद्घाटित करती है। रिचर्ड्स के अनुसार, नैतिकता का सही रूप जीवन के इन्ही सूक्ष्म विशेषों मे है। जीवन के ये सूक्ष्म विशेष परिस्थितिसापेक्ष और इसी कारण गतिशील होते है। रिचर्ड्स नैतिकता की गतिशीलता का वेग वैसा ही रखने का आग्रह करते हैं जैसा परिस्थितियों के परिवर्त्तन का हो। उनके अनुसार, व्यतीत नैतिक सिद्धान्तों मे चिपटे रहने की अपेक्षा मानवता के लिए अधिक कष्ट-कर कोई दूसरी बात नही। उनका कथन है कि हमे किसी शरण देनेवाले चट्टान की नही, तेजी से ले चलनेवाले वायुयान की आवश्यकता है।

'आनन्द' के विषय मे रिचर्ड्स की धारणाओं का उल्लेख प्रथम अध्याय मे किया जा चुका है। वे मनुष्य की समस्त क्रियाओ का उद्देश्य आनन्द को मानने-वाले विचार का उपहास यह करते हुए करते हैं कि यह तो घोडे के आगे गाड़ी रख देना है। वे क्रियाओ की सफलता और विफलता को ही महत्त्व देते है। सफलता से जो सतुष्टि मिलती है उसे हम 'सुख' या 'आनन्द' समझ लेते हैं और वह हमारे अगले व्यवहारों को कुछ दूर तक नियंत्रित करने लगता है। पर, असल मे महत्त्व क्रिया की सफलता और उससे प्राप्त होनेवाली आवेगतुष्टि का है। इस प्रकार, रिचर्ड्स 'सुखवाद' का विरोध करते हैं।

रिचर्ड्स ने व्यक्ति को इकाई मानकर मूल्य का स्वरूप निरूपित किया है। सामाजिक नैतिकता के मूल मे भी वे ही प्रवृत्तियाँ, रिचर्ड्स के अनुसार, कार्यरत हैं जो वैयक्तिक नैतिकता के पीछे। इसीलिए व्यक्ति को ही उन्होने आधार माना है। वैयक्तिक नैतिकता को ही सामाजिक नैतिकता के रूप मे वे परिणत करके दिखाते हैं। इसके लिए उन्होंने बेन्थम के सूत्रों का हवाला दिया है। वे सामाजिक नैतिकता की अपेक्षा वैयक्तिक नैतिकता को अधिक गतिशील मानते हैं और उसे ही सामाजिक नैतिकता में परिवर्त्तन लाने की आवश्यकता को सकेतित करनेवाला

मानते हैं। व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व की स्थिति में रिचर्ड्स दोनों की मनोव्यवस्थाओं की आपेक्षिक श्रेष्ठता को निर्णायक तत्त्व मानते हैं। समाज के पक्ष में जहाँ व्यवहारों की एकरूपता का प्रश्न है वहाँ व्यक्ति के पक्ष में पीड़ा न सहने का औचित्य। रिचर्ड्स का झुकाव व्यक्ति के पक्ष में ज्यादा है। यदि उसकी मनोव्यवस्था अधिक अच्छी है तो उसे अपने व्यवहार में तदनुरूप संशोधन करने की छूट होनी चाहिए, भले ही वह सामाजिक व्यवहारों की एकरूपता के प्रतिकूल पड़े।

हमारी समझ में रिचर्ड्स के मूल्यसिद्धान्त की सबसे बड़ी सीमा यह है कि उन्होंने सामाजिक वास्तविकताओं पर ध्यान न देकर केवल व्यक्तिवादी मनोविज्ञान की दृष्टि से मूल्यांकन के मानदण्ड स्थिर किये हैं। मूल्य के प्रश्न पर समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार करना अधिक लाभप्रद होता। व्यक्ति को इकाई न मानकर यदि सामाजिक व्यवस्थाओं और सम्बन्धों के परिप्रेक्ष्य में नैतिकता के स्वरूप की जिज्ञासा में प्रवृत्त हुआ जाय तो वह वास्तविकता के अधिक समीप होगा। सामाजिक व्यवस्थाओं और सम्बन्धों के निर्धारण में समाज के आर्थिक ढाँचे का प्रमुख हाथ रहता है। आर्थिक व्यवस्था ही वह प्रधान तत्त्व है जो कविता, दर्शन, आचारशास्त्र जैसे क्षेत्रों को प्रभावित और नियंत्रित करता है। यदि इस समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाता तो नैतिकता के वर्गगत रूप की बात स्पष्ट हो जाती। नैतिक नियम किस प्रकार वर्गगत स्वार्थों की रक्षा के लिए बनाये जाते रहे हैं और उन्हें किस प्रकार भव्य, आकर्षक और आदर्श रूप दिया जाता रहा है, यह बात समाजशास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर ही स्पष्ट हो सकती है।

रिचर्ड्स ने जिस व्यवस्था और सामंजस्य की बात कही है वह बाहरी परिस्थितियों पर अधिकतर निर्भर है। इच्छाओं की संतुष्टि में जिस मनोवैज्ञानिक बाधा की चर्चा उन्होंने की है वह मनोवैज्ञानिक से अधिक बाह्य परिस्थितिजन्य होती है। सर्वोत्तम मनोव्यवस्था में मानवीय सम्भावनाओं की जिस अल्पतम निरर्थकता की चर्चा उन्होंने की है वह अधिकांश लोगों के लिए तबतक स्वप्नवत् है जबतक उत्पादन के साधनों और जीवन के लिए मूल्यवान् वस्तुओं पर मुट्ठी भर लोगों का वैयक्तिक और वंशानुगत अधिकार है। जबतक यह वैषम्य बाहरी व्यवस्था में विद्यमान रहेगा, समाज में वर्गसंघर्ष अनिवार्य होगा। इस संघर्ष की स्थिति में आन्तरिक सामंजस्य और व्यवस्था की बात बेतुकी है। दिव्य और सुन्दर जीवन की झाँकी अनुक्रियाओं की जिस सूक्ष्म व्यवस्था में रिचर्ड्स ने देखी है वह सूक्ष्म व्यवस्था बाहरी न्यायपूर्ण व्यवस्था से ही आ सकती है। जीवन के सामान्यतः प्राप्य मूल्यों की सुलभता जिस बुद्धिमत्ता और सद्भावना के द्वारा रिचर्ड्स ने बतायी है उसकी सत्ता समाज में तबतक नहीं होगी जबतक घोर आर्थिक वैषम्य विद्यमान रहेगा और वर्गगत स्वार्थों की रक्षा के लिए व्यूह रचे जाते रहेंगे।

यह आश्चर्यजनक है कि कला के मूल्य को उसके बाहर समझकर भी और

कला का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध देखकर भी रिचर्ड्स का दृष्टिकोण समाजशास्त्रीय न होकर मनोवैज्ञानिकमात्र बना। विचारों की यह एकांगिता उस प्रत्ययवादी (आइडियलिस्ट) दर्शन का परिणाम है जो वस्तुगत यथार्थ की उपेक्षा को प्रोत्साहन देता है। रिचर्ड्स ने यद्यपि अपने मनोवैज्ञानिक मत को प्रत्ययवाद और भौतिकतावाद मे से किसी एक का समर्थक नही माना है पर वस्तुत मे मूल्य की सत्ता व्यक्ति की अनुक्रियाओं मे देखना प्रत्ययवाद की स्वीकृति है। रिचर्ड्स का सवेगवाद (इमोशनिज्म) प्रत्ययवादी दर्शन के परिणामस्वरूप है पर उसकी जैसी व्याख्या रिचर्ड्स ने की है वह प्रत्ययवाद की मिथ्या भौतिकवाद मे परिणति है। रिचर्ड्स कला के सौन्दर्य को विषयिगत (सब्जेक्टिव) मानते हैं। यह प्रत्ययवाद की स्वीकृति है। पर, इस सौन्दर्य की व्याख्या जिस 'सामान्य संवेदनीयता' (को-एनेस्थेसिया) के रूप मे उन्होने की है वह स्नायुओ के उद्दीपन तक पहुँचकर रह गया है।[5]

कॉडवेल ने ठीक ही कहा है कि कला की समीक्षा का अर्थ कला से बाहर आना है जिसके मानी हैं समाज के अन्दर प्रवेश करना। अत कलासमीक्षा का प्रधान तत्त्व समाजशास्त्रीय है।[6] रिचर्ड्स की कलासमीक्षा समाजशास्त्रीय नही हो सकी है अत. कला को जीवन से सम्बद्ध करने के लिए उन्होने जिस मनोवैज्ञानिक मूल्यवाद का सहारा लिया है वह बेतुका लगता है।

(ख) रागात्मकतावाद (एफेक्टिविज्म) .

रिचर्ड्स यद्यपि 'वैज्ञानिकतावाद' (साइटिज्म) के पूर्णत समर्थक नही है पर विज्ञान और कविता के क्षेत्र के पार्थक्य के पक्षपाती अवश्य हैं। वे जीवन में विज्ञान के साथ-साथ कविता की भी सार्थकता कम नही मानते। विज्ञान की अत्यधिक उन्नति के युग में भी कविता की आवश्यकता बनी रहेगी, ऐसा वे मानते है। भाषा के द्विविध प्रयोगों का सकेत करते हुए उन्होंने विज्ञान और कविता को विभिन्न प्रकार की आवेगव्यवस्था से सम्बद्ध किया है। विज्ञान मे बाह्य यथार्थ के प्रति अनुरूपता के रूप मे अभ्युद्घाटन होता है। कविता मे आन्तरिक अभिवृत्तियो का निर्माण एव व्यवस्थापन होता है। कविता में भाषा का रागात्मक प्रयोग होता है, ऐसा उनका विचार है। वे जीवन मे शुद्ध कविता एव शुद्ध विज्ञान का असर देखना चाहते हैं।[7] कविता एवं विज्ञान का क्षेत्रविभाजन करते हुए उन्होंने दोनो की प्रणाली एवं भाषाप्रयोग की भिन्नता संकेतित की है। 'सत्य' शब्द का

5. Not only does this theory (theory of emotionism) correspond to that of the idealists of philosophy, but like theirs it ends in a phantom materialism. As Ogden's and Richards' theories show, ultimately the aesthetic emotion is reduced to coenaesthesia and this in turn is the excitation of certain nerves Just as formalism becomes "ideas", emotionism becomes "physiology."— *Christopher Caudwell* · ILLUSION AND REALITY, INTRODUCTION, P. 8

6 *Ibid*, P. 9.

7. We need a spell of purer science and purer poetry.—PRINCIPLES, P. 3.

प्रयोग 'वैज्ञानिक सत्य' तक ही वे सीमित रखना चाहते हैं। कविता में सत्य का उद्घाटन देखनेवालों को भ्रान्त मानते हुए उन्होंने सत्योद्घाटनसिद्धान्तों (रिविलेशन थियरीज) की अयथार्थता दिखायी है, यह पीछे देखा जा चुका है। कविता के संदर्भ में सत्य का अर्थ वे आन्तरिक संगति (कोहरेंस) या 'स्वीकार्यता' (एक्सेप्टेबिलिटी) मानते हैं। वे कविता के संज्ञानात्मक पक्ष (कॉग्नीटिव आस्पेक्ट) को बिलकुल ही महत्त्व नहीं देते। कविता का महत्त्व वे रागात्मकता में ही देखते हैं।

यों तो रागपरक आलोचना अतिप्राचीन है (अरस्तू का रेचनसिद्धान्त प्रमाण है), पर विगत कुछ शताब्दियों में भौतिक विज्ञानों की उन्नति से इस ओर ज्यादा झुकाव हुआ है। भौतिक विज्ञानों की प्रतिष्ठा ने चिन्तकों को यह मानने के लिए प्रेरित किया कि सत्य सही अर्थ में विज्ञान के अधिकारक्षेत्र में आता है, कविता का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। कविता का मन पर जो रागात्मक प्रभाव पड़ता है, उसी में उसका मूल्य देखा जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, मैक्स ईस्टमैन ने कवियों को सलाह दी है कि सत्यानुसधान को वे विज्ञान के लिए छोड़ दें।[8] मनोविज्ञान के अनुसधानों से भी कविता की रागात्मकता के सिद्धान्त को पोषण मिला। प्रायोगिक सौन्दर्यशास्त्रियों ने प्रयोगशाला-विधि से कलाकृतियों के मन पर पड़नेवाले प्रभावों का परीक्षण किया और कुछ निष्कर्ष दिये। उधर थियोडोर लिप्स, सिग्मंड फ्रायड तथा कार्ल युग के अनुसधानों से भी कविता की रागपरकता के सिद्धान्त को बल मिला। लिप्स ने भावतादात्म्य (एम्पैथी) का प्रतिपादन किया जिसे वर्नन ली जैसे समीक्षक ने सौन्दर्य की मूलभूत विशेषता माना। फ्रायड ने कला को कलाकार के अचेतन में दमित अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन माना। कला को वे इस प्रकार 'स्थानापन्न सन्तुष्टि' (सब्सटीट्यूट ग्रैटिफिकेशन) मानते हैं।

रिचर्ड्स ने कला की रागात्मकता की व्याख्या इन सबसे भिन्न प्रकार से की। उन्होंने भाषा के द्विविध प्रयोगों के विच्छेद के आधार पर कविता की रागात्मकता प्रतिष्ठित की। उनके अनुसार, भाषा का अभ्युद्देशात्मक प्रयोग विज्ञान में होता है। कविता का अभ्युद्देशात्मक मूल्य शून्य है। उसके कथन तो संवेगों को उभारने एवं अभिवृत्तियों के निर्माण के लिए उद्दिष्ट होते हैं। विज्ञान में तथ्यकथन होता है पर कविता के कथन छद्म-कथन (स्यूडो स्टेटमेंट्स) होते हैं। कविता और विज्ञान के द्वन्द्व का रिचर्ड्स ने इसी रूप में समाधान किया। इस प्रकार उन्होंने रागपरकता का एक गंभीर मनोवैज्ञानिक आधार संकेतित किया।

किन्तु, सभी प्रकार के रागात्मक कथन को वे कविता नहीं मानते। उनके अनुसार, कविता की रागात्मकता की विशेषता आवेगों का सामंजस्य है। इस प्रकार, रिचर्ड्स की 'रागात्मकता' 'सुखवाद' (हेडोनिज्म) से भिन्न है। कविता की रागात्मकता दिखाने के लिए रिचर्ड्स एवं उनके सहलेखकों ने 'फाउण्डेशन्स ऑफ

8 THE LITERARY MIND, P. 148

इस्थेटिक्स' नामक ग्रन्थ में 'सौन्दर्य' की सोलह परिभाषाओं का उल्लेख किया जिनमें से अन्तिम सात को मनोवैज्ञानिक परिभाषा माना। सबसे अन्तिम परिभाषा उन्हीं की है। जार्ज सान्तयाना की परिभाषा में सौन्दर्य को आनन्दप्रदायक माना गया है। रिचर्ड्स ने इस सुखवादी मान्यता का खण्डन यह करते हुए किया कि यह आलोचना के लिए हमें सीमित शब्दावली प्रदान करती है। क्लाइव बेल और रोजर फ्राइ जैसे समीक्षकों के सौन्दर्यसम्बन्धी उस मत का भी उन्होंने खण्डन किया जिसके अनुसार कला में एक विशिष्ट भाव 'सौन्दर्यात्मक भाव' की सत्ता मानी गयी और उसी के रूप में 'सौन्दर्य' की व्याख्या की गयी। वर्ननली ने इम्पैथी (भावतादात्म्य) को सौन्दर्य की विशेषता माना। भावतादात्म्य का अर्थ सौन्दर्यबोध देनेवाली वस्तु के साथ तादात्म्य का अनुभव करना है। रिचर्ड्स ने इसका खण्डन यह करते हुए किया कि यह विशेषता दैनन्दिन अनुभूतियों में भी देखी जाती है और सौन्दर्यानुभूति तक ही सीमित नहीं है। इन सारे मतों के खण्डन के पश्चात् रिचर्ड्स ने कविता की रागात्मकता की व्याख्या 'सहसंवेदनीयता' (साइनेस्थेसिस) के रूप में *'फ़ाउण्डेशन्स' नामक ग्रंथ में दी। सौन्दर्यानुभूति में यह विशेषता, रिचर्ड्स के अनुसार,* सामान्यतः पायी जाती है। 'सहसवेदनीयता' मनोविज्ञान का एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ वैसी अनुभूति है जिसमें दो या अधिक प्रकार की ऐन्द्रिय संवेदनाएँ साथ-साथ घटित हों। उदाहरणार्थ, कभी-कभी चाक्षुष एवं श्रुति-सम्बन्धी संवेदनाएँ साथ-साथ घटित होती हैं। रिचर्ड्स की 'सहसवेदनीयता' का तत्त्व अनेक संवेदनाओं की सहस्थिति तो है पर उसमें उन्होंने कुछ विशिष्टता भी ला दी है। वे 'सहसंवेदनीयता' की व्याख्या आवेगों के सामंजस्य और संतुलन के रूप में देते हैं।

रिचर्ड्स के अनुसार, आवेगों का यह संतुलन असकल्प (इर्रिजॉल्यूशन) की स्थिति से, जिसमें गतिरोध रहता है, भिन्न है। सहसवेदनीयता की स्थिति में मन आवेगों के परस्परविरोधी ध्रुवों के बीच डोलता नहीं रहता। परस्परविरोधी आवेग आपस में सामंजस्य प्राप्त कर एक अन्वित मनःस्थिति उत्पन्न करते हैं जिसमें हमारी अभिरुचि किसी एक दिशा में सक्रिय नहीं रहती। हमारे भीतर अभिवृत्तियों का ऐसा सन्तुलन प्राप्त होता है कि हम किसी एक दिशा में क्रियाशील न होकर किसी भी दिशा में क्रियाशीलता रखते हैं। किन्तु, अभिवृत्ति में काल्पनिक क्रियाशीलता होती है। यदि वास्तविक क्रियाशीलता घटित हो तो समझना चाहिए कि 'सहसवेदनीयता' की वास्तविक स्थिति आयी ही नहीं थी।

सहसवेदनीयता की विशेषताओं के रूप में रिचर्ड्स ने निरुद्देश्यता या निरभिरोचन, निःसंगता तथा निर्वैयक्तिकता को स्वीकार किया है। पर इनकी व्याख्या उन्होंने नवीन ढंग से की है जिसे 'कल्पना' शीर्षक अध्याय में प्रस्तुत किया जा चुका है। निरुद्देश्यता का अर्थ, उनके अनुसार, क्रियाविमूढ़ता न होकर किसी भी क्रिया के लिए प्रस्तुत रहना है। इसी तरह निर्वैयक्तिकता का अर्थ वे संपूर्ण व्यक्तित्व का संलग्न होना समझते हैं। आवेगों की संतुष्टि का अर्थ वे 'आनन्द' नहीं लेते।

प्रयोग 'वैज्ञानिक सत्य' तक ही वे सीमित रखना चाहते हैं। कविता में सत्य का उद्घाटन देखनेवालों को भ्रान्त मानते हुए उन्होंने सत्योद्घाटनसिद्धान्तों (रिविलेशन थियरीज) की अयथार्थता दिखायी है, यह पीछे देखा जा चुका है। कविता के संदर्भ में सत्य का अर्थ वे आन्तरिक संगति (कोहरेंस) या 'स्वीकार्यता' (एक्सेप्टेबिलिटी) मानते हैं। वे कविता के संज्ञानात्मक पक्ष (कॉग्नेटिव आस्पेक्ट) को बिलकुल ही महत्त्व नहीं देते। कविता का महत्त्व वे रागात्मकता में ही देखते हैं।

यों तो रागपरक आलोचना अतिप्राचीन है (अरस्तू का रेचनसिद्धान्त प्रमाण है), पर विगत कुछ शताब्दियों में भौतिक विज्ञानों की उन्नति से इस ओर ज्यादा झुकाव हुआ है। भौतिक विज्ञानों की प्रतिष्ठा ने चिन्तकों को यह मानने के लिए प्रेरित किया कि सत्य सही अर्थ में विज्ञान के अधिकारक्षेत्र में आता है, कविता का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। कविता का मन पर जो रागात्मक प्रभाव पड़ता है, उसी में उसका मूल्य देखा जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, मैक्स ईस्टमैन ने कवियों को सलाह दी है कि सत्यानुसंधान को वे विज्ञान के लिए छोड़ दें।[8] मनोविज्ञान के अनुसंधानों से भी कविता की रागात्मकता के सिद्धान्त को पोषण मिला। प्रायोगिक सौन्दर्यशास्त्रियों ने प्रयोगशाला-विधि से कलाकृतियों के मन पर पड़नेवाले प्रभावों का परीक्षण किया और कुछ निष्कर्ष दिये। उधर थियोडोर लिप्स, सिग्मंड फ्रायड तथा कार्ल युग के अनुसंधानों से भी कविता की रागपरकता के सिद्धान्त को बल मिला। लिप्स ने भावतादात्म्य (एम्पेथी) का प्रतिपादन किया जिसे वर्नन ली जैसे समीक्षक ने सौन्दर्य की मूलभूत विशेषता माना। फ्रायड ने कला को कलाकार के अचेतन में दमित अतृप्त आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन माना। कला को वे इस प्रकार 'स्थानापन्न सन्तुष्टि' (सब्स्टीट्यूट ग्रैटिफिकेशन) मानते हैं।

रिचर्ड्स ने कला की रागात्मकता की व्याख्या इन सबसे भिन्न प्रकार से की। उन्होंने भाषा के द्विविध प्रयोगों के विच्छेद के आधार पर कविता की रागात्मकता प्रतिष्ठित की। उनके अनुसार, भाषा का अभ्युद्देशात्मक प्रयोग विज्ञान में होता है; कविता का अभ्युद्देशात्मक मूल्य शून्य है। उसके कथन तो संवेगों को उभारने एवं अभिवृत्तियों के निर्माण के लिए उद्दिष्ट होते हैं। विज्ञान में तथ्यकथन होता है पर कविता के कथन छद्म-कथन (स्यूडो स्टेटमेंट्स) होते हैं। कविता और विज्ञान के द्वन्द्व का रिचर्ड्स ने इसी रूप में समाधान किया। इस प्रकार उन्होंने रागात्मकता का एक गंभीर मनोवैज्ञानिक आधार सकेतित किया।

किन्तु, सभी प्रकार के रागात्मक कथन को वे कविता नहीं मानते। उनके अनुसार, कविता की रागात्मकता की विशेषता आवेगों का सामंजस्य है। इस प्रकार, रिचर्ड्स की 'रागात्मकता' 'सुखवाद' (हेडॉनिज्म) से भिन्न है। कविता की रागात्मकता दिखाने के लिए रिचर्ड्स एवं उनके सहलेखकों ने 'फाउण्डेशन्स ऑफ

8. THE LITERARY MIND, P. 148.

इस्थेटिक्स' नामक ग्रन्थ मे 'सौन्दर्य' की सोलह परिभाषाओं का उल्लेख किया जिनमें से अन्तिम सात को मनोवैज्ञानिक परिभाषा माना। सबसे अन्तिम परिभाषा उन्हीं की है। जार्ज सान्तयाना की परिभाषा मे सौन्दर्य को आनन्दप्रदायक माना गया है। रिचर्ड्स ने इस सुखवादी मान्यता का खण्डन यह करते हुए किया कि यह आलोचना के लिए हमें सीमित शब्दावली प्रदान करती है। क्लाइव बेल और रोजर फ्राइ जैसे समीक्षकों के सौन्दर्यसम्बन्धी उस मत का भी उन्होंने खण्डन किया जिसके अनुसार कला में एक विशिष्ट भाव 'सौन्दर्यात्मक भाव' की सत्ता मानी गयी और उसी के रूप में 'सौन्दर्य' की व्याख्या की गयी। वर्ननली ने इम्पैथी (भावतादात्म्य) को सौन्दर्य की विशेषता माना। भावतादात्म्य का अर्थ सौन्दर्यबोध देनेवाली वस्तु के साथ तादात्म्य का अनुभव करना है। रिचर्ड्स ने इसका खण्डन यह करते हुए किया कि यह विशेषता दैनन्दिन अनुभूतियो में भी देखी जाती है और सौन्दर्यानुभूति तक ही सीमित नही है। इन सारे मतों के खण्डन के पश्चात् रिचर्ड्स ने कविता की रागात्मकता की व्याख्या 'सहमवेदनीयता' (साइनेस्थेसिस) के रूप मे 'फाउण्डेशन्स' नामक ग्रथ मे दी। सौन्दर्यानुभूति में यह विशेषता, रिचर्ड्स के अनुसार, सामान्यत. पायी जाती है। 'सहसंवेदनीयता' मनोविज्ञान का एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ वैसी अनुभूति है जिसमे दो या अधिक प्रकार की ऐन्द्रिय सवेदनाएँ साथ-साथ घटित हों। उदाहरणार्थ, कभी-कभी चाक्षुष एव श्रुति-सम्बन्धी सवेदनाएँ साथ-साथ घटित होती है। रिचर्ड्स की 'सहसवेदनीयता' का तत्त्व अनेक सवेदनाओ की सहस्थिति तो है पर उसमे उन्होंने कुछ विशिष्टता भी ला दी है। वे 'सहसंवेदनीयता' की व्याख्या आवेगों के सामजस्य और सतुलन के रूप में देते है।

रिचर्ड्स के अनुसार, आवेगों का यह संतुलन असंकल्प (इरिजॉल्यूशन) की स्थिति से, जिसमें गतिरोध रहता है, भिन्न है। सहसवेदनीयता की स्थिति मे मन आवेगों के परस्परविरोधी ध्रुवो के बीच डोलता नही रहता। परस्परविरोधी आवेग आपस में सामंजस्य प्राप्त कर एक अन्वित मनःस्थिति उत्पन्न करते हैं जिसमें हमारी अभिरुचि किसी एक दिशा मे सक्रिय नहीं रहती। हमारे भीतर अभिवृत्तियों का ऐसा सन्तुलन प्राप्त होता है कि हम किसी एक दिशा मे क्रियाशील न होकर किसी भी दिशा मे क्रियाशीलता रखते हैं। किन्तु, अभिवृत्ति मे काल्पनिक क्रियाशीलता होती है। यदि वास्तविक क्रियाशीलता घटित हो तो समझना चाहिए कि 'सहसंवेदनीयता' की वास्तविक स्थिति आयी ही नही थी।

सहसवेदनीयता को विशेषताओं के रूप में रिचर्ड्स ने निरुद्देश्यता या निरभिरोचन, निस्संगता तथा निर्वैयक्तिकता को स्वीकार किया है। पर इनकी व्याख्या उन्होंने नवीन ढंग से की है जिसे 'कल्पना' शीर्षक अध्याय मे प्रस्तुत किया जा चुका है। निरुद्देश्यता का अर्थ, उनके अनुसार, क्रियाविमूढता न होकर किसी भी क्रिया के लिए प्रस्तुत रहना है। इसी तरह निर्वैयक्तिकता का अर्थ वे सपूर्ण व्यक्तित्व का सलग्न होना समझते हैं। आवेगो की संतुष्टि का अर्थ वे 'आनन्द' नहीं लेते।

'आनन्द' उनके अनुसार क्रिया का उद्देश्य न होकर क्रिया के क्रम मे घटित होनेवाली चीज है। कलाएँ सहसवेदनीयता की जो अनुभूति उत्पन्न करती हैं वह जीवन से विच्छिन्न और मूलत कोई विलक्षण अनुभूति नही है।

'प्रिंसिपुल्स' मे 'सहसवेदनीयता' की कही चर्चा नही की गयी है। कलात्मक अनुभूति का स्वरूप और विशेषताएँ तो वे ही बतायी गयी हैं जो 'सहसवेदनीयता' की 'फाउण्डेशन्स' मे बतायी गयी थी, पर नाम भिन्न है। रिचर्ड्स ने सहसवेदनीयता (साइनेस्थेसिस) की जगह 'सश्लेषण' (सिन्थेसिस) या 'अन्तर्वेशन' (इन्क्लूजन) जैसे शब्दो का 'प्रिंसिपुल्स' मे प्रयोग किया है। 'कल्पना' शीर्षक अध्याय मे काव्य के दो प्रकारो का उल्लेख करते हुए अन्तर्वेशी काव्य (पोयट्री ऑफ इन्क्लूजन) की विशेषता सश्लेषण (सिन्थेसिस) बतायी गयी है और उसे ही श्रेष्ठ काव्य माना गया है। व्यग्य (आयरोनी) को इस काव्य की विशेषता के रूप मे स्वीकार किया गया है।

'सश्लेषण' तथा 'अन्तर्वेशन' जैसे शब्दो के लिए रिचर्ड्स कॉलरिज तथा जार्ज सान्तयाना के प्रति ऋणी प्रतीत होते हैं। कॉलरिज ने 'कल्पना' की व्याख्या 'सश्लेषणात्मक जादुई शक्ति' (सिन्थेटिक ऐण्ड मैजिकल पावर) के रूप की थी। जार्ज सान्तयाना ने अपनी पुस्तक 'द सेंस ऑफ ब्यूटी' मे कहा है कि सौन्दर्य की यह विशेषता है कि वह विविध आवेगो मे ऐसा सश्लेषण लाता है जिससे वे एक बिम्ब के रूप मे ढल जाते हैं और महान् शान्ति का आगमन होता है। सामजस्य की इन अनुभूतियो मे सौन्दर्य के आस्वाद का आधार है। किन्तु, इस सामजस्य के हमेशा दो ढग होते हैं, एक वह जिसमे सभी तत्त्वो को एकीकृत कर दिया जाता है, दूसरा वह जिसमे एकीकरण मे दिक्कत करनेवाले तत्त्वो को बहिष्कृत कर दिया जाता है। अन्तर्वेशन (इन्क्लूजन) के द्वारा जो एकीकरण होता है वह सौन्दर्य की चेतना उत्पन्न करता है और अपवर्जन (एक्सक्लूजन) के द्वारा जो एकीकरण होता है वह उदात्त (सब्लाइम) की अनुभूति जगाता है।[9] यद्यपि रिचर्ड्स और सान्तयाना के विचारो मे पर्याप्त अन्तर है पर रिचर्ड्स के शब्द और विभाजन प्रकार वही हैं जो सान्तयाना के हैं। 'सौन्दर्य' और 'उदात्त' के विभाजन मे रिचर्ड्स की कोई अभिरुचि नही है।

कविता की रागात्मकता को अस्वीकृत नही किया जा सकता। इसे मानने मे भी किसी को आपत्ति नही होनी चाहिए कि कविता का कार्य तथ्यो की सूचना

9 Now, it is the essential privilege of beauty to so *synthesize* and bring to a focus the various impulses of the self, so to suspend them to a single image, that a great peace falls upon that purturbed kingdom . . . . But there are always two methods of securing harmony : one is to unify all the given elements that refuse to be unified. : by *inclusion* gives us the beautiful, unity by *exclusion*, opposition, and isolation us the sublime —GEORGE SANTAYANA : THE SENSE OF BEAUTY, P 235-36

देना नहीं है। पर, रिचर्ड्स ने कविता की रागात्मकता को ही सब-कुछ मानते हुए उसके संज्ञानात्मक पक्ष को शून्य मानकर अतिवाद का आश्रय लिया है। उन्होंने 'सत्य' को कविता के अधिकारक्षेत्र से बाहर कर दिया है और कविता के संदर्भ में *सत्य का अर्थ 'स्वीकार्यता' तथा कविता के भीतर की संगति* (इन्टर्नल कोहिरेंस) माना है। इस बात से पूर्णतया सहमत होना कठिन है कि कविता में बाह्य यथार्थ की अनुरूपता (कॉरिस्पॉण्डेन्स विथ नैचुरल रियलिटी) का कोई महत्त्व नहीं है। यह अवश्य है कि यथार्थ के प्रति यह अनुरूपता विज्ञान का प्रधान कार्यक्षेत्र है; पर कविता इसका बिलकुल तिरस्कार नहीं करती। रिचर्ड्स के तर्क को स्वीकार कर लेने का अर्थ है कि *किसी ऐतिहासिक काव्य में किसी भी प्रकार की ऐतिहासिक भ्रान्ति को स्वीकार किया जा सकता है* और उसका पाठक की अनुभूति पर कोई असर नहीं पड़ेगा यदि आन्तरिक संगति का निर्वाह किया गया हो। पर, बात ऐसी नहीं है। निर्विवाद और प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्यों की यदि कोई कवि या नाटककार नितान्त उपेक्षा करता है और उनके स्थान पर मनगढ़न्त कल्पनाओं को प्रश्रय देता है तो जानकार पाठक के मन में क्षोभ होना *स्वाभाविक है जिसका उसकी अनुभूति के लिए अनुकूल प्रभाव नहीं होगा।* काव्य को सत्य-जैसा तो प्रतीत होना ही चाहिए। इसके लिए कवि को कुछ सीमाओं का ज्ञान रखना आवश्यक है। वह सुविदित, सुपरिचित एवं ख्यात तथ्यों एवं वृत्तों के नितान्त विरुद्ध विषयों का वर्णन नहीं कर सकता।

इसी प्रकार, जिसे रिचर्ड्स ने *'स्वीकार्यता'* कहा है वह केवल काव्य की *आन्तरिक आवश्यकता की पूर्ति भर नहीं है। कविता, नाटक, उपन्यास या कहानी* के पात्रों को स्वीकार करते समय जीवन में उनके स्वरूप, कार्य एवं स्वभाव के विषय में हमारी जो धारणाएँ रहती हैं उनकी अनुरूपता हम उनके काव्यगत रूप में देखना चाहते हैं। मानवमनोविज्ञान के विषय में हमारी जो सामान्य धारणाएँ रहती हैं उनकी *अनुरूपता हम काव्य में पाना चाहते हैं। यह अवश्य है कि ये धारणाएँ बहुत अधिक सामान्य होती हैं;* पर इनकी चेतना *काव्यास्वाद के समय* रहती अवश्य है। यही कारण है कि 'ईसप की कहानियों', 'पंचतंत्र', 'कथासरित्-सागर' आदि की कहानियों और 'वैज्ञानिक गल्प' (साइंटिफिक फिक्शन्स) की दुनिया ने भी हमारे वास्तविक जगत् की अनुभूतियों से अपना पूर्ण सम्बन्धविच्छेद नहीं किया है। *इस तरह सिद्ध है कि बाह्य यथार्थ का नितान्त तिरस्कार काव्य* में न तो संभव है और न उचित। हमारे यहाँ काव्य के हेतुओं में 'प्रतिभा' के साथ 'व्युत्पत्ति' को भी जो स्थान दिया गया है, वह इसी दृष्टि से। 'व्युत्पत्ति' के अन्तर्गत शास्त्र और लोक का ज्ञान आता है जिसकी प्राप्ति के लिए कवि को यत्न करने की सलाह दी गयी है।

यदि रिचर्ड्स ने इतना ही कहा होता कि शेक्सपियर के 'मैकबेथ' नाटक में स्कॉटलैंड के इतिहास की पूरी संगति ढूँढ़ना अनावश्यक है तो बात ग्रहण करने

योग्य थी। इतिहास का या विज्ञान का पूरा अनुकरण काव्य मे हो, इसे स्वीकार नही किया जा सकता। काव्यजगत् की कुछ रूढ़ियाँ होती हैं जिन्हे सत्यवत् स्वीकार किया जाता है। इसके अलावा एक सीमा तक ऐतिहासिकता को स्वीकार करके भी स्रष्टा साहित्यकार कल्पना के बल पर नवीन योजनाएँ कर सकता है। यह भी स्वीकार्य है कि तथ्यपरकता को काव्य मे गौण स्थान प्राप्त है। पर, रिचर्ड्स ने जो-कुछ कहा है उसे यदि तार्किक परिणाम तक घसीटा जाय तो उसके मानी यह होगे कि काव्य अनर्थक कथनो का पुंज है, वह साहित्यिक 'नॉनसेन्स' है। रिचर्ड्स मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस 'नॉनसेन्स' को भी मूल्यवान् मानते हैं। रिचर्ड्स से इस सीमा तक सहमत होना कठिन है। एलेन टेट और जॉन क्रोवे रैन्सम का यह कथन उचित ही है कि एक तरफ कविता मे सत्य का पूरी तरह निषेध करना और दूसरी तरफ मैथ्यू आर्नल्ड की इस धारणा से सहमत होना कि 'कविता हमे बचा सकती है'—असगत बाते हैं। वस्तुत. कविता को यदि रिचर्ड्स सत्य से बिलकुल ही अलग मानते हैं तो मैथ्यू आर्नल्ड की इस टिप्पणी से उनकी सहमति समझ मे नही आती कि कविता जीवन की आलोचना है। मैथ्यू आर्नल्ड की इस परिभाषा मे कविता के बुद्धिपक्ष को या उसके संज्ञानात्मक पक्ष को प्रमुखता मिली है। केवल रागात्मक अभिवृत्तियों के सन्तुलन और सवेगों के उद्दीपन मे कविता का यह मूल्य देखना कि वह अस्तित्व की बहुविध सभावनाओं के निर्भ्रान्त दर्शन कराती है, बेतुकी बात है। जीवन मे सत्य का जो महत्त्व है उसे देखते हुए कविता की सार्थकता सत्योद्घाटन मे बिलकुल न मानना एकागी दृष्टिकोण का परिचायक है। पर, सत्य को वैज्ञानिक सत्य तक ही सीमित कर देना या उसी का पर्याय मानना भी उचित नही।

(ग) सौन्दर्य की विषयिनिष्ठता (सब्जेक्टिविटी):

रिचर्ड्स के काव्यसिद्धान्तो की एक अन्य आधारभूत मान्यता है सौन्दर्य की विषयिनिष्ठता। 'सौन्दर्य' को वे वस्तु का धर्म एकदम नही मानते, विषयी (सौन्दर्य का अनुभव करनेवाले) की मनोव्यवस्था का धर्म मानते हैं। उनका कथन है कि जब हम यह कहते हैं कि 'अमुक वस्तु सुन्दर है' तो हम अपनी मन स्थिति का वस्तु पर प्रक्षेपण (प्रोजेक्शन) करते हैं। इसीलिए, समीक्षा की भाषा के दोष की चर्चा करते हुए उन्होने यह उदाहरण दिया है कि हम कहते हैं, 'अमुक वस्तु सुन्दर है' जबकि हमे कहना चाहिए था कि 'अमुक वस्तु मन मे ऐसा अनुभव उत्पन्न करती है जो प्रकारविशेष से मूल्यवान् है'। 'सौन्दर्य' शब्द को भ्रामक मानते हुए इसीलिए रिचर्ड्स ने 'अनुभूति के मूल्य' शब्द को 'प्रिंसिपुल्स' मे स्थान दिया है और उस मूल्य की सत्ता उन्होंने उद्दीपन (स्टिमुलस) मे न मानकर अनुक्रियाओं (रेस्पॉन्स) मे मानी है। यह मूल्यवत्ता आवेगो के सामजस्य और सन्तुलन से आती है, यह उनका विचार है। अत., रिचर्ड्स के अनुसार 'सौन्दर्य'

या मूल्य की सत्ता बाहर न होकर हमारे भीतर है। 'लय और छन्द' शीर्षक अध्याय में देखा जा चुका है कि रिचर्ड्स लय और छन्द की विशेषता भी किसी बाहरी ढाँचे मे न मानकर मानसिक अनुक्रियाओ मे मानते हैं।

रिचर्ड्स की उपर्युक्त मान्यता की आलोचना जॉन क्रोवे रैन्सम तथा थियोडोर मेयर ग्रीन जैसे आलोचको ने की है और उनसे अपनी असहमति प्रकट की है। रैन्सम का कथन है कि यदि रिचर्ड्स की यह बात मान ली जाय कि आवेगों की संतुलित विरामावस्था (बैलेन्स्ड प्वाइज) हमारी अनुक्रियाओ (रेस्पॉन्सेज) में रहती है न कि उसे उद्दीप्त करनेवाली वस्तु के ढाँचे मे, तो काव्यवस्तु के विश्लेपण का यत्न निरर्थक हो जाता है। कवि ने अपनी कविता को किसी खास आकार मे प्रस्तुत किया, यह भी निरर्थक सिद्ध होता है।

रिचर्ड्स अपनी समग्र सावधानता के बावजूद स्वय भी एकाध स्थल पर उद्दीपन की वस्तु को 'संतुलित विराम' का गुण प्रदान करते हुए प्रतीत होते हैं। दु:खान्त नाटक की उन्होंने जैसी प्रशसा की है उससे ऐसा लगता है कि इस काव्य रूप में उन्होंने मूल्यवत्ता का गुण देखा है। इसी प्रकार व्यंग्य (आइरोनी) को उत्तम काव्य का उन्होंने लक्षण बताया है, इसमे भी वस्तुगत विशेषता को महत्त्व मिलता है।

थियोडोर मेयर ग्रीन ने सौन्दर्य को विषयिनिष्ठ मानना अस्वीकृत किया है। वे सौन्दर्य को वस्तुगत मानते हैं। उनका कथन है कि सौन्दर्य की विषयगतता (आब्जेक्टिविटी) इससे प्रमाणित है कि सौन्दर्यभोगी पर सुन्दर वस्तु अबाध शक्ति से प्रभाव डालती है और वह विवश होकर उसे सुन्दर मान लेता है। सौन्दर्य ऐसी विशेषता है जो अलग-अलग वस्तुओ मे अलग-अलग मात्रा मे पायी जाती है और वह कुछ मूलभूत सिद्धान्तो का अनुसरण करती है। सौन्दर्य को विविध अवसरो पर वस्तु मे देखा जा सकता है, यानी सुन्दर वस्तु अनेक अवसरो पर देखी जाने पर सुन्दर लगती है। दूसरी बात यह है कि जो वस्तु एक व्यक्ति को सुन्दर लगती है वह दूसरे को भी सुन्दर लगती है। इन कारणों से ग्रीन महोदय सौन्दर्य को वस्तुगत मानने के ही पक्ष मे हैं।[10]

सौन्दर्य को न तो पूर्णत विषयिगत माना जा सकता है और न पूर्णत. वस्तुगत या विषयगत। दोनो मतो मे आंशिक सत्य है। रमणीयता वस्तु का भी धर्म होती है, यह सामान्य अनुभव की बात है। यदि ऐसी बात न होती तो जिन वस्तुओं से हमारा पहले से कोई लगाव नही है वे हमें एकाएक मिलने पर सुन्दर क्यों लगती हैं? हमे ही नहीं, साधारणतः सबको सुन्दर लगती है।

10 Aesthetic quality is I believe, as objective as the secondary qualities of colour and sound .... It is correctly described as 'objective' because it satisfies the generic criterion of objectivity, namely, coercive order

—*Theodore Meyer Greene* : THE ARTS AND THE ART OF CRITICISM, P. 4.

पर, सौन्दर्य का एक आभ्यन्तरिक पक्ष भी है। वैयक्तिक रुचिभेद इसका पोषण करता है। अत रूपवादी (फॉर्मलिस्ट) और प्रत्ययवादी (आइडियलिस्ट)—सौन्दर्यशास्त्र के ये दोनों दृष्टिकोण एकांगी हैं। रिचर्ड्स का दृष्टिकोण भी इस प्रकार एकांगी ही है चूंकि उन्होंने वस्तु में कोई सौन्दर्यात्मक विशेषता या मूल्यवत्ता नही देखी है।

(घ) विविध व्यवच्छेद .

रिचर्ड्स के आलोचनासिद्धान्तों में कई प्रकार के व्यवच्छेद का प्रस्ताव किया गया है और लेखक ने उनमें अपनी आस्था प्रकट की है। उनके द्वारा कल्पित कुछ व्यवच्छेद इस प्रकार हैं · (१) आलोचना का समीक्षात्मक पक्ष (क्रिटिकल पार्ट) तथा प्रविधिपक्ष (टेकनिकल पार्ट), (२) बुरी कला (बैड आर्ट) तथा दोषपूर्ण कला (डिफेक्टिव आर्ट), (३) भाषा का अभ्युद्देशनात्मक (रेफरेंशियल) प्रयोग तथा भावात्मक (इमोटिव) प्रयोग, (४) अभ्युद्देशनात्मक सत्य (ट्रुथ ऑफ़ रेफरेंस) तथा आन्तरिक सगतिमूलक सत्य (ट्रुथ ऑफ़ कोहेरेंस)। इन व्यवच्छेदों के विषय में रिचर्ड्स के विचारों को पीछे विस्तार से प्रस्तुत किया जा चुका है।

इन व्यवच्छेदों को स्वीकार करने का कारण क्या है? असल मे रिचर्ड्स कविता का विवेचन 'उद्दीपन-अनुक्रिया'-सूत्र (स्टिमुलस ऐंड रेस्पॉन्स) के आधार पर करना चाहते हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञान (बिहेवियरिस्ट साइकॉलोजी) में आस्था रखने के कारण वे कविता को उद्दीपन-अनुक्रिया के रूप में व्याख्या का विषय बनाते हैं। इसी प्रेरणा से उन्होंने विभिन्न व्यवच्छेदों की कल्पना की है। सौन्दर्य या मूल्य को अनुक्रिया में निहित मानने के कारण उन्हें समीक्षा के समीक्षात्मक या मूल्यपक्ष से उसके प्राविधिक पक्ष को अलग करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। बुरी कला और दोषपूर्ण कला के विच्छेद के मूल मे भी यही प्रेरणा है। मूल्य की दृष्टि से निकृष्ट कला बुरी कला मानी गयी है और सप्रेषण की त्रुटियों या असफलताओं से युक्त कला दोषपूर्ण। सप्रेषणपक्ष और मूल्य-पक्ष को अलग-अलग रखने के पीछे उद्दीपन-अनुक्रिया की चेतना और मूल्य की सत्ता को अनुक्रिया मे मानना है।

अन्तिम दो व्यवच्छेदों की स्वीकृति के पीछे कविता और विज्ञान के क्षेत्र, प्रणाली एवं महत्त्व का विभाजन स्पष्ट करना है। इसके लिए भी मनोवैज्ञानिक मान्यताओं की सहायता ली गयी है। भाषा के द्विविध प्रयोगों की मूलभूत मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन पीछे किया जा चुका है।

इस प्रकार के विच्छेदों को आत्यन्तिक मानना उचित नहीं। ये सुविधा के लिए अपनाये गये हैं। कविता के विषय में सपूर्ण और समग्र दृष्टिकोण ही उचित है। स्वयं रिचर्ड्स ने आलोचना के समीक्षात्मक एवं प्राविधिक पक्षों के विच्छेद के औचित्य मे 'कॉलरिज ऑन इमैजिनेशन' नामक पुस्तक मे शंका व्यक्त

की हैं।[11] तथापि रिचर्ड्स के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने इन विच्छेदों के द्वारा कविता के विविध तत्त्वों और पक्षों के आपेक्षिक महत्त्व को स्पष्ट किया और संतुलित मूल्यांकन के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण की ओर संकेत किया। रिचर्ड्स द्वारा कल्पित व्यवच्छेदों का इस दृष्टि से पर्याप्त मूल्य मानना पड़ेगा।

---

11. It is with deceptive ease.. ... that the enquiry (into poetic meaning) divides into questions about the what and the how. Or into questions about the methods a poet uses and the feats he thereby achieves Or into questions about his means and his ends. Or about the way of his work and the whither.

—COLERIDGE ON IMAGINATION, P. 198.

पर, सौन्दर्य का एक आभ्यन्तरिक पक्ष भी है। वैयक्तिक रुचिभेद इसका पोषण करता है। अत रूपवादी (फॉर्मेलिस्ट) और प्रत्ययवादी (आइडियलिस्ट)—सौन्दर्यशास्त्र के ये दोनो दृष्टिकोण एकागी है। रिचर्ड्स का दृष्टिकोण भी इस प्रकार एकागी ही है चूँकि उन्होने वस्तु मे कोई सौन्दर्यात्मक विशेषता या मूल्यवत्ता नही देखी है।

(घ) विविध व्यवच्छेद

रिचर्ड्स के आलोचनासिद्धान्तो मे कई प्रकार के व्यवच्छेद का प्रस्ताव किया गया है और लेखक ने उनमे अपनी आस्था प्रकट की है। उनके द्वारा कल्पित कुछ व्यवच्छेद इस प्रकार है . (१) आलोचना का समीक्षात्मक पक्ष (क्रिटिकल पार्ट) तथा प्रविधिपक्ष (टेकनिकल पार्ट), (२) बुरी कला (बैड आर्ट) तथा दोषपूर्ण कला (डिफेक्टिव आर्ट), (३) भाषा का अभ्युद्देशनात्मक (रेफरेंशियल) प्रयोग तथा भावात्मक (इमोटिव) प्रयोग, (४) अभ्युद्देशनात्मक सत्य (ट्रुथ ऑफ रेफरेंस) तथा आन्तरिक सगतिमूलक सत्य (ट्रुथ ऑफ कोहेरेंस)। इन व्यवच्छेदो के विषय मे रिचर्ड्स के विचारो को पीछे विस्तार से प्रस्तुत किया जा चुका है।

इन व्यवच्छेदो को स्वीकार करने का कारण क्या है ? असल मे रिचर्ड्स कविता का विवेचन 'उद्दीपन-अनुक्रिया'-सूत्र (स्टिमुलस ऐंड रेस्पॉन्स) के आधार पर करना चाहते हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञान (बिहेवियरिस्ट साइकॉलोजी) मे आस्था रखने के कारण वे कविता को उद्दीपन-अनुक्रिया के रूप मे व्याख्या का विषय बनाते है। इसी प्रेरणा से उन्होने विभिन्न व्यवच्छेदो की कल्पना की है। सौन्दर्य या मूल्य को अनुक्रिया मे निहित मानने के कारण उन्हे समीक्षा के समीक्षात्मक या मूल्यपक्ष से उसके प्राविधिक पक्ष को अलग करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। बुरी कला और दोषपूर्ण कला के विच्छेद के मूल मे भी यही प्रेरणा है। मूल्य की दृष्टि से निकृष्ट कला बुरी कला मानी गयी है और संप्रेषण की त्रुटियो या असफलताओ से युक्त कला दोषपूर्ण। सप्रेषणपक्ष और मूल्य-पक्ष को अलग-अलग रखने के पीछे उद्दीपन-अनुक्रिया की चेतना और मूल्य की सत्ता को अनुक्रिया मे मानना है।

अन्तिम दो व्यवच्छेदो की स्वीकृति के पीछे कविता और विज्ञान के क्षेत्र, प्रणाली एव महत्त्व का विभाजन स्पष्ट करना है। इसके लिए भी मनोवैज्ञानिक मान्यताओ की सहायता ली गयी है। भाषा के द्विविध प्रयोगो की मूलभूत मानसिक प्रक्रियाओ का विवेचन पीछे किया जा चुका है।

इस प्रकार के विच्छेदो को आत्यन्तिक मानना उचित नही। ये सुविधा के लिए अपनाये गये हैं। कविता के विषय मे सपूर्ण और समग्र दृष्टिकोण ही उचित है। स्वय रिचर्ड्स ने आलोचना के समीक्षात्मक एवं प्राविधिक पक्षो के विच्छेद के औचित्य मे 'कॉलरिज ऑन इमैजिनेशन' नामक पुस्तक मे शका व्यक्त

पर, सौन्दर्य का एक आभ्यन्तरिक पक्ष भी है। वैयक्तिक रुचिभेद इसका पोषण करता है। अत रूपवादी (फार्मेलिस्ट) और प्रत्ययवादी (आइडियलिस्ट)—सौन्दर्यशास्त्र के ये दोनो दृष्टिकोण एकागी हैं। रिचर्ड्स का दृष्टिकोण भी इस प्रकार एकागी ही है चूंकि उन्होने वस्तु मे कोई सौन्दर्यात्मक विशेषता या मूल्यवत्ता नही देखी है।

(घ) विविध व्यवच्छेद

रिचर्ड्स के आलोचनासिद्धान्तो मे कई प्रकार के व्यवच्छेद का प्रस्ताव किया गया है और लेखक ने उनमे अपनी आस्था प्रकट की है। उनके द्वारा कल्पित कुछ व्यवच्छेद इस प्रकार हैं (१) आलोचना का समीक्षात्मक पक्ष (क्रिटिकल पार्ट) तथा प्रविधिपक्ष (टेकनिकल पार्ट), (२) बुरी कला (बैड आर्ट) तथा दोषपूर्ण कला (डिफेक्टिव आर्ट), (३) भाषा का अभ्युद्देशनात्मक (रेफरेंशियल) प्रयोग तथा भावात्मक (इमोटिव) प्रयोग, (४) अभ्युद्देशनात्मक सत्य (ट्रुथ ऑफ रेफरेस) तथा आन्तरिक सगतिमूलक सत्य (ट्रुथ ऑफ कोहेरेस)। इन व्यवच्छेदो के विषय में रिचर्ड्स के विचारो को पीछे विस्तार से प्रस्तुत किया जा चुका है।

इन व्यवच्छेदो को स्वीकार करने का कारण क्या है? असल मे रिचर्ड्स कविता का विवेचन 'उद्दीपन-अनुक्रिया'-सूत्र (स्टिमुलस ऐंड रेस्पॉन्स) के आधार पर करना चाहते हैं। व्यवहारवादी मनोविज्ञान (बिहेवियरिस्ट साइकॉलोजी) मे आस्था रखने के कारण वे कविता को उद्दीपन-अनुक्रिया के रूप मे व्याख्या का विषय बनाते हैं। इसी प्रेरणा से उन्होने विभिन्न व्यवच्छेदो की कल्पना की है। सौन्दर्य या मूल्य को अनुक्रिया मे निहित मानने के कारण उन्हे समीक्षा के समीक्षात्मक या मूल्यपक्ष से उसके प्राविधिक पक्ष को अलग करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। बुरी कला और दोषपूर्ण कला के विच्छेद के मूल मे भी यही प्रेरणा है। मूल्य की दृष्टि से निकृष्ट कला बुरी कला मानी गयी है और सप्रेषण की त्रुटियो या असफलताओं से युक्त कला दोषपूर्ण। सप्रेषणपक्ष और मूल्य-पक्ष को अलग-अलग रखने के पीछे उद्दीपन-अनुक्रिया की चेतना और मूल्य की सत्ता को अनुक्रिया मे मानना है।

अन्तिम दो व्यवच्छेदो को स्वीकृति के पीछे कविता और विज्ञान के क्षेत्र, प्रणाली एव महत्व का विभाजन स्पष्ट करना है। इसके लिए भी मनोवैज्ञानिक मान्यताओ की सहायता ली गयी है। भाषा के द्विविध प्रयोगों की मूलभूत मानसिक प्रक्रियाओं का विवेचन पीछे किया जा चुका है।

इस प्रकार के विच्छेदों को आत्यन्तिक मानना उचित नही। ये सुविधा के लिए अपनाये गये हैं। कविता के विषय मे सपूर्ण और समग्र दृष्टिकोण ही उचित है। स्वय रिचर्ड्स ने आलोचना के समीक्षात्मक एव प्राविधिक पक्षो के विच्छेद के औचित्य मे 'कॉलरिज ऑन इमॅजिनेशन' नामक पुस्तक मे शका व्यक्त

की हैं।[11] तथापि रिचर्ड्स के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने इन विच्छेदों के द्वारा कविता के विविध तत्त्वों और पक्षों के आपेक्षिक महत्त्व को स्पष्ट किया और संतुलित मूल्यांकन के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण की ओर संकेत किया। रिचर्ड्स द्वारा कल्पित अवच्छेदों का इस दृष्टि से पर्याप्त मूल्य मानना पड़ेगा।

---

11. It is with deceptive ease. ...... that the enquiry (into poetic meaning) divides into questions about the what and the how. Or into questions about the methods a poet uses and the feats he thereby achieves. Or into questions about his means and his ends. Or about the way of his work and the whither.

—COLERIDGE ON IMAGINATION, P. 198.

त्रयोदश अध्याय

रसवाद एवं रिचर्ड्स के सिद्धान्त

भारतीय काव्यशास्त्र के विविध सिद्धान्तो मे रसवाद को सर्वाधिक समर्थन मिला है। उसके पुष्ट मनोवैज्ञानिक आधार के कारण उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या और अध्ययन भी आधुनिक विद्वानो के द्वारा हुए हैं। रिचर्ड्स की समीक्षा तो पूर्णत. मनोविज्ञान का आधार लेकर ही चली है। प्रभाव की व्यापकता एव लोकप्रियता की दृष्टि से पाश्चात्य समीक्षा मे रिचर्ड्स का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय काव्यशास्त्र के विविध सिद्धान्तो मे रसवाद का ही रिचर्ड्स के सिद्धान्तों से थोड़ा सामीप्य है। अत· दोनो का तुलनात्मक अध्ययन उपादेय सिद्ध होगा।

सर्वप्रथम रससिद्धान्त और रिचर्ड्स के सिद्धान्तो की समानताओं पर विचार करें। रससिद्धान्त रागपरक काव्यसिद्धान्त है और रिचर्ड्स भी कविता का मूल्य उसकी रागात्मकता मे मानते हैं, यह देखा जा चुका है। रससिद्धान्त के प्रायः मान्य रूप 'अभिव्यक्तिवाद' के अनुसार रस की सत्ता सहृदय मे मानी गयी है। रिचर्ड्स भी भावक के मन पर पडे प्रभावो मे ही काव्यानुभूति का मूल्य देखते हैं। इस प्रकार दोनो प्रत्ययवादी (आइडियलिस्ट) दृष्टिकोण के सिद्धान्त हैं। रससिद्धान्त मे 'भाव' को प्रधानता प्राप्त है। उधर रिचर्ड्स ने भी काव्यानुभूति के विविध तत्त्वों मे सवेग, भावना और अभिवृत्ति को प्रधानता दी है और उन्ही मे मूल्य का रूप देखा है।

यद्यपि रससिद्धान्त पूर्णत. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त नही है पर यह स्पष्ट है कि उसमे मन की विभिन्न अवस्थाओं और प्रवृत्तियो को आधार बनाया गया है। स्थायी भावो, सचारी भावो एव अनुभावो का प्रतिपादन जिस रूप मे किया गया है, वह मानव मन की पर्याप्त जानकारी पर अवलम्बित प्रतीत होता है। स्थायीभावो का विवरण मैकडूगल द्वारा निर्दिष्ट सहज-प्रवृत्तियों (इन्सटिक्ट्स) से बहुत-कुछ मिलता है। रिचर्ड्स ने आवेगों (इम्पल्सेज) को आधार बनाया है जिनमे सवेगों, सहजप्रवृत्तियो एव अभिवृत्तियो का समाहार हो जाता है। उन्होने उद्दीपन-अनुक्रिया के रूप मे काव्यानुभूति का विश्लेषण किया है। रससिद्धान्त मे भी विभाव के अन्तर्गत आलम्बन और उद्दीपन को स्थान मिला है। रससिद्धान्त के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति मे वासनारूप से स्थायी भाव स्थित रहते हैं। रिचर्ड्स ने भी आदिम आवेगो की सत्ता मानी है और यह स्वीकार किया है कि काव्य की सम्प्रेषण-योग्यता कवि द्वारा सामान्यत. सभी व्यक्तियों मे प्राप्य आदिम आवेगो के उपयोग

से बहुत-कुछ आती है। 'कलाकार की सामान्यता' शीर्षक अध्याय में रिचर्ड् स ने यह स्वीकार किया है कि बहुत-से आवेग सभी व्यक्तियो मे समान रूप से रहते है और उनके उद्दीपन तथा क्रियाशीलता का ढंग एकरूप होता है।[1]

रससिद्धान्त व्यवस्थावादी सिद्धान्त है। काव्य के अलौकिक आनन्द की वह व्यवस्थामूलक व्याख्या है। उसके अनुसार, स्थायी भाव की परिणति रसरूप में होती है पर रसनिष्पत्ति के लिए विभाव, अनुभाव एवं संचारियो की आवश्यकता होती है। आशय यह कि भाव, विभाव, संचारी भाव एवं अनुभाव एक समुचित व्यवस्था मे एकत्र होकर आनन्दस्वरूप रस की प्रतीति कराते हैं। रस के इन साधनो का औचित्यपूर्ण समावेश एवं सम्यक् आयोजन रसानुभूति के लिए आवश्यक माना गया है। यद्यपि रस के लिए अपेक्षित इन साधनो का पृथक्-पृथक् अनुभव रसानुभूति के समय नहीं होता पर इनमें से प्रत्येक अनिवार्य है। इस तरह रस की व्यवस्थामूलकता स्पष्ट है। रसविरोध और रसविरोधपरिहार का जो सूक्ष्म विवेचन किया गया है उसमे विरोध और सामंजस्य के मनोवैज्ञानिक स्वरूप का उद्घाटन हुआ है। रिचर्ड् स का मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त व्यवस्थावादी एवं सामंजस्य-वादी है, इसे कहने की आवश्यकता नहीं। आवेगो के सामंजस्यपूर्ण संतुलन में काव्यानुभूति का मूल्य उन्होंने देखा है।

रस के स्वरूप को जिन शब्दो से स्पष्ट किया गया है उनमे से कुछ की समानता रिचर्ड् स द्वारा निर्दिष्ट काव्यानुभूति की विशेषताओ से है। चित्त की एकाग्रता और विश्रान्ति तथा निर्वैयक्तिकता रसात्मक आनन्द की विशेषताएँ बतायी गयी है। उधर रिचर्ड् स भी आवेगो के सन्तुलन से उत्पन्न अखण्ड एव अन्वित मनःस्थिति की बात करते हैं और काव्यानुभूति का लक्षण आवेगो की सन्तुलित शान्ति (बैलेंस्ड प्वाइज) मे मानते हैं। निर्वैयक्तिकता को भी उन्होंने स्वीकार किया है। 'काव्यानुभूति से अस्तित्व का बोझ उठता-सा नजर आता है' जैसे वाक्य के रूप मे रिचर्ड् स ने काव्यानुभूति की विशेषता का संकेत किया है।

रसनिष्पत्ति की प्रक्रिया में साधारणीकरण का प्रमुख योगदान माना गया है। रिचर्ड् स ने सम्प्रेषणप्रक्रिया का जैसा विवेचन किया है उसमे वे साधारणीकरण के सिद्धान्त के समीप पहुँचते दिखाई पड़ते हैं। सफल सम्प्रेषण के लिए कला-कार को जिन आवश्यक योग्यताओं की उन्होंने चर्चा की है उनमे प्रथम है अतीत अनुभवों की प्राप्यता तथा द्वितीय है उसकी सामान्यता (नार्मैल्सी)। इस सामान्यता के विवेचन मे वे साधारणीकरण के सिद्धान्त के समीप आ जाते हैं।

किन्तु, रससिद्धान्त से रिचर्ड् स के सिद्धान्त की उपर्युक्त समानताओ की अपेक्षा विषमताएँ अधिक गहरी और मौलिक हैं। सबसे पहली बात है कि रसानुभूति को

1. Within racial boundaries, and perhaps within the limits of certain very general types, many impulses are common to all men. Their stimuli and the courses which they take seem to be uniform.—PRINCIPLES, P. 190.

अलौकिक अनुभूति माना गया है जबकि रिचर्ड्स कलानुभूति को जीवन की अन्य सामान्य अनुभूतियों से मूलतः विलक्षण अनुभूति नहीं मानते। उन्होंने सौन्दर्यानुभूति और कपड़ा पहनने की या गैलरी जाने की अनुभूति में कोई मौलिक अन्तर नहीं देखा है।[2] अन्य लौकिक अनुभूतियों से काव्यानुभूति में, उनके अनुसार, इतनी ही विशिष्टता रहती है कि काव्यानुभूति अधिक संकुल और अधिक एकीकृत होती है।

दूसरी बात यह है कि रिचर्ड्स का काव्यसिद्धान्त आनन्दवादी मूल्य को स्वीकार नहीं करता। उसका आधार उपयोगितावादी या सार्थकतावादी मूल्य है। किन्तु रससिद्धान्त काव्यानुभूति को अनिवार्यतः आनन्दमयी अनुभूति मानता है। उसमें मनोवेगों के संघटन या सामंजस्य को साध्य न मानकर साधन माना गया है। साध्य है आस्वादमूलक आनन्द। इस आनन्द को 'ब्रह्मास्वादसहोदर' माना गया है। रससिद्धान्त के अनुसार, लौकिक भाव सुखदुःखात्मक होते हैं पर काव्य का रस अनिवार्यतः आनन्दमय या सुखात्मक होता है। 'सुख' का अर्थ रससिद्धान्त में ऐन्द्रिय सुख न होकर आत्मविस्तार की अनुभूति से उत्पन्न व्यापक आह्लाद है। इसीलिए रससिद्धान्त करुण, बीभत्स, रौद्र तथा भयानक रसों को भी आनन्ददायक ही मानता है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र जैसे आचार्य रससिद्धान्त की इस स्थापना से असहमति रखते हैं पर उन्हें अपवाद मानना चाहिए। सामान्यतः रससिद्धान्त के समर्थकों ने सभी रसों की आनन्दात्मकता का समर्थन किया है।

दूसरी तरफ रिचर्ड्स आनन्द को न तो जीवन की मुख्य प्रेरक शक्ति मानते हैं और न काव्यानुभूति की अनिवार्य विशेषता। आनन्द का सर्वथा निषेध तो उन्होंने नहीं किया है पर उसे प्रक्रियाजनित गौण वस्तु अवश्य माना है। उन्होंने मानसिक व्यापारों की सफलता या विफलता को ही महत्त्व दिया है। वे काव्य की अनुभूति का मूल्य आवेगों के सामंजस्य और संतुलन से प्राप्त संतुष्टि एवं मूल्यवान् अभिवृत्तियों के निर्माण में मानते हैं। उनके अनुसार ट्रैजेडी उत्तम काव्यरूप है। पर, उसकी अनुभूति को वे आनन्ददायक नहीं मानते। ट्रैजेडी की अनुभूति की विशेषता है परस्पर बहुत अधिक विरोध रखनेवाले आवेगों का समन्वय एवं सामंजस्य। इस विशेषता के कारण उसकी अनुभूति सर्वस्वीकर्त्री और व्यापक हो जाती है। इस कारण अस्तित्व की बहुविध संभावनाओं के स्पष्ट दर्शन ट्रैजेडी से प्राप्त अनुभूतियों में होते हैं।

'आनन्द' जैसे शब्द के द्वारा काव्यानुभूति के मूल्य की व्याख्या करना, रिचर्ड्स के अनुसार, स्थूल दृष्टिकोण का परिचायक है। उन्होंने 'आनन्दवाद' या 'सुखवाद' की आलोचना के क्रम में एक बात यह बतायी है कि यह सिद्धान्त हमें आलोचना के लिए अत्यन्त सीमित शब्दावली प्रदान करता है। रसात्मक आनन्द को भी अनिर्वचनीय माना गया है। दूसरी तरफ, रिचर्ड्स काव्यानुभूति के मूल्य का

2. PRINCIPLES, P. 16.

विश्लेषण और व्याख्या सभव मानते हैं। आवेगो के सामजस्य और सतुलन के रूप मे मूल्य की जो व्याख्या उन्होंने की है वह विश्लेषण को सभव बनाती है। रिचर्ड्स की व्यावहारिक आलोचना मे इसी कारण विश्लेषण को पर्याप्त स्थान मिला है। यो कहे कि काव्य के अध्ययन की विश्लेषणात्मक पद्धति को उन्ही के विवेचनो से सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली है।

रिचर्ड्स ने जिस कलावाद का खण्डन किया है वह सौन्दर्यानुभूति को एक विशिष्ट प्रकार की अनुभूति मानता है। इस दृष्टि से वह रससिद्धान्त से समता रखता है। पर, कलावाद जीवन से कला के सम्बन्धविच्छेद की जो धारणा प्रचारित करता है उसे रससिद्धान्त स्वीकार नही करता। रससिद्धान्त जीवन के व्यापारो और भावों के साधारणीकरण द्वारा रसचर्वणा सभव मानता है, तथापि रससिद्धान्त मे आनन्दवादी मूल्यो को ही प्रधानता प्राप्त है। यो तो कुछ आलोचको ने रस-सिद्धान्त के आनन्दवाद में कल्याणवादी मूल्यो का समावेश दिखाया है, पर वह रससिद्धान्त को दूर तक खीच ले जाना है।

रससिद्धान्त काव्य का पूर्णत मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त न होकर कला-दर्शन है। वह आत्मवाद को आधार बनाकर चला है। दूसरी तरफ, रिचर्ड्स का सिद्धान्त पूर्णत मनोवैज्ञानिक है। आत्मवाद को रिचर्ड्स ने बिलकुल ही स्थान नही दिया है। रससिद्धान्त का आधारभूत साधारणीकरण एकात्मवाद पर प्रतिष्ठित है जबकि रिचर्ड्स-कृत सप्रेषण के विवेचन मे एकात्मवाद का निषेध है। मानव-मन के विच्छेद को आधार मानकर रिचर्ड्स ने सप्रेषणप्रक्रिया का विवेचन किया है। डॉ० नगेन्द्र जैसे समीक्षक ने रससिद्धान्त का रिचर्ड्स के सिद्धान्तो से सामजस्य करने का प्रयास किया है। इसके लिए उन्होने रिचर्ड्स के 'आवेगो की व्यवस्था और क्रमबन्धन' को आनन्द का पर्याय मान लिया है।[3] रसात्मक आनन्द की प्राप्ति मे रिचर्ड्स के 'सामजस्य और अन्विति' के तत्त्व को उन्होंने महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।[4] दूसरी तरफ, साधारणीकरण की प्रक्रिया की व्याख्या सप्रेषणप्रक्रिया से प्रभावित होकर की है यद्यपि दोनो को अभिन्न नही माना है। रस को सप्रेष्य न मानकर व्यजना और साधारणीकरण का विषय माना है।[5] सार्थकतावाद[6] (हार्मिक साइकोलोजी) और आनन्दवाद के विरोध का भी समाधान करने का उन्होने प्रयास किया है और दोनो मे शब्दों का ही हेर-फेर माना है, तात्त्विक अन्तर नही। पर, हमारा मत है कि रसवाद और रिचर्ड्स के मनोवैज्ञानिक काव्यसिद्धान्त में मौलिक विभेद है और उनमे से किसी एक की मौलिक विशेषता का तिरोभाव किये बिना दोनो का सामजस्य असभव है। डॉ० नगेन्द्र ने रसवाद की मौलिक विशेषता —आस्वादमूलक आनन्द—को तो अक्षुण्ण रखा है, पर रिचर्ड्स के सिद्धान्त की

3. रससिद्धान्त, पृ० १०८। 4. वही, पृ० १२३। 5. वही, पृ० १६४। 6. डा० नगेन्द्र ने इसी शब्द का प्रयोग किया है।

मूल विशेषता के सुरक्षित रखने में उन्हें सफलता नहीं मिली है। रिचर्ड्स का संवेगवाद स्नायुओं के उद्दीपन एवं अनुक्रियाओं की व्यवस्था एवं संघटन के रूप में काव्यानुभूति की व्याख्या करता है जबकि रसवाद लोकोत्तर, अनिर्वचनीय एवं ह्लादस्वादसहोदर आनन्द के रूप में। रिचर्ड्स का मनोवैज्ञानिक संवेगवाद (इमोशनिज्म) अनुभवमूलक है, रससिद्धान्त का आनन्दवाद अनुभवातिक्रमणवादी।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और रिचर्ड्स के सिद्धान्तों की तुलना— रसवाद से रिचर्ड्स के सिद्धान्तों की तुलना के प्रसंग में हिन्दी के श्रेष्ठ आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के रसविषयक विचारों से रिचर्ड्स के सिद्धान्तों की तुलना भी प्रासंगिक है। रसानुभूति की प्राचीन व्याख्या से आचार्य शुक्ल के रसविषयक विचारों में प्रस्थान मिलता है। सबसे पहली बात यह है कि आचार्य ने रसानुभूति को लौकिक अनुभूति से भिन्न नहीं माना अपितु उसी का उदात्त और अवदात रूप माना है।[7] इस दृष्टि से वे रिचर्ड्स के काव्यानुभूतिविषयक विचारों से समानता रखते हैं।

आचार्य शुक्ल ने काव्यानुभूति के अनिवार्यतः आनन्दमय होने का भी समर्थन नहीं किया है। इस दृष्टि से भी रिचर्ड्स के विचारों से उनके विचार की समानता है। पर शुक्लजी और रिचर्ड्स की सहमति केवल काव्यानुभूति को अनिवार्यतः आनन्दमय नहीं मानने की दृष्टि से ही है, आनन्द के प्रति दोनों का दृष्टिकोण पूर्णतः समान नहीं है। रिचर्ड्स ने 'आनन्द' को काव्यानुभूति की अनिवार्य विशेषता न मानने में प्रयोजनवादी मनोविज्ञान का अनुसरण किया है जबकि आचार्य शुक्ल काव्यास्वाद के व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर अपना मत स्थिर करते हैं। आचार्य शुक्ल का मत उन्हीं के शब्दों में नीचे प्रस्तुत है—

"मेरी समझ में रसास्वादन का प्रकृत स्वरूप 'आनन्द' शब्द से व्यक्त नहीं होता। 'लोकोत्तर', 'अनिर्वचनीय' आदि विशेषणों से न तो उसके अवाचकत्व का परिहार होता है, न प्रयोग का प्रायश्चित्त। क्या क्रोध, शोक, जुगुप्सा आदि आनन्द का रूप धारण करके ही श्रोता के हृदय में प्रकट होते हैं, अपने प्रकृत रूप का सर्वथा विसर्जन कर देते हैं, उसे कुछ भी लगा नहीं रहने देते? क्या 'विभावत्व' उनका स्वरूप हर कर उन्हें एक ही स्वरूप—सुख का—दे देता है? क्या दुःख के भेद सुख के भेद से प्रतीत होने लगते हैं? क्या मृत पुत्र के लिए विलाप करती हुई शैव्या से राजा हरिश्चन्द्र का कफन माँगना देखकर आँसू नहीं आ जाते, दाँत निकल पड़ते हैं? क्या महमूद के अत्याचारों का वर्णन पढ़कर यह जी में नहीं आता कि वह सामने आता तो उसे कच्चा खा जाते? क्या कोई दुःखान्त कथा पढ़कर बहुत देर तक उसकी खिन्नता नहीं बनी रहती? 'चित्त का यह द्रुत होना' क्या आनन्दगत है? इस आनन्द शब्द ने काव्य के महत्त्व को बहुत-कुछ

7. रसानुभूति प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति से सर्वथा पृथक् कोई अन्तर्वृत्ति नहीं है, बल्कि उसी का एक उदात्त या अवदात स्वरूप है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : रसमीमांसा, पृष्ठ २७१।

कम कर दिया है—उसे नाच-तमाशे की तरह बना दिया है।"[8]

आचार्य शुक्ल और रिचर्ड्‌स प्रत्यक्ष विषयों की वास्तविक अनुभूति में भी वह विशेषता मानते हैं जो काव्यानुभूति की विशेषता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "साधारणीकरण के प्रभाव से काव्यश्रवण के समय व्यक्तित्व का जैसा परिहार हो जाता है वैसा ही प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूति के समय भी कुछ दशाओं में होता है। अतः इस प्रकार की प्रत्यक्ष या वास्तविक अनुभूतियों को रसानुभूति के अन्तर्गत मानने में कोई बाधा नहीं।"[9] यह भी रसानुभूति की प्राचीन व्याख्या से महत्त्वपूर्ण प्रस्थान है। आचार्य शुक्ल के अनुसार, रसानुभूति का मूल तत्त्व है अपनी पृथक् सत्ता की भावना का परिहार। उनके अनुसार, यह काव्यानुभूति में तो रहता ही है, प्रत्यक्ष अनुभूति में भी कभी-कभी देखने को मिल जाता है। अतः यदि प्रत्यक्ष जीवन की अनुभूति व्यक्तित्व से सम्बद्ध न हो, यानी वैयक्तिक रागद्वेष से ग्रस्त न हो तो वह रसानुभूति के तुल्य है। आचार्य के ही शब्दों में, "रसदशा में अपनी पृथक् सत्ता की भावना का परिहार हो जाता है अर्थात् काव्य में प्रस्तुत विषय को हम योगक्षेम-वासना की उपाधि से ग्रस्त हृदय द्वारा ग्रहण नहीं करते; बल्कि निर्विशेष, शुद्ध और मुक्त हृदय द्वारा ग्रहण करते हैं। इसी को पाश्चात्य समीक्षापद्धति में अहं का विसर्जन और निःसंगता (इम्पर्सनैलिटी ऐण्ड डिटैचमेंट) कहते हैं। इसी को चाहे रस का लोकोत्तरत्व या ब्रह्मानन्दसहोदरत्व कहिए, चाहे विभावनव्यापार का अलौकिकत्व।"[10]

रिचर्ड्‌स ने भी स्वीकार किया है कि जीवन के कुछ क्षण ऐसे होते हैं जिनमें आवेगों का वैसा सामंजस्य घटित होता है जो अस्तित्व के बोझ को उठाता प्रतीत होता है। उनका कथन है कि अत्यन्त शोक की अवस्था में या अप्रत्याशित सुख के उपस्थित होने पर कभी-कभी संकीर्ण स्वार्थपरता मिटती-सी प्रतीत होती है और अस्तित्व की वास्तविकता के दर्शन होते हैं।[11] किन्तु, रिचर्ड्‌स का मत है कि *अधिकांश व्यक्तियों के जीवन में ऐसे क्षण बहुत कम आते हैं।*[12] इस प्रकार,

8 रस मीमांसा, पृष्ठ ८०।

9 रसमीमांसा, पृष्ठ २३०।

10. रसमीमांसा, पृष्ठ २६६।

11. But these impulses active in the artist become mutually modified and thereby ordered to an extent which only occures in the ordinary man at rare moments, under the shock of, for example, a great bereavement or an undreamt of happiness; at instants when the 'film of familiarity and selfish solicitude'. ...... seems to be lifted and he feels strangely alive and aware of the actuality of existence.

—PRINCIPLES, P. 243.

12. But for most men after their early years such experiences are infrequent; a time comes when they are incapable of them unaided, and they receive them only through the arts.—PRINCIPLES, P. 244.

दोनों समीक्षक वास्तविक जीवन की अनुभूतियों में भी काव्यानुभूति या रसानुभूति की विशेषता देखते हैं। आचार्य शुक्ल ने अपने मत के समर्थन में रिचर्ड्स के 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' नामक ग्रंथ से उद्धरण भी दिया है।[13]

काव्य में रूपविधान या बिम्बसृष्टि के महत्त्व के विषय में भी रिचर्ड्स और आचार्य शुक्ल के विचारों में साम्य है। चतुर्थ अध्याय में देखा जा चुका है कि रिचर्ड्स ने बिम्ब का महत्त्व उसकी सजीवता, स्पष्टता या चित्रात्मकता की दृष्टि से नहीं, विचार और भावना को प्रभावित करने की दृष्टि से माना है। कविता में बिम्बसृष्टि को रिचर्ड्स साधन मानते हैं और संवेग तथा अभिवृत्तियों को साध्य। इसीलिए वे बिम्बसृष्टि में कविता की अनुभूति का मूल्य नहीं देखते। आचार्य शुक्ल ने यद्यपि रिचर्ड्स की अपेक्षा बिम्बविधान को अधिक महत्त्व दिया है पर उसे भावपक्ष के सामने गौण ही माना है। जब आचार्य कहते हैं कि काव्य का कार्य अर्थग्रहण कराना नहीं, बिम्बग्रहण कराना है या जब वे विभावपक्ष को महत्त्व देते हुए प्रकृति के सूक्ष्म, संश्लिष्ट चित्रण की प्रशंसा करते हैं तो कविता में बिम्बविधान को रिचर्ड्स की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते हैं पर अन्ततः रूपयोजना का महत्त्व भावों को जगाने की दृष्टि से ही देखते हैं। इस प्रकार, शुक्लजी भी रूपयोजना को साधन और भावोद्दीपन को साध्य मानते हैं। आचार्य के ही शब्दों में, "अतः कल्पना की वही रूपयोजना काव्य के अन्तर्गत आ सकती है जो श्रोता या पाठक के मन में कोई भाव जगाने में समर्थ हो।"[14] इस प्रकार, दोनों समीक्षक कविता का मूल्य उसकी रागात्मकता में देखते हैं।

आलोचना की भाषा के विषय में रिचर्ड्स और आचार्य शुक्ल के विचारों में पर्याप्त साम्य है। जिस लहजे में रिचर्ड्स ने काव्य के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये भावात्मक और रहस्यात्मक उद्गारों की आलोचना की है और जिन आलोचकों के कथनों को इस प्रसंग में उद्धृत किया है करीब-करीब उसी लहजे में आचार्य शुक्ल ने भी ऐसे उद्गारों की आलोचना की है और प्रायः उन्हीं आलोचकों के कथनों को उद्धृत किया है। मकेल तथा शेली के रहस्यात्मक उद्गारों को रिचर्ड्स ने ही नहीं, आचार्य शुक्ल ने भी आलोचना का विषय बनाया है। आचार्य शुक्ल के वाक्यों को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा: "इस प्रकार के केवल भावव्यंजक (तथ्यबोधक नहीं) और स्तुतिपरक शब्दों को समीक्षा के क्षेत्र में घसीटकर अनेक प्रकार के अर्थशून्य वागाडम्बर खड़े किये गये थे। 'कला कला के लिए' नामक सिद्धान्त के प्रसिद्ध व्याख्याकार डाक्टर ब्रैडले बोले 'काव्य आत्मा है।' डॉ० मकेल साहब ने फरमाया 'काव्य एक अखंड तत्त्व या शक्ति है जिसकी गति अमर है।' बंगभाषा के प्रसाद से हिन्दी में भी इस प्रकार के अनेक मधुर प्रलाप सुनाई पड़ा करते हैं।"[15]

13. रसमीमांसा, पृष्ठ, २७२। 14. रसमीमांसा, पृष्ठ, ३०३-४। 15. वही, पृष्ठ, २६६।

'कलावाद' या 'सौन्दर्यवाद' के खण्डन की दृष्टि से भी आचार्य शुक्ल और रिचर्ड्स साथ-साथ हैं। किन्तु, रिचर्ड्स के खण्डन का आधार अधिक वैज्ञानिक है।

अब हम, दोनों समीक्षकों के समीक्षात्मक दृष्टिकोण एवं सिद्धान्तों के अन्तर को देखें। रिचर्ड्स का दृष्टिकोण प्रधानतः मनोवैज्ञानिक है जबकि आचार्य शुक्ल का नैतिक एवं आदर्शात्मक। यह तथ्य शुक्लजी के उन मनोवैज्ञानिक निबन्धों में भी स्पष्ट है जिनमें मानसिक भावों के विश्लेषण के क्रम में शुक्लजी शुद्ध मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं रख सके हैं, जिनमें उन्होंने नैतिक विचारों को भी प्रश्रय दिया है।

रिचर्ड्स के मूल्यसिद्धान्त में आन्तरिक सामंजस्य को आधार बनाया गया है। शुक्लजी आन्तरिक सामंजस्य के साथ-साथ बाह्य सामंजस्य पर भी बल देते हैं। लोकसंग्रह एवं लोकमंगल से सम्बद्ध आदर्शों को शुक्लजी ने मूल्यांकन का आधार बनाया है।

कविता का कार्य हृदय को वैयक्तिक राग-द्वेष की संकीर्ण परिधि से निकालकर मुक्त करना है, यह शुक्लजी की मुख्य स्थापना है। वे कविता को हृदय *की मुक्तावस्था की अभिव्यक्ति मानते हैं और उसे 'भावयोग' की साधना* कहते हैं। रसानुभूति का मूल तत्त्व उन्होंने निर्वैयक्तिकता को माना है। रिचर्ड्स ने निर्वैयक्तिकता को काव्यानुभूति की विशेषता के रूप में स्वीकार किया है पर उसे वे संप्रेषण की विशेषता मानते हैं, काव्यानुभूति का मूल्यनिर्णायक तत्त्व नहीं।

'सौन्दर्य' के विषय में भी शुक्लजी एवं रिचर्ड्स की मान्यताओं में पर्याप्त अन्तर है। रिचर्ड्स 'सौन्दर्य' को वस्तुगत नहीं मानते, विषयिगत मानते हैं। शुक्लजी की दृष्टि वस्तून्मुखी थी। वे सौन्दर्य को वस्तुगत मानते हैं। उनका कथन है, "सौन्दर्य बाहर की कोई वस्तु नहीं है, मन के भीतर की वस्तु है, योरोपीय कला-समीक्षा की यह एक बड़ी ऊँची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गयी है। पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़झाले के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे वीर-कर्म से पृथक् वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक् सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं।"[16] सौन्दर्य की व्याख्या करते हुए शुक्लजी पाश्चात्य मनोविज्ञान एवं समीक्षा में स्वीकृत 'भावतादात्म्य' (इम्पैथी) को स्वीकार करते हुए प्रतीत होते हैं। भावतादात्म्य का अर्थ सौन्दर्यबोध करानेवाली वस्तु के साथ तादात्म्य का अनुभव करना है। शुक्लजी कहते हैं, "कुछ रूप-रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार *कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं* की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अंतस्सत्ता की यही तदाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।"[17] रिचर्ड्स ने भावतादात्म्य या इम्पैथी को केवल काव्यानुभूति या सौन्दर्यानुभूति का विषय नहीं माना। वे सौन्दर्यानुभूति को

16. रसमीमांसा, पृष्ठ, ३१। 17. रसमीमांसा पृष्ठ ३१।

मूल विशेषता 'सहमवेदनीयता' (साइनेस्थेसिस) मानते हैं जबकि आचार्य शुक्ल के अनुसार वह विशेषता है भावतादात्म्य (इम्पैथी)।

सौन्दर्य को वस्तुगत मानने के कारण शुक्लजी ने कुछ खास रूपव्यापारों में भावोद्बोध की गहरी शक्ति मानी है और कुछ दूसरे व्यापारों में इसका अभाव देखा है। उन्होंने प्राकृतिक दृश्यों और कुछ आदिम व्यापारों में (जैसे वन, पर्वत, नदी, नाले, मेह का बरसना, कुहरे का छाना, डर से भागना, लोभ से लपकना आदि में) रसपरिपाक की अधिक शक्ति मानी है जबकि आधुनिक सभ्यता से सम्बद्ध रूपव्यापारों में (जैसे, स्टेशन, इंजिन, अनाथालय के लिए चेक काटना, सर्वस्वहरण के लिए जाली दस्तावेज बनाना आदि में) इसका अभाव देखा है।[18] आचार्य शुक्ल जगत् की मार्मिक छवियों और व्यापारों के साक्षात्कार द्वारा व्यक्ति की पृथक् सत्ता का तिरोभाव और लोकसत्ता में लीन कराने में कविता का महत्त्व देखते हैं।[19] उनके अनुसार, कविता का लक्ष्य उक्त "अनुभूतियोग के अभ्यास से हमारे मनोवेगों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह"[20] है। कविता, उनके मत से "बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्तःप्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसकी भावात्मक सत्ता के प्रसार का प्रयास करती है।"[21] रिचर्ड्स केवल आन्तरिक सामंजस्य में काव्यानुभूति का मूल्य दिखाते हैं। उन्होंने आचार्य शुक्ल की तरह कुछ खास रूपव्यापारों की काव्योपयुक्तता का समर्थन नहीं किया है। शुक्लजी पर प्रकृति का जो प्रभाव था उसने उनके काव्यसिद्धान्त के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। रिचर्ड्स पर ऐसा कोई प्रभाव नहीं था।

आचार्य शुक्ल की समीक्षा से उनकी सहृदयता स्थल-स्थल पर झलकती जान पड़ती है। रिचर्ड्स की समीक्षा में बौद्धिक विश्लेषण को प्रधानता प्राप्त है। रिचर्ड्स अपने पाण्डित्य और तार्किकता से आतंकित करते हैं, शुक्लजी अपनी सुरुचि और सहृदयता से आश्वस्त करते हैं।

---

18. वही, पृष्ठ ७ ; 19. वही, पृष्ठ ३ ; 20. वही, पृष्ठ ६ ; 21. वही, पृष्ठ ७

मूल्यांकन

पाश्चात्य समीक्षा मे आई० ए० रिचर्ड्स ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। आधुनिक युग के थोड़े-से श्रेष्ठ समीक्षकों मे उनकी गणना की जाती है। इसका कारण यह है कि उन्होंने मनोविज्ञान, अर्थविज्ञान, दर्शन एव सौन्दर्यशास्त्र के गहन अध्ययन एवं चिन्तन के फलस्वरूप अपने सिद्धान्तो को प्राप्त किया है। उनका पाण्डित्य, तार्किक प्रतिपादन, सूक्ष्म विश्लेषणात्मक शक्ति तथा व्यवस्थित एव क्रमबद्ध चिन्तन समीक्षाजगत् मे अनुपम है। ये सारी विशेषताएँ सामान्यत. श्रेष्ठ समीक्षकों की कृतियों मे हमें एकत्र सुलभ नही होती। उन्होंने एक व्यवस्थित, सागोपाग एव समन्वित काव्यशास्त्र का निर्माण किया जिसके सिद्धान्तो मे कही भी अस्पष्टता का लेश नही है। वैज्ञानिक रीति से विषयो का तर्कपूर्ण एव स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है। सिद्धान्तो मे परस्परविरोध, असगति एव विच्छिन्नता प्रायः नही हैं। काव्यसमीक्षा के प्राय. सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया गया है एव उनका अपने ढग से समाधान किया गया है। समीक्षाशास्त्र को वैज्ञानिक बनाने में उनका अपूर्व योगदान रहा है।

मौलिक चिन्तन की दृष्टि से रिचर्ड्स का स्थान पाश्चात्य समीक्षा मे बहुत विशिष्ट है। अरस्तू, लोंजाइनस (लोगिनुस), कॉलरिज, क्रोचे जैसे प्रथम श्रेणी के मौलिक समीक्षको के बाद की पक्ति मे रिचर्ड्स का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण माना जायगा।

उनके मौलिक सिद्धान्तो मे सर्वाधिक उल्लेख्य हैं मूल्याकनसिद्धान्त एव भाषा के द्विविध प्रयोग का सिद्धान्त। उनका अर्थतत्त्वसम्बन्धी चिन्तन भी बहुत ही सूक्ष्म एवं मौलिक है। आलोचना मे निर्दिष्ट उनके विविध विच्छेद एव उनकी कल्पना तथा ट्रैजेडी से सम्बद्ध व्याख्याएँ भी पर्याप्त मौलिक हैं।

किन्तु, इसका यह अर्थ नही कि रिचर्ड्स के सिद्धान्तो पर पूर्ववर्ती समीक्षकों का प्रभाव नही है। अरस्तू, लोंजाइनस, कॉलरिज एवं मैथ्यू आर्नल्ड के विचारो का उनपर प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा, बेन्थम तथा मिल जैसे उपयोगितावादी चिन्तकों का एवं बिशप बटलर जैसे व्यवस्थावादी आचारशास्त्री का उनपर प्रभाव देखा जा सकता है। कॉलरिज के कल्पनासम्बन्धी विवेचन के प्रति उन्होंने स्वय ही आभार स्वीकार किया है। उनके मनोवैज्ञानिक सामजस्य एवं व्यवस्था के सिद्धान्त पर बटलर का प्रभाव समझा जा सकता है।

अन्तर्वेशी काव्य (पोइट्री ऑफ इन्क्लूजन) एवं अपवर्जी काव्य (पोइट्री ऑफ एक्सक्लूजन) के रूप में उन्होंने काव्य का जो वर्गीकरण किया है उस पर जार्ज सान्तयाना के 'द सेन्स ऑफ ब्यूटी' का प्रभाव दिखाया जा चुका है।

रिचर्ड्स के सभी सिद्धान्तों से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता। पीछे उनके सिद्धान्तों की जो मीमांसा की गयी है, उसमें यह स्पष्ट है। पर उनकी युक्तियों की प्रौढ़ि एवं उनके विचारों के स्पष्ट एवं निर्भीक प्रतिपादन का लोहा उनके विपक्षियों को भी मानना पड़ेगा। उनकी सबसे बड़ी चुनौती उनसे असहमत होने वाले किसी भी समीक्षक को मनोविज्ञान के क्षेत्र में पड़ती है। पर, पीछे यह दिखाया जा चुका है कि उनका विपक्षी मनोविज्ञान से बाहर आकर भी उनसे लोहा ले सकता है। इसका कारण यह है कि समीक्षा के प्रश्नों पर मनोविज्ञान एकमात्र अधिकारी शास्त्र एवं प्रमाण नहीं माना जा सकता। दूसरे, मनोविज्ञान के जिन सम्प्रदायों को प्रमुख मान्यताओं को उन्होंने अपनाया है, उनके अतिरिक्त भी ऐसे मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय हैं जिनके द्वारा अनुमोदित सत्यों से कला एवं उसकी समीक्षा पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है।

रिचर्ड्स की समीक्षा की सर्वप्रमुख देन 'कलावाद' की मान्यताओं का उन्मूलन है। जीवन के साथ कला के अविच्छेद्य सम्बन्ध को सिद्ध करने की दृष्टि से उनकी युक्तियों का कायल होना पड़ता है। मूल्यविचार को समीक्षा में सर्वाधिक महत्त्व प्रदान करने की दृष्टि से भी उनका महत्त्व अविस्मरणीय है। सम्प्रेषण की प्रक्रिया का जैसा वैज्ञानिक विवेचन उन्होंने किया है, वैसा पाश्चात्य समीक्षा में दुर्लभ है।

सैद्धान्तिक समीक्षा की अपेक्षा व्यावहारिक समीक्षा के क्षेत्र में उनका अवदान कम मूल्यवान् नहीं है। 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज्म' नामक ग्रन्थ में जिस वैज्ञानिक ढंग से कुछ चुनी हुई कविताओं के प्रति विभिन्न पाठकों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण एवं विवेचन हुआ है, वह अनुपम है। उसके आधार पर व्यावहारिक आलोचना के जिन आदर्शों का निर्माण किया गया है उन्होंने अंगरेजी समीक्षा को बहुत प्रभावित किया है। कविता के सम्यक् अध्ययन एवं मूल्यांकन में कौन-सी बाधाएँ आती हैं, इसका विवेचन भी विद्वत्तापूर्ण है।

रिचर्ड्स की समीक्षाजगत् को महत्त्वपूर्ण देन है उनकी विश्लेषणात्मक पद्धति जिसे उनके शिष्यों और कई सहयोगियों ने अपनाया। समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक मनोविश्लेषणवादी तथा जीवनचरितात्मक जैसी आलोचनाओं के प्रचलन से कृति का विश्लेषण गौण पड़ गया था। रिचर्ड्स ने काव्य के अध्ययन की जिस विश्लेषणात्मक पद्धति को प्रचारित किया उसने कृति को पर्याप्त महत्त्व दिया है। एम्पसन, लीविस, टी० एस० एलियट जैसे समीक्षकों पर इस दृष्टि से रिचर्ड्स का प्रभूत प्रभाव देखा जा सकता है।

एक अन्य दृष्टि से भी समीक्षा पर रिचर्ड्स का व्यापक प्रभाव पड़ा है।

फायड तथा अन्य मनोविश्लेषकों के प्रभाव से समीक्षा में मनोविज्ञान का जो प्रवेश हुआ उससे कुछ कलाकारों के जीवन को 'केस हिस्ट्री' तो सामने आयी पर कृति के मूल्य पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रकाश नहीं पड़ा। रिचर्ड्‌स ने 'स्रष्टा-मनोविज्ञान' (ऑथर साइकॉलोजी) की अपेक्षा 'भावक-मनोविज्ञान' (ऑडियेंस साइकॉलोजी) पर विशेष बल दिया। पाठक की मनःस्थिति का, कला का उसके मन पर पड़नेवाले प्रभावों का जो सूक्ष्म विश्लेषण एवं मूल्यांकन रिचर्ड्‌स ने किया वह समीक्षा के लिए मनोविज्ञान का एक सदुपयोग था। क्लीन्थ-ब्रुक्स ने इस दृष्टि से रिचर्ड्‌स का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि 'मनोविज्ञानशास्त्र' के मूल्यवान् प्रभाव फ्रायड की अपेक्षा रिचर्ड्‌स के माध्यम से समीक्षा पर अधिक पड़े हैं।[1]

पाश्चात्य समीक्षा पर रिचर्ड्‌स का व्यापक प्रभाव पड़ा है। एलियट, एम्पसन, लीविस प्रभृति आंग्ल समीक्षकों पर ही नहीं, रेने वेलेक, ऑस्टिन वारेन, जॉन क्रोवे रेन्सम जैसे 'न्यू क्रिटिसिज्म' सम्प्रदाय के अमरीकी समीक्षकों पर भी उनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इन समीक्षकों ने यद्यपि रिचर्ड्‌स के कुछ सिद्धान्तों से असहमति प्रकट की है पर उनकी विश्लेषणात्मक शैली एवं मनोवैज्ञानिक विवेचन का इनपर भी प्रभाव है। हिन्दी के समीक्षकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं डॉ० नगेन्द्र पर रिचर्ड्‌स का प्रभाव देखा जा सकता है।

रिचर्ड्‌स के समीक्षासिद्धान्तों की सीमा सामान्यतः मनोविज्ञान की, और विशेषतः उनके द्वारा अपनाये गये मनोविज्ञान की सीमा है। पीछे कहा जा चुका है कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण की नितान्त उपेक्षा करने से रिचर्ड्‌स के सिद्धान्त दृष्टिकोण की एकांगिता से ग्रस्त हो गये हैं। तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि अपने प्रतिपक्षियों पर जैसा आक्रमण रिचर्ड्‌स ने किया है, रिचर्ड्‌स को वैसे आक्रमण का अबतक सामना नहीं करना पड़ा है। उनके सिद्धान्तों का अंशतः खण्डन तो कई समीक्षकों ने किया है पर उनके संपूर्ण काव्यशास्त्र के प्रत्याख्यान में किसी को सफलता नहीं मिली है। क्रिस्टोफर कॉडवेल ने रिचर्ड्‌स के आधारभूत काव्य-दर्शन की सीमा और असंगति का निर्देश कर पाने में सफलता पायी है पर रिचर्ड्‌स के समग्र सिद्धान्तों के ब्योरों के खण्डन में वे प्रवृत्त नहीं हुए हैं। उनकी अभिरुचि मुख्यतः अपनी व्याख्या में ही रही है।

रिचर्ड्‌स के आलोचनासिद्धान्त से असहमत होकर भी उनकी प्रतिपादनशैली की मुक्तकण्ठ प्रशंसा की जा सकती है। उनकी आलोचना की भाषा विश्लेषणात्मक एवं विवृतिमूलक गद्य का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत करती है।

काव्यसृष्टि पर समीक्षक रिचर्ड्‌स का प्रभाव भले ही बहुत उल्लेखनीय न

1. The most fruitful and intensive application to literature of something like a new "science of tropes" has in fact come out of the influence of Richards rather than that of Freud.—LITERARY CRITICISM : A SHORT HISTORY, P. 631.

माना जाय, समीक्षा पर उनका प्रभाव अवश्य ही विशिष्ट रूप से पड़ा है। इसका कारण संभवत: यह हो कि उनके समीक्षासिद्धान्तों में किसी नवीन जीवनदर्शन की उपलब्धि न होकर ज्ञात दर्शन एवं अल्पज्ञात शास्त्र का विनियोग अधिक पुष्ट रूप में हुआ है।

पारिभाषिक शब्द-सूची

अज्ञेयवादी—agnostic
अनन्वय—*sui generis*
अनीक—facet
अनुकूलन—adaptation
अनुक्रम—sequence
अनुक्रिया—response
अनुबंधित अनुक्रिया—conditioned response
अनुभववाद—empiricism
अनुभवातीत/अनुभवातिक्रमणवादी—transcendental
अन्तरीक्षण—introspection
अन्तःप्रज्ञा—intuition
अन्तर्वेशन—inclusion
अन्तर्वेशी काव्य—poetry of inclusion.
अन्योन्यक्रिया—interaction
अन्योन्यक्रियावाद—interactionism
अपवर्जन—exclusion
अभिवृत्ति—attitude
अभ्युद्देश—reference
अभ्युद्देशात्मक—referential
अभ्युद्देश्य—referent
अवदान—contribution
अवधान—attention
अवशिष्ट—residual
असंकल्प—irresolution
असाम्प्रदायिक—heterodox
अस्थायी स्वीकरण—provisional acceptance
आदर्शात्मक—normative
आनन्द—pleasure
आनुभविक—empirical
आनुवंशिकता—heredity
आरम्भात्मक्रिया—incipient action
आवेग—impulse
आस्वादन—appreciation
उत्पत्तिविज्ञान/आनुवंशिकी—genetics
उदात्त—sublime
उदात्तीकृत—sublimated
उद्दीपन—stimulus
उपकल्पना/पूर्वकल्पना—hypothesis
उपजात/उपसृष्ट—bi-product
उपदेशवाद—didacticism
ऊर्जा—energy
एषणा—appetency
ऐकान्तिक/अपवर्जी—exclusive
ऐन्द्रिय—*sensory*
करुणा—pity
कलाप/रूपविधान—pattern
कायवादी संप्रदाय—somatic school
क्रमबन्धन—systematisation
क्रियावृत्ति—conation
गत्यात्मक या प्रेरक क्रिया—motor activity
चेतना—consciousness
चेतोपागम—synapsis
जातिविज्ञान—ethnology
जीववादी—*organismic*
जीवविज्ञान/जैविकी—biology
तत्त्वमीमांसा—metaphysics
तान—tone
तारता—pitch
तीव्रता—intensity
निर्वैयक्तिकता—impersonality
निष्पन्नता—accomplishment
निस्संगता—detachment
नीतिवाह्य—a-moral
परिधाद्दीय अंग—peripheral organ
पर्यावरण—environment

पशुपूजा/गणचिह्नवाद—totemism
पुराकथात्मक आलोचना—myth criticism
पूर्वावयव—premie
प्रकट क्रिया—overt action
प्रक्रिया—function
प्रक्रियामूलक—functional
प्रक्रियावादी मनोविज्ञान—functional psychology
प्रक्षेपण—projection
प्रतिपक्ष—antithesis
प्रतिलोमन—inversion
प्रतिवर्त—reflex
प्रतिवर्त चाप—reflex arc
प्रत्यक्ष/प्रत्यक्षण—perception
प्रत्यभिज्ञा—recognition
प्रत्यय—concept
प्रत्ययवाद/आदर्शवाद—idealism
प्रत्यायुक्त प्रभविष्णुता—delegated efficacy
प्रत्याशा—anticipation
प्रयोजनवाद—purposivism
प्रविधि—technique
प्राकृतवाद—naturalism
प्राप्यता—availability
प्रेरणात्मक ऊर्जा—horme
बिम्ब—image
बिम्बावली—imagery
बुद्धिवाद—rationalism
भावतादात्म्य—empathy
भावना—feeling
भाववाद—positivism
मन कायात्मक—psycho somatic
मनोजैविकी—psycho biology
मनोवादी सम्प्रदाय—psychic school
मनश्चिकित्सा—psychiatry
मानवविज्ञान—anthropology
रागात्मकता/रागपरकता—affection
रागात्मकतावाद—affectivism
रूपवादी—formalist
रेचन—catharsis

लुप्तप्रयोग—obsolete
विवृति—exposition
विवेक—discrimination
विशुद्धिवादी—puritan
विश्वदर्शन/जीवन दर्शन—weltanschauung
वैज्ञानिकतावाद—scientism
व्यक्तित्ववादी मनोविज्ञान—personalistic psychology
व्यवहारवादी मनोविज्ञान—behaviouristic psychology
शिवं/हित/श्रेय—good
श्रुति बिम्ब—auditory image
संक्रमण सिद्धान्त—infection theory
संघटन—organisation
संचित अनुक्रिया—stock response
संज्ञान—cognition
संतुलित शान्ति—balanced poise
संदेहवादी—sceptic
सम्प्रेषण—communication
सम्प्रेष्य—communicable
संरचनात्मक मनोविज्ञान—structural psychology
संवेग—emotion
संवेगवाद—emotionism
संवेदना—sensation
संश्लेषण—synthesis
सत्यापन—verification
समग्राकार—gestalt
समायोजन—adjustment
समावेशन—accommodation
सहजप्रवृत्ति—instinct
सहवर्ती—concomitant
सहसंवेदनीयता—synesthesis
समग्र मनोविज्ञान—gestalt psychology
सामान्यता—normalcy
सामान्य संवेदनीयता—co aenesthesia
साहचर्यवाद—associationism
सुखवादी—hedonist

सौन्दर्यात्मक—aesthetic
सौन्दर्यात्मक रीति—aesthetic mode
सौन्दर्यात्मक अवस्थिति—aesthetic state
स्थानिक सम्बन्ध—spatial relation
स्थिर शान्ति—stable poise
स्नायु/तन्त्रिका—nerve
स्नायुतंत्र/तंत्रिका-तन्त्र—nervous system